समष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय

कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक

समष्टि अर्थशास्त्र
एक परिचय

कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक विद्यालय और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि विद्यालयों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितनी वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक विद्यालय में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में विचार-विमर्श और ऐसी गतिविधियों को प्राथमिकता देती है जिन्हें करने के लिए व्यावहारिक अनुभवों की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और

इस पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार एमेरिटस प्रोफ़ेसर तापस मजूमदार की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रो.फ़ेसर,* इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार

तापस मजूमदार, *एमेरिटस प्रोफ़ेसर,* जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सलाहकार

सतीश जैन, *प्रो.फ़ेसर,* आर्थिक नियोजन तथा अध्ययन संस्थान, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सदस्य

देवर्षि दास, *लेक्चरर,* अर्थशास्त्र विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
मालबिका पाल, मिरांडा हाउस, दिल्ली
संमित्रा घोष, सेंट पॉल कॉलेज, सी–19, कोलकाता
सोमयाजीत भट्टाचार्य, किरोरीमल कॉलेज, दिल्ली

सदस्य समन्वयक

जया सिंह, *लेक्चरर,* अर्थशास्त्र, डी.ई.एस.एस.एच., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान देने के लिए शिक्षाविदों तथा विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के प्रति आभार व्यक्त करती है। हम सुब्रतो गुहा, *सहायक प्रोफ़ेसर,* जे.एन.यू. को पूरी पांडुलिपि को आद्योपांत पढ़ने तथा उसमें वांछित परितर्वनों के लिए सुझाव देने हेतु आभार व्यक्त करते हैं। हम सुनील आसरा, प्रबंध विकास संस्थान, गुड़गाँव, हरियाणा को उनके योगदान के लिए धन्यवाद देते हैं। हम अपने सहकर्मियों- नीरजा रश्मि, *रीडर* पाठ्यचर्या समूह; एम.वी. श्रीनिवासन, असीता रविंद्रन, प्रतिमा कुमारी, *लेक्चरर* सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग का उनके द्वारा प्रदत्त सामग्री तथा सुझाव के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

हम स्व. दीपक बैनर्जी, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत) प्रेसीडेंसी कॉलेज, कोलकाता को उनके बेशकीमती सुझावों के लिए सदैव स्मरण रखेंगे। अगर उनका स्वास्थ्य साथ देता तो हम उनके अनुभवों से और भी लाभान्वित होते।

हम इन के प्रति भी आभारी हैं: प्रमोद कुमार झा, *अनुवादक;* श्री कामना नन्द मिश्र, *मुख्य उपसंपादक (पत्रकार),* दैनिक जागरण, नोएडा; रामतप पांडेय, *पूर्व सहायक निदेशक,* वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग; ओ.पी. अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर (अवकाश प्राप्त),* मेरठ विश्वविद्यालय; एच.के. गुप्ता, बाबूराम सर्वोदय बाल विद्यालय, शाहदरा, दिल्ली एवं रमेश चन्द्रा, *पूर्व रीडर,* रा.शै.अनु. और प्र.प.।

पुस्तक के विकास में सहयोग के लिए हम सविता सिन्हा, *प्राफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष,* सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने हमें हर संभव सहयोग दिया।

पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए परिषद् दिनेश कुमार, *प्रभारी,* कंप्यूटर कक्ष, मुक़द्दस आज़म, जय प्रकाश राय, गुरिंदर सिंह तथा अर्चना गुप्ता, *डी.टी.पी. ऑपरेटर;* विनय शंकर पांडेय, सतीश झा एवं अवध किशोर सिंह, *कॉपी एडीटर* तथा बबीता झा, *प्रूफ रीडर* के भी आभारी हैं। प्रकाशन विभाग द्वारा हमें पूर्ण सहयोग एवं सुविधाएँ प्राप्त हुईं, इसके लिए हम उनका भी आभार व्यक्त करते हैं।

विषय-सूची

आमुख *iii*

1. परिचय **1**

1.1 समष्टि अर्थशास्त्र का उद्भव 4

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र की वर्तमान पुस्तक का संदर्भ 5

2. राष्ट्रीय आय का लेखांकन **9**

2.1 समष्टि अर्थशास्त्र की कुछ मूलभूत संकल्पनाएँ 9

2.2 आय का वर्तुल प्रवाह और राष्ट्रीय आय गणना की विधि 16

2.2.1 उत्पाद अथवा मूल्यवर्धित विधि 18

2.2.2 व्यय विधि 23

2.2.3 आय विधि 24

2.3 कुछ समष्टि अर्थशास्त्रीय तादात्म्य 26

2.4 वस्तुएँ और कीमतें 28

2.5 सकल घरेलू उत्पाद और कल्याण 30

3. मुद्रा और बैंकिंग **37**

3.1 मुद्रा के कार्य 37

3.2 मुद्रा की माँग 38

3.2.1 संव्यवहार प्रयोजन 39

3.2.2 सट्टा उद्देश्य प्रयोजन 40

3.3 मुद्रा की पूर्ति 43

3.3.1 वैध परिभाषाएँ : संकुचित और व्यापक मुद्रा 43

3.3.2 बैंकिंग पद्धति द्वारा मुद्रा सृजन 44

3.3.3 मुद्रा नीति के उपकरण और भारतीय रिज़र्व बैंक 48

4. आय निर्धारण **55**

4.1 प्रत्याशित और यथार्थ 55

4.2 एक वक्र पर संचलन बनाम एक वक्र का शिफ्ट 58

4.3 उत्पाद बाज़ार का अल्पकालिक स्थिर कीमत विश्लेषण 60

4.3.1 समस्त माँग वक्र पर एक बिंदु 61
4.3.2 उत्पाद बाज़ार में संतुलन माँग पर स्वायत्त परिवर्तन का प्रभाव 61
4.3.3 गुणक यांत्रिकता 62

5. सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था 68

5.1 सरकारी बजट के घटक 69
5.1.1 राजस्व बजट 69
5.1.2 पूँजीगत बजट 71
5.1.3 सरकारी घाटे की माप 72
5.2 राजकोषीय नीति 74
5.2.1 सरकारी व्यय में परिवर्तन 75
5.2.2 करों में परिवर्तन 75
5.2.3 ऋण 80

6. खुली अर्थव्यवस्था : समष्टि अर्थशास्त्र 86

6.1 अदायगी-संतुलन 87
6.1.1 अदायगी-संतुलन आधिक्य और घाटा 88
6.2 विदेशी विनिमय बाज़ार 89
6.2.1 विनिमय दर का निर्धारण 90
6.2.2 नम्य विनिमय दरें 90
6.2.3 स्थिर विनिमय दरें 94
6.2.4 प्रबंधित तिरती 95
6.2.5 विनिमय दर प्रबंध: अंतर्राष्ट्रीय अनुभव 95
6.3 खुली अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण 99
6.3.1 खुली अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय का तादात्म्य 100
6.3.2 संतुलन निर्गत और व्यापार शेष 102
6.4 व्यापार घाटा, बचत और निवेश 105

शब्दावली 111

अध्याय 1

परिचय

व्यष्टि अर्थशास्त्र के मूलभूत अध्ययन से आप अवश्य ही पूर्व परिचित होंगे। इस अध्याय के आरंभ में आपको व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र के बीच अंतर का एक सरलीकृत विवरण प्रस्तुत किया गया, जिससे आप परिचित होंगे।

आप में से जो आगे चलकर उच्चतर अध्ययन में अर्थशास्त्र में विशिष्टता प्राप्त करने का चुनाव करेंगे, वे आज समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन में अर्थशास्त्रियों द्वारा उपयोग किए गए अधिक जटिल विश्लेषणों से अवगत होंगे। किंतु समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के मूल प्रश्न वही रहेंगे। आप पाएँगे कि ये वास्तव में व्यापक आर्थिक प्रश्न हैं, जिनका संबंध सभी नागरिकों से है: क्या संपूर्ण रूप से कीमतें बढ़ेंगी या घटेंगी? क्या संपूर्ण देश में अथवा अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रकों में रोज़गार की दशा बेहतर है अथवा बुरी हालत में? अर्थव्यवस्था अच्छी है अथवा बुरी, इसे प्रदर्शित करने का संकेतक क्या होगा? राज्य कौन-सा कदम उठाएँगे अथवा लोगों की माँग करेंगे जिससे अर्थव्यवस्था की दशा में सुधार हो? ये ऐसे प्रश्न हैं जो हमें देश की पूर्ण रूप से सुदृढ अर्थव्यवस्था के संबंध में विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। समष्टि अर्थशास्त्र में इन प्रश्नों पर जटिलताओं के विभिन्न स्तरों पर विचार किया जाता है।

इस पुस्तक में आपका परिचय समष्टि अर्थशास्त्रीय विश्लेषण के कुछ मूल सिद्धांतों से होगा। जहाँ तक संभव होगा सिद्धांतों का सरल भाषा में वर्णन किया जाएगा। कभी-कभी पाठकों को कुछ कठिनाइयों से परिचय करवाने के लिए प्रारंभिक बीजगणित का प्रयोग किया जाएगा।

यदि हम किसी देश की अर्थव्यवस्था को संपूर्ण रूप से देखें तो हम पाएँगे कि अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं और सेवाओं के निर्गत के स्तरों में एक साथ संचलन की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए, यदि खाद्यान्न के निर्गत में वृद्धि होती है तो आमतौर पर औद्योगिक वस्तुओं का निर्गत स्तर भी बढ़ता है। औद्योगिक वस्तुओं में भी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्गत में एक साथ वृद्धि या ह्रास की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार से, विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की कीमत में साधारण तथा एक साथ बढ़ने या घटने की प्रवृत्ति होती है। हम भिन्न-भिन्न उत्पादन इकाइयों में रोज़गार के स्तर को भी एक साथ घटते या बढ़ते हुए देख सकते हैं।

यदि किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादन इकाइयों में समस्त निर्गत का स्तर, कीमत स्तर या रोज़गार का स्तर एक-दूसरे से निकट संबंधित हों, तो संपूर्ण

अर्थव्यवस्था का विश्लेषण कार्य अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। उपर्युक्त परिवर्तों के संबंध में व्यक्तिगत (असमग्र) स्तर पर विचार करने के बजाय हम अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के एक प्रतिनिधि के रूप में एक वस्तु के बारे में विचार कर सकते हैं। इस प्रतिनिधि वस्तु का उत्पादन स्तर सभी वस्तुओं और सेवाओं के औसत उत्पादन स्तर के अनुकूल होगा। इसी तरह, इस प्रतिनिधि वस्तु का कीमत स्तर अथवा रोज़गार स्तर अर्थव्यवस्था के सामान्य कीमत और रोज़गार स्तर को प्रतिबिंबित करेगा।

समष्टि अर्थशास्त्र में हमने सामान्यतः इस विश्लेषण को सरलीकृत किया है कि एकल काल्पनिक वस्तु पर ध्यान केंद्रित करने पर कैसे देश का **कुल उत्पादन** तथा रोज़गार के स्तर का संबंध उन विशेषताओं (जिन्हें परिवर्ती कहते हैं) जैसे- कीमत, ब्याज दर, मज़दूरी दर, लाभ, इत्यादि से है तथा इससे क्या होता है। हम इसे सरलीकृत करने में सक्षम हैं और इस तरह उपयोगी तरीके से अध्ययन के द्वारा उसका सार प्राप्त करते हैं कि उन अधिसंख्य वास्तविक वस्तुओं के साथ क्या होता है, जो बाज़ार में खरीदी और बेची जाती हैं। क्योंकि सामान्यतः हम देखते हैं कि जो कीमत, ब्याज, मज़दूरी तथा लाभ, इत्यादि के साथ होता है, कमोबेश वही दूसरी वस्तुओं के साथ भी होता है। खासतौर से जब इन गुणों में तेजी से बदलाव आना शुरू हो जाता है, उसी तरह जैसे कि कीमतें बढ़ती हैं। (जिसे मुद्रास्फीति कहा जाता है) या रोज़गार तथा उत्पादन स्तर गिरते जाते हैं (जिसे मंदी कहा जाता है), इन परिवर्तों के संचालन की सामान्य दिशा, सभी व्यक्तिगत वस्तुओं के लिए सामान्यतः उसी प्रकार होती है, जैसे कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था के लिए समस्त रूप से दिखलाई पड़ती है।

हम नीचे देखेंगे कि कभी-कभी हम इस उपयोगी सरलीकरण से विचलन की ओर भी जायेंगे, जब हम यह अनुभव करेंगे कि देश की अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से विभिन्न क्षेत्रकों से मिलकर बनती प्रतीत होती है। कुछ निश्चित उद्देश्यों के लिए अर्थव्यवस्था के दो क्षेत्रकों (उदाहरण के लिए, कृषि या उद्योग) की अंतर्निर्भरता (यह यहाँ तक कि कीमतों के बीच प्रतिद्वंद्विता) या क्षेत्रकों के बीच संबंध (जैसाकि एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में पारिवारिक क्षेत्रक, व्यापारिक क्षेत्रक और सरकार) एक अर्थव्यवस्था को पूर्ण रूप से देखने की अपेक्षा उसे देश के अर्थव्यवस्था की कुछ चीज़ों को और अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलती है।

विभिन्न वस्तुओं को छोड़कर प्रतिनिधि वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना सुविधाजनक हो सकता है, लेकिन इस प्रक्रिया में किसी वस्तु विशेष के विशिष्ट गुणों की उपेक्षा हो सकती है। उदाहरणार्थ- कृषि और औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन की दशाएँ बिल्कुल भिन्न प्रकृति की होती हैं अथवा यदि सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए एक श्रमिक प्रतिनिधि कोटि को लें, तो हम किसी फर्म के प्रबंधक और लेखाकार के श्रम के बीच भेद नहीं कर पाएँगे। अतः कई मामलों में वस्तु (श्रम अथवा उत्पादन तकनीक) की एकल प्रतिनिधि कोटि के स्थान पर हम विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ ले सकते हैं। उदाहरण के लिए अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उत्पादित सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए, प्रतिनिधि के रूप में तीन सामान्य प्रकार की वस्तुएँ ली जा सकती हैं: कृषि वस्तुएँ, औद्योगिक वस्तुएँ और सेवाएँ। इन वस्तुओं की उत्पादन तकनीक और कीमत में अंतर हो सकता है। समष्टि अर्थशास्त्र में यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न वस्तुओं का व्यक्तिगत निर्गत स्तर, कीमतें, रोज़गार का स्तर आदि का निर्धारण कैसे किया जाता है।

यहाँ की गई इस चर्चा और व्यष्टि अर्थशास्त्र के अपने पूर्व अध्ययन से शायद आपको यह समझ में आ गया होगा कि समष्टि अर्थशास्त्र, व्यष्टि अर्थशास्त्र से किस प्रकार भिन्न है। संक्षिप्त सार के रूप में देखें तो व्यष्टि अर्थशास्त्र में आपको "वैयक्तिक आर्थिक एजेंट" (बॉक्स देखिए)

और प्रेरणाओं, जिनसे वे चालित होते हैं, की प्रकृति का उल्लेख मिलता है। ये "व्यष्टि" (जिसका अर्थ "छोटा" है) एजेंट हैं अर्थात् उपभोक्ता जो अपनी रुचि और आय के अनुरूप क्रय करने के लिए वस्तुओं के इष्टतम संयोग का चयन करते हैं; उत्पादक जो अपने उत्पादित वस्तुओं से अधिकतम लाभ अर्जित करने के लिए अपनी लागत को कम से कम रखता है और वस्तुओं को बाज़ार में ऊँची से ऊँची कीमत पर बेचता है। दूसरे शब्दों में, व्यष्टि अर्थशास्त्र माँग और पूर्ति के व्यक्तिगत बाज़ारों का अध्ययन है जिसमें "आर्थिक भूमिका निभाने वाला" अथवा निर्णयकर्ता भी व्यक्ति होते हैं (क्रेता या विक्रेता कंपनियाँ भी), जो अपने लाभों को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं (उत्पादक अथवा विक्रेता) और उनके व्यक्तिगत संतुष्टि अथवा कल्याण स्तर (उपभोक्ता के रूप में) पर बड़ी कंपनी भी इस अर्थ में "व्यष्टि" ही है कि उसे अपने शेयर धारकों के हितों में कार्य करना पड़ता है जो कि संपूर्ण देश के हित के लिए नहीं होता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के लिए "मैक्रो" का तात्पर्य "बड़ा" संपूर्ण देश को प्रभावित करता है जैसे स्फीति अथवा बेरोज़गारी का उल्लेख नहीं हैं या फिर मान लिया गया है। ये ऐसे परिवर्त नहीं हैं कि वैयक्तिक क्रेता अथवा विक्रेता बदल सकते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र, समष्टि अर्थशास्त्र के निकट तब आया, जब उसे सामान्य संतुलन यानी माँग तथा पूर्ति का संतुलन अर्थशास्त्र के प्रत्येक बाज़ार में दिखलाई पड़ा।

समष्टि अर्थशास्त्र में संपूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थितियों को संबोधित करने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने भी यह सलाह दी है कि यदि प्रत्येक बाज़ार में क्रेता और विक्रेता अपने निजी हित को ध्यान में रखकर ही निर्णय लेंगे तो अर्थशास्त्रियों को संपूर्ण देश के धन और कल्याण के बारे में अलग से विचार करने की आवश्यकता नहीं होगी। किंतु, अर्थशास्त्रियों ने कालक्रम में यह अन्वेषण किया कि उन्हें आगे देखना होगा।

अर्थशास्त्रियों ने पाया कि प्रथम, कुछ मामलों में बाज़ार विद्यमान नहीं रहता है, द्वितीय कुछ अन्य मामलों में बाज़ार विद्यमान रहता है किंतु संतुलन माँग और पूर्ति का उत्पादन करने में असमर्थ रहता है। तृतीय जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, अधिकांश स्थितियों में समाज (अथवा राज्य अथवा समस्त जनता को) कुछ महत्त्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निःस्वार्थ रूप से (रोज़गार, प्रशासन, प्रतिरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में) कार्य करने का निर्णय लेना पड़ता है जिनके लिए वैयक्तिक आर्थिक एजेंटों के द्वारा लिए गए व्यष्टि अर्थशास्त्रीय निर्णयों के कुछ समस्त प्रभावों में परिवर्तन करना पड़ता है। इन उद्देश्यों के लिए समष्टि अर्थशास्त्र के विद्वानों को करारोपन और अन्य बजट नीतियों और मुद्रा पूर्ति में बदलाव लाने वाली नीतियों, ब्याज दर, मज़दूरी, रोज़गार और निर्गत का बाज़ार में पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना पड़ता है। अतः समष्टि अर्थशास्त्र का मूल व्यष्टि अर्थशास्त्र में होता है। क्योंकि इसमें बाज़ार में माँग और पूर्ति की शक्तियों के समस्त प्रभावों का अध्ययन करना पड़ता है। यदि आवश्यक हुआ तो इन शक्तियों के परिवर्तन के लिए लक्षित नीतियों का भी प्रयोग करना पड़ता है। यह बाज़ार के बाहर समाज की रुचि का अनुकरण करने के लिए होता है। भारत जैसे विकासशील देश में इस प्रकार के चुनाव बेरोज़गारी को दूर अथवा कम करने के लिए, सभी नागरिकों के लिए शिक्षा और प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध कराने, सुशासन प्रदान करने, देश को समुचित प्रतिरक्षा आदि प्रदान करने के लिए इस प्रकार का चयन करना पड़ता है। समष्टि अर्थशास्त्र की दो सामान्य विशेषताएँ हैं, जो उपर्युक्त सूची की स्थितियों में प्रयोग करना स्पष्ट है। संक्षेप में, इनका उल्लेख नीचे किया गया है।

प्रथम, समष्टि अर्थशास्त्र में निर्णयकर्ता अथवा ("आर्थिक भूमिका अदा करने वाले") कौन होते हैं? समष्टि अर्थशास्त्रीय नीतियों का अनुपालन राज्य स्वयं अथवा वैधानिक निकाय जैसे भारतीय रिज़र्व बैंक, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड और इसी प्रकार की संस्था करते हैं।

विधि अथवा भारत के संविधान में जैसाकि परिभाषित की गई है कि ऐसे प्रत्येक निकाय को एक अथवा अधिक सार्वजनिक लक्ष्य का अनुपालन करना होगा। ये लक्ष्य उन वैयक्तिक, आर्थिक एजेंटों के लक्ष्य नहीं हैं जो निजी लाभ अथवा कल्याण को अधिकतम करना चाहते हैं। अतः समष्टि अर्थशास्त्र के एजेंट मूल रूप से वैयक्तिक निर्णयकर्ताओं से अलग होते हैं।

द्वितीय; समष्टि अर्थशास्त्र के निर्णयकर्ता क्या करने का प्रयास करते हैं? स्पष्टतः उनको आर्थिक उद्देश्यों के बाहर जाना पड़ता है और जिन सार्वजनिक आवश्यकताओं की चर्चा हमने ऊपर की है, उनके लिए आर्थिक संसाधनों का परिनियोजन करने का निर्णय लेना पड़ता है। इस प्रकार के क्रियाकलाप का लक्ष्य व्यक्ति के निजी हित के लिए नहीं होता है। इनका अनुपालन संपूर्ण देश और उसकी जनता के कल्याण के लिए किया जाता है।

आर्थिक एजेंट

आर्थिक इकाई अथवा आर्थिक एजेंट से हमारा तात्पर्य उन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं से है, जो आर्थिक निर्णय लेते हैं। वे उपभोक्ता हो सकते हैं जो यह निर्णय लेते हैं कि क्या और कितना उपभोग करना है। वे वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादक भी हो सकते हैं जो यह निर्णय लेते हैं कि क्या उत्पादन करना है और कितना करना है। वे सरकार, निगम, बैंक जैसी संस्थाएँ भी हो सकती हैं जो विभिन्न प्रकार के आर्थिक निर्णय लेते हैं, जैसे कितना खर्च करना है, साख पर कितना ब्याज दर लेना है, कितना कर लगाना है।

1.1 समष्टि अर्थशास्त्र का उद्‌भव

समष्टि अर्थशास्त्र का एक अलग शाखा के रूप में उद्‌भव ब्रिटिश अर्थशास्त्री **जॉन मेनार्ड कीन्स** की प्रसिद्ध पुस्तक द *जनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लॉयमेन्ट, इन्टरेस्ट एंड मनी* के 1936 ई. में प्रकाशित होने के बाद हुआ। कीन्स से पहले अर्थशास्त्र में इस चिंतन का प्राबल्य था कि सारे श्रमिक जो काम करने के इच्छुक हैं, उन्हें काम मिलेगा और सारे कारखाने अपनी पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करते रहेंगे। विचारों के इस संप्रदाय को क्लासिकी परंपरा के रूप में जाना जाता है। किंतु, 1929 की **महामंदी** और उसके बाद के वर्षों में देखा गया कि यूरोप और उत्तरी अमरीका के देशों में निर्गत और रोज़गार के स्तरों में भारी गिरावट आयी। इसका प्रभाव दुनिया के अन्य देशों पर भी पड़ा। बाज़ार में वस्तुओं की माँग कम थी और कई कारखाने बेकार पड़े थे, श्रमिकों को काम से निकाल दिया गया था। संयुक्त राज्य अमरीका में 1929 से 1933 तक **बेरोज़गारी की दर** 3 प्रतिशत से बढ़कर 25 प्रतिशत (बेरोज़गारी की दर की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि लोगों की संख्या जो काम करने के इच्छुक हैं किंतु काम नहीं करते हैं, में लोगों की कुल संख्या जो काम करने के इच्छुक हैं और काम करते हैं, से भाग देकर जो भागफल प्राप्त होता है, उस रूप में प्राप्त की जाती है)। उस अवधि के दौरान संयुक्त राज्य अमरीका में समस्त निर्गत में लगभग 33 प्रतिशत की गिरावट आयी। इन घटनाओं ने अर्थशास्त्रियों को नये तरीके से अर्थव्यवस्था के प्रकार्य के संबंध में सोचने को प्रेरित किया। यह सच है कि जिस अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी लंबी अवधि तक विद्यमान होगी, वहाँ एक सिद्धांत की प्रस्तुति और उसकी व्याख्या की आवश्यकता होगी। कीन्स की पुस्तक इस दिशा में एक प्रयास साबित हुई। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत उनका दृष्टिकोण अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली तथा विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर-निर्भरता का परीक्षण करना था। समष्टि अर्थशास्त्र जैसे विषय का उद्‌भव हुआ।

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र की वर्तमान पुस्तक का संदर्भ

हम जानते हैं कि अध्ययन के अंतर्गत इस विषय का एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ है। हम इस पुस्तक में **पूँजीवादी देश** की अर्थव्यवस्था के कार्य का परीक्षण करेंगे। पूँजीवादी देश में उत्पादन क्रियाकलाप मुख्य रूप से पूँजीवादी उद्यमियों के द्वारा किये जाते हैं। किसी विशिष्ट पूँजीवादी उद्यम में एक या अनेक **उद्यमी** (उद्यमी ऐसे लोग हैं जो बड़े निर्णयों के नियंत्रण का कार्य करते हैं तथा फर्म या उद्यम के साथ जुड़े बड़े जोखिम का वहन करते हैं) होते हैं। वे उद्यम को चलाने के लिए स्वयं पूँजी की पूर्ति करते हैं या वे पूँजी उधार लेते हैं। उत्पादन के संचालन के लिए उन्हें **प्राकृतिक संसाधनों** की भी आवश्यकता पड़ती है। इनमें कुछ संसाधनों का उपयोग उत्पादन की प्रक्रिया में होता है (जैसे-कच्चे माल) तथा कुछ तो स्थायी पूँजी के रूप में रहता है (जैसे-भूखंड)। उत्पादन के संचालन के लिए उन्हें मानव श्रम के महत्त्वपूर्ण अंश की आवश्यकता होती है, जिसे हम **श्रम** के रूप में सूचित करेंगे। इन तीन प्रकार के उत्पादन के कारकों, जैसे–पूँजी, भूमि, श्रम की सहायता से निर्गत का उत्पादन करने के बाद उद्यमी उत्पाद को बाज़ार में बेचते हैं। इससे प्राप्त मुद्रा को संप्राप्ति कहते हैं। इस संप्राप्ति का कुछ अंश भूमि को उसके उपयोग के लिए अधिशेष के रूप में प्रदान किया जाता है, इसी प्रकार कुछ अंश पूँजी की ब्याज के रूप में तथा कुछ श्रम की मज़दूरी के रूप में प्रदान किया जाता है। शेष संप्राप्ति को उद्यमी की आय कहते हैं जो लाभ कहलाता है। इस लाभ का उपयोग उत्पादक आगे नयी मशीन खरीदने अथवा नये कारखाने लगाने के लिए करते हैं ताकि उत्पादन का विस्तार हो। उत्पादन क्षमता में वृद्धि लाने के लिए जो व्यय किया जाता है, उसे **निवेश व्यय** कहते हैं।

संक्षेप में, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है– वह अर्थव्यवस्था जिसमें अधिकांश आर्थिक क्रियाकलापों के निम्नलिखित अभिलक्षण हों– (अ) उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है (ब) बाज़ार में निर्गत को बेचने के लिए ही उत्पादन किया जाता है (स) श्रमिकों की सेवाओं का क्रय-विक्रय एक निश्चित कीमत पर

होता है, जिसे मज़दूरी की दर कहते हैं (श्रम का क्रय-विक्रय जिस दर पर किया जाता है, उसे **श्रमिक की मज़दूरी दर** कहते हैं)।

यदि हम उपरोक्त तीन मानदंडों को विश्व के देशों के संदर्भ में लागू करें तो हम पायेंगे कि पूँजीवादी देश पिछले तीन से चार सौ वर्ष के दौरान अस्तित्व में आए। इसके अतिरिक्त वर्तमान में भी उत्तरी अमरीका, यूरोप और एशिया के कुछ ही देश पूँजीवादी देशों की श्रेणी में आएँगे। कई अल्पविकसित देशों में (खास करके कृषि में) उत्पादन का कार्य किसान परिवारों के द्वारा किया जाता है। मज़दूरी श्रम का प्रयोग कभी-कभार होता है और अधिकतर श्रम कार्य परिवार के सदस्य स्वयं करते हैं। उत्पादन केवल बाज़ार के लिए नहीं होता है, उत्पादन का एक बड़ा अंश परिवार के द्वारा उपभोग में लाया जाता है। प्रायः किसानों के पूँजी स्टॉक में कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं होती है। अधिसंख्य आदिवासी समाज में भूमि का स्वामित्व नहीं होता है। भूमि का स्वामित्व समस्त जनजाती के पास हो सकता है। हमने इस पुस्तक में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह ऐसे समाजों पर लागू नहीं होता है। किंतु यह सच है कि अनेक विकासशील देशों में जो उत्पादन की इकाइयाँ मौजूद हैं, वह पूँजीवादी सिद्धांतों के अनुरूप हैं। इस पुस्तक में उत्पादन इकाइयों को **फर्म** कहा गया है। किसी फर्म के कारोबार के संचालन का दायित्व उद्यमियों के ऊपर होता है। उद्यमी ही बाज़ार से श्रमिकों को किराये पर लाकर अपने उत्पादन प्रक्रम में नियोजित करता है। इसी प्रकार वह भूमि एवं पूँजी का भी नियोजन करता है। इन आगतों के नियोजन के उपरांत उद्यमी उत्पादन प्रक्रिया का संचालन करता है। उनका उद्देश्य वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन कर (जिसे **निर्गत** कहा जाता है) बाज़ार में उनको बेचना और उससे लाभ प्राप्त करना होता है। इस प्रक्रिया में उसे जोखिम एवं अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, वह जिन वस्तुओं का उत्पादन करता है, वह ऊँची कीमत पर नहीं बिक पाती हैं। इससे उद्यमी के लाभ में कमी होती है। ध्यातव्य है कि पूँजीवादी देशों में उत्पादन के कारक अपनी आय का सृजन उत्पादन की प्रक्रिया एवं उससे प्राप्त निर्गत को बाज़ार में बेचकर करते हैं।

विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों में निजी पूँजीवादी क्षेत्र के अलावा राज्य में उसके अनुरूप एक संस्था होती है। राज्य की भूमिका कानून बनाने, उसे लागू करने और न्याय दिलाने में होती है। कई ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ राज्य उत्पादन का कार्य भी करता है- कर लगाने और सार्वजनिक आधारभूत संरचनाओं के निर्माण पर व्यय करने के अतिरिक्त राज्य के द्वारा स्कूल-कॉलेज भी चलाए जाते हैं तथा स्वास्थ्य सेवा भी प्रदान की जाती है। जब हम किसी देश की अर्थव्यवस्था का वर्णन करें, तो राज्य के इन आर्थिक प्रकार्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। राज्य को सूचित करने के लिए सुविधा की दृष्टि से हम आगे **सरकार** शब्द का प्रयोग करेंगे।

किसी अर्थव्यवस्था में फर्म और सरकार के अतिरिक्त दूसरा जो बड़ा क्षेत्र होता है, उसे **पारिवारिक** क्षेत्रक कहते हैं। यहाँ परिवार से हमारा तात्पर्य एकल व्यक्तिगत उपभोक्ता, जो अपने उपभोग से संबंधित निर्णय अथवा कई व्यक्तियों के समूह जिसके उपभोग संबंधित निर्णय संयुक्त रूप से लिए जाते हैं, से है। परिवार भी बचत करते हैं और कर अदा करते हैं। उन्हें इन क्रियाकलापों के लिए पैसे कैसे मिलते हैं? हम जानते हैं कि परिवार में कई लोग होते हैं। ये लोग फर्मों में श्रमिकों के रूप में काम करते हैं और मज़दूरी प्राप्त करते हैं। वे सरकारी विभागों में काम करते हैं और वेतन प्राप्त करते हैं। अथवा वे फर्मों के स्वामी भी हो सकते हैं जो लाभ कमाते हैं। फर्मों के उत्पादों की जिस बाज़ार में बिक्री होती है, वह सचमुच परिवार की माँग के बिना कार्य कर ही नहीं सकता है।

अभी तक हमने देशीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटकों का उल्लेख किया है। लेकिन विश्व के सारे देश बाह्य व्यापार भी करते हैं। बाह्य क्षेत्र, हमारे अध्ययन का चौथा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। बाह्य क्षेत्र से व्यापार तीन प्रकार से हो सकता है:

1. जब कोई देश अपनी घरेलू वस्तु विश्व के अन्य देशों में बेचते हैं, तो उसे **निर्यात** कहते हैं।
2. कोई देश जब विश्व के अन्य देशों से वस्तुएँ खरीदता है, तो उसे **आयात** कहते हैं। आयात और निर्यात के आलावा दूसरी तरह से भी विश्व के अन्य देश किसी देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।
3. किसी देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी पूँजी का भी प्रवाह हो सकता है अथवा कोई देश विदेशों में भी पूँजी का निर्यात कर सकता है।

सारांश

समष्टि अर्थशास्त्र में किसी अर्थव्यवस्था के समस्त आर्थिक परिवर्तों पर विचार किया जाता है। इसमें उन विविध अंतर-सहलग्नताओं की भी चर्चा है जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों में विद्यमान रहती हैं। इन्हीं कारणों से यह व्यष्टि अर्थशास्त्र से भिन्न होता है; जिसमें किसी अर्थव्यवस्था के खास क्षेत्रक में कार्यप्रणाली का परीक्षण किया जाता है और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रकों को एक समान मान लिया जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र का उद्‌भव एक पृथक विषय के रूप में 1930 में कीन्स के कारण हुआ। महामंदी से विकसित देशों को गहरा धक्का लगा और कीन्स को अपनी पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली। इस पुस्तक में हम प्राय: पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का ही अध्ययन करेंगे। अत: इसमें विकासशील देशों की कार्यप्रणाली को पूर्ण रूप से शामिल करना संभव नहीं होगा। समष्टि अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था को परिवार, फर्म, सरकार और बाह्य क्षेत्रक इन चार क्षेत्रकों के संयोग के रूप में देखा जाता है।

मूल संकल्पनाएँ

ब्याज की दर	मज़दूरी दर
लाभ	आर्थिक एजेंट या इकाइयाँ
महामंदी	बेरोज़गारी की दर
उत्पादन के चार कारक	उत्पादन के साधन
आगत	भूमि
श्रम	पूँजी
उद्यमवृत्ति	निवेश व्यय
मज़दूरी श्रम	पूँजीवादी देश अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था
फर्म	पूँजीवादी फर्म
निर्गत	परिवार
सरकार	बाह्य क्षेत्रक
निर्यात	आयात

अभ्यास

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में क्या अंतर है?
2. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ क्या हैं?
3. समष्टि अर्थशास्त्र की दृष्टि से अर्थव्यवस्था के चार प्रमुख क्षेत्रकों का वर्णन करें।
4. 1929 की महामंदी का वर्णन करें।

सुझावात्मक पठन

भादुड़ी, ए., 1990, *मेक्रोइकोनॉमिक्स: द डायनॉमिक्स ऑफ कॉमोडिटी प्रोडक्शन,* पृष्ठ 1–27, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली।

मनकीव, एन. जी., 2000, *मेक्रोइकोनॉमिक्स,* पृष्ठ 2–14, मैकमिलन वर्थ पब्लिशर्स, न्यूयार्क।

अध्याय 2

राष्ट्रीय आय का लेखांकन

इस अध्याय में हम एक सरल अर्थव्यवस्था की मूल कार्यपद्धति का परिचय प्राप्त करेंगे। इस अध्याय के खंड 2.1 में हमने कुछ प्रारंभिक विचारों का उल्लेख किया है, जिसके साथ हम कार्य करेंगे। अध्याय के खंड 2.2 में हमने वर्तुल पथ पर अर्थव्यवस्था के क्षेत्रकों से गुजरने वाली संपूर्ण अर्थव्यवस्था की समस्त आय का हम कैसे आकलन कर सकते हैं, इसका वर्णन किया है। इसी खंड में राष्ट्रीय आय की गणना की तीन विधियों का भी उल्लेख है; नामत: उत्पाद विधि, व्यय विधि एवं आय विधि। अंतिम खंड 2.3 में राष्ट्रीय आय की विविध उपकोटियों का वर्णन है। इसमें विभिन्न कीमत सूचकांकों जैसे–सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक, उपभोक्ता कीमत सूचकांक, थोक कीमत सूचकांकों की परिभाषा दी गई है और किसी देश के समस्त कल्याण के सूचक के रूप में उस देश के सकल घरेलू उत्पाद को लेने में जो समस्याएँ आती हैं, उन पर चर्चा की गई है।

2.1 समष्टि अर्थशास्त्र की कुछ मूलभूत संकल्पनाएँ

आधुनिक अर्थशास्त्र को एक विषय के रूप में स्थापित करने वाले अर्थशास्त्रियों में अग्रणी एडम स्मिथ ने अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति को 'एन इनक्वायरी इंटू द नेचर एंड काउजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशंस' का नाम दिया। किसी राष्ट्र की आर्थिक संपत्ति का सृजन कैसे होता है? देश अमीर अथवा गरीब कैसे बनते हैं? ये अर्थशास्त्र के कुछ केंद्रीय प्रश्न हैं? ऐसा नहीं है कि जिन देशों को खनिज अथवा वन अथवा अधिक उपजाऊ भूमि जैसी प्राकृतिक संपदा उपहार स्वरूप प्रकृति से प्राप्त हुई है, वे देश प्राकृतिक रूप से सबसे धनी हैं। वास्तव में संसाधन संपन्न अफ्रीका और लैटिन अमरीका विश्व के सबसे गरीब देश हैं, जबकि अनेक समृद्ध देशों के पास कोई प्राकृतिक संपदा नहीं है। एक समय था, जब प्राकृतिक संसाधनों के कब्जे को सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता था, लेकिन तब भी उत्पादन प्रक्रम के द्वारा संसाधन का रूपांतरण होता था।

आर्थिक संपत्ति अथवा किसी देश के धनी होने के लिए उसके पास केवल संसाधनों का होना आवश्यक नहीं है, मुख्य बात यह है कि इन संसाधनों का उपयोग कैसे किया जाये जिससे उत्पादन का प्रवाह उत्पन्न हो तथा उस प्रक्रम से कैसे आय और संपत्ति का सृजन किया जाये।

आइए, अब उत्पादन के इस प्रवाह पर विचार कीजिए। उत्पादन के इस प्रवाह की उत्पत्ति कैसे होती है? उत्पादन के प्रवाह का सृजन करने के लिए लोग अपनी ऊर्जाओं को एक सामाजिक और तकनीकी ढाँचे के अंतर्गत प्राकृतिक और मानव-निर्मित वातावरण में एक साथ लगाते हैं।

हमारी आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन के इस प्रवाह की उत्पत्ति लाखों छोटे-बड़े उद्यमों के द्वारा वस्तुओं – वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से होता है। इनमें बड़ी संख्या में लोगों को नियोजित करने वाले बड़े-बड़े निगमों से लेकर एकल उद्यमी व्यवसाय शामिल हैं। लेकिन उत्पादन के बाद इन वस्तुओं का क्या होता है? हर वस्तु के उत्पादकों को अपने निर्गत को बेचने की प्रवृत्ति होती है। इसीलिए पिन अथवा बटन जैसे-लघुत्तम मदों से लेकर वायुयान, ऑटोमोबाइल, बड़ी मशीनरी अथवा कोई विक्रय योग्य सेवा जैसे-डॉक्टर, वकील अथवा वित्तीय सलाहकार की सेवा तक, सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन उपभोक्ताओं को बेचने के लिए किया जाता है। उपभोक्ता कोई व्यक्ति हो सकता है अथवा उद्यम, उनके द्वारा क्रय की जानेवाली वस्तु अथवा सेवा अंतिम रूप से अथवा अग्रिम उत्पादन के लिए प्रयुक्त हो सकती है। जब इसका प्रयोग अग्रिम उत्पादन के लिए किया जाता है, तब अक्सर यह विशेष वस्तु अपनी विशेषता खो देती है तथा उत्पादन प्रक्रिया के द्वारा किसी दूसरी वस्तु के रूप में रूपांतरित हो जाती है। कपास उत्पादक किसान धागा तैयार करने वाली मिल को कपास बेचते हैं, जहाँ कपास से धागे तैयार किये जाते हैं; इन धागों को कपड़ा मिल को विक्रय किया जाता है जहाँ उत्पादन प्रक्रम के द्वारा इसका रूपांतरण कपड़े में होता है तथा इस कपड़े को अन्य उत्पादन प्रक्रम के द्वारा पहनने योग्य कपड़े में रूपांतरित किया जाता है। अब यह कपड़ा उपभोक्ताओं को अंतिम उपयोग हेतु विक्रय के लिए तैयार होते हैं। अत: वस्तु की ऐसी मद या प्रकार जिनका अंतिम उपयोग उपभोक्ताओं के द्वारा होता है अर्थात जिन्हें पुन: उत्पादन प्रक्रम के किसी चरण से गुजरना नहीं पड़ता है अथवा जिनमें पुन: कोई परिवर्तन नहीं होता है, उन्हें **अंतिम वस्तु** कहते हैं।

इसे हम अंतिम वस्तु क्यों कहते हैं? क्योंकि एक बार इनका विक्रय होने के बाद यह सक्रिय आर्थिक प्रवाह से बाहर हो जाता है। अब किसी भी उत्पादक के द्वारा इसमें कोई बदलाव नहीं किया जाएगा। यद्यपि अंतिम क्रेता के द्वारा रूपांतरण किया जा सकता है। वस्तुत: कई अंतिम वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिनका उपभोग के दौरान रूपांतरण होता है। अत: चाय पत्ती का उपभोग हम उसी रूप में नहीं करते, जैसाकि हम खरीदते हैं बल्कि इसका उपयोग पेय चाय के रूप में होता है, जिसका उपभोग किया जाता है। इस तरह हमारे रसोईघर में प्राय: भोजन पकाने के प्रक्रम के माध्यम से कच्चे खाद्य पदार्थ को खाने योग्य बनाया जाता है। किंतु घर में भोजन पकाने का कार्य आर्थिक कार्यकलाप के अंतर्गत नहीं आता है, यद्यपि उत्पाद के रूप में इसमें परिवर्तन होता है। घर में बनाया गया भोजन बाज़ार में विक्रय हेतु नहीं जाता है, यद्यपि यदि इसी प्रकार के भोजन बनाने या चाय बनाने का काम किसी जलपान-गृह में किया जाये, जहाँ कि इन पकाए गए पदार्थों का विक्रय उपभोक्ताओं को किया जाता है, तब वही मदें जैसे कि चाय पत्ती, अंतिम वस्तु कहलायेंगी तथा आगतों के रूप में गिनी जायेगी, जिससे कि आर्थिक मूल्यवद्धर्न होता है। अत: कोई वस्तु अपनी प्रकृति के कारण नहीं बल्कि उपयोग की आर्थिक प्रकृति के दृष्टि से अंतिम वस्तु बनती है।

अंतिम वस्तुओं को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है: **उपभोग वस्तुएँ और पूँजीगत वस्तुएँ**। आहार और वस्त्र जैसी वस्तुएँ तथा मनोरंजन जैसी सेवाओं का उपभोग उसी समय होता है, जब अंतिम उपभोक्ताओं के द्वारा उनको क्रय किया जाता है। इन्हें उपभोग वस्तुएँ या उपभोक्ता वस्तुएँ कहते हैं (इसमें सेवाएँ भी सम्मिलित हैं, किंतु सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें उपभोक्ता वस्तुएँ कहते हैं)।

इसके बाद कुछ अन्य प्रकार की भी वस्तुएँ होती हैं, जो टिकाऊ प्रकृति की होती है और उत्पादन प्रक्रम में उनका प्रयोग होता है। ऐसी वस्तुओं में औज़ार, उपकरण और मशीन आते हैं। यद्यपि अन्य साध्य, वस्तुओं का निर्माण तो करते हैं लेकिन उत्पादन प्रक्रम में इनके खुद के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ये अंतिम वस्तुएँ भी हैं, किंतु यहाँ अंतिम रूप से उपयोग की जाने वाली अंतिम वस्तु नहीं हैं। ऊपर हमने जिन अंतिम वस्तुओं की चर्चा की है उनसे भिन्न ये किसी भी उत्पादन प्रक्रम का निर्णायक आधार होती हैं, जिससे उत्पादन में मदद मिलती है और उत्पादन संभव हो पाता है। इन वस्तुओं से पूँजी के एक भाग का निर्माण होता है जो कि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण कारक है। इसमें एक उत्पादक उद्यमी ने निवेश किया है तथा वे उत्पादन प्रक्रम में उत्पादन चक्र को जारी रखने हेतु इसे सक्षम बनाता है। ये पूँजीगत वस्तुएँ हैं तथा इनमें क्रमशः टूट-फूट होती रहती है, अतः समय-समय पर इसमें मरम्मत की जाती है अथवा कालांतर में बदल दी जाती है। किसी अर्थव्यवस्था द्वारा धारित पूँजी के स्टॉक को बचाया जाता है, उसे कायम रखा जाता है और आंशिक या पूर्ण रूप से पुनः नया किया जाता है और यही इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जिसका अनुकरण किया जायेगा।

यहाँ यह याद रहे कि कुछ वस्तुएँ जैसे टेलीविजन सेट, ऑटोमोबाइल, घरेलू कंप्यूटर यद्यपि अंतिम उपभोग की वस्तुएँ हैं, फिर भी उनमें एक समान विशेषता होती है जो पूँजीगत वस्तु जैसी होती है। ये वस्तुएँ टिकाऊ भी हैं। अर्थात ये तुरंत अथवा अल्पकालिक उपभोग में नष्ट नहीं होती है। इनका जीवन काल आहार और वस्त्र जैसी वस्तुओं की अपेक्षा लंबा होता है। उपयोग होने पर इनमें भी टूट-फूट होती है और मरम्मत अथवा पुर्जों के बदलने अर्थात मशीन की तरह इनकी भी सुरक्षा, रख-रखाव और पुनः नवीकरण की आवश्यकता होती है। इसीलिए, हम इन वस्तुओं को **टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ** कहते हैं।

अतः किसी अर्थव्यवस्था में एक दी हुई कालावधि में उत्पादित सारी अंतिम वस्तुएँ या सेवाओं पर यदि हम विचार करें तो वे या तो उपभोग की वस्तुओं (टिकाऊ तथा गैर-टिकाऊ) के रूप में होती हैं या पूँजीगत वस्तुओं के रूप में। अंतिम वस्तुओं में आर्थिक प्रक्रम के अंतर्गत पुनः कोई परिवर्तन नहीं होता है।

अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन कि एक बड़ी मात्रा अंतिम उपभोग के रूप में समाप्त नहीं होती है और ये पूँजीगत वस्तुएँ भी नहीं हैं। इन वस्तुओं का उपयोग अन्य उत्पादक आगत सामग्री के रूप में कर सकते हैं, जैसे ऑटोमोबाइल निर्माण के लिए इस्पात की चादर का उपयोग और बर्तन बनाने के लिए ताँबे का प्रयोग। ये **मध्यवर्ती वस्तुएँ** हैं जो प्रायः अन्य वस्तुओं के उत्पादन में कच्चे माल अथवा आगत के रूप में प्रयुक्त होती है। *ये अंतिम वस्तुएँ नहीं हैं।*

अब अर्थव्यवस्था में उत्पादन के समान प्रवाह के संदर्भ में विभक्त जानकारी के लिए हमें अर्थव्यवस्था में अंतिम रूप से उत्पादित वस्तुओं के समान स्तर के परिमाणात्मक माप की आवश्यकता होती है। हालाँकि परिमाणात्मक आकलन को प्राप्त करने के क्रम में–अर्थव्यवस्था में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं की माप के लिए यह स्पष्ट है कि हमें *सामान्य मापदंड* की आवश्यकता होती है। कपड़े की माप के लिए जिस मीटर का प्रयोग किया जाता है, उससे हम टनों में चावल को नहीं माप सकते हैं और ना ही ऑटोमोबाइल अथवा मशीन की गिनती कर सकते हैं। इसीलिए एक सामान्य माप के पैमाने के लिए मुद्रा का प्रयोग होता है। चूँकि इनमें से प्रत्येक वस्तु का उत्पादन विक्रय के उद्देश्य से किया जाता है, इसीलिए इन विभिन्न *वस्तुओं के मौद्रिक मूल्य के कुल योग से अंतिम निर्गत की मात्रा प्राप्त होती है।* लेकिन, हम केवल अंतिम वस्तु का मूल्यांकन क्यों करते हैं? निश्चित रूप से मध्यवर्ती वस्तुएँ किसी उत्पादन प्रक्रम की महत्त्वपूर्ण आगत है और इन वस्तुओं के उत्पादन में मानव शक्ति और पूँजी स्टॉक का एक

महत्त्वपूर्ण भाग शामिल होता है। चूँकि हम निर्गत के मूल्य का उपयोग करते हैं, इसीलिए हमें यह समझना चाहिए की अंतिम वस्तु के मूल्य में मध्यवर्ती वस्तु का मूल्य भी शामिल होता है। अलग से उनकी गणना करने पर दु*बारा गणना* करने से बचा जा सकता है। जबकि मध्यवर्ती वस्तुओं पर विचार करने से कुल आर्थिक कार्यकलाप का पूरा विवरण प्राप्त हो सकता है, फिर भी उनकी गणना से हमारे आर्थिक कार्यकलाप का अंतिम मूल्य अतिश्योक्ति पूर्ण होगा।

इस स्तर पर **स्टॉक** और **प्रवाह** की संकल्पना का परिचय प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है। अक्सर हम सुनते हैं कि किसी का औसत वेतन 10,000 रुपए है अथवा इस्पात उद्योग का निर्गत इतने टन अथवा इतने रुपए मूल्य में है। लेकिन यह कथन अधूरा है क्योंकि यह स्पष्ट नहीं है कि जिस आय की बात कही गई है, वह वार्षिक है अथवा मासिक या दैनिक और इससे अवश्य ही एक बड़ी भिन्नता उत्पन्न होती है। कभी-कभी जब संदर्भ परिचित हो तो हम कल्पना करते हैं कि कालावधि ज्ञात है, इसीलिए उसका उल्लेख नहीं करते हैं। किंतु ऐसे सारे कथनों में अंतर्निहित एक निश्चित समयावधि होती है, अन्यथा ऐसे कथन अर्थहीन हैं। अतः आय अथवा निर्गत अथवा लाभ ऐसी संकल्पना है, जिससे तभी अर्थ निकलता है जब अवधि निर्धारित हो। इनको प्रवाह कहते हैं, क्योंकि ये एक समयावधि के लिए होते हैं। अतः हमें इनके परिमाणात्मक माप प्राप्त करने के लिए एक समयावधि अंकित करनी पड़ती है। चूँकि किसी अर्थव्यवस्था में अधिकांश लेखांकन कार्य वार्षिक होते हैं, इसीलिए इनमें से अधिकांश को वार्षिक रूप में ही अभिव्यक्त किया जाता है, जैसे– वार्षिक लाभ अथवा उत्पादन। **प्रवाह को एक समयावधि के लिए पारिभाषित किया जाता है।**

इसके विपरीत, अंकित समयावधि में एक बार उत्पादित पूँजीगत वस्तुएँ अथवा टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं में ना तो टूट-फूट होती है और ना ही उनका उपभोग होता है। वास्तव में, पूँजीगत वस्तुएँ हमें उत्पादन के विभिन्न चक्रों में सेवाएँ प्रदान करती हैं। फैक्ट्री के भवन और मशीन विशिष्ट समयावधि से असंबद्ध होते हैं। अगर किसी नई मशीन को शामिल किया जाता है, तब उसमें सम्मिलन अथवा कमी हो सकती है अथवा मशीन अनुपयोगी होती है तथा उसे बदला नहीं जाता है, इसे स्टॉक कहते हैं।

स्टॉक की परिभाषा किसी निश्चित समय पर की जाती है। किंतु हम एक निर्धारित समय अवधि में *स्टॉक में परिवर्तन* का मूल्यांकन कर सकते हैं, जैसे इस वर्ष कितनी नई मशीनें शामिल की गई। अतः स्टॉक में इस प्रकार के परिवर्तन, प्रवाह हैं, जिनका मूल्यांकन एक निर्देशित समयावधि में किया जा सकता है। कोई खास मशीन अनेक वर्षों तक (यदि टूट-फूट न हो) पूँजी स्टॉक का हिस्सा हो सकती है, लेकिन वह मशीन पूँजी स्टॉक में शामिल नई मशीन के प्रवाह का केवल एक वर्ष के लिए हिस्सा हो सकती है।

स्टॉक परिवर्तों और प्रवाह परिवर्तों के बीच अंतर को समझने के लिए, मान लीजिए कि एक नल से किसी हौज को भरा जा रहा है। नल से प्रति मिनट जितना पानी हौज में भरा जा रहा है, वह प्रवाह है। लेकिन जितना पानी टैंक में किसी समय विशेष में उपलब्ध होता है, वह स्टॉक संकल्पना है।

हम अंतिम निर्गत के माप की चर्चा करते हैं, हमारे अंतिम निर्गत का हिस्सा पूँजीगत वस्तुएँ भी होती हैं जिससे अर्थव्यवस्था[1] के **सकल निवेश** की रचना होती है। इनमें मशीनें, औज़ार और

[1] अर्थशास्त्रियों ने निवेश को इस तरह से परिभाषित किया है। इसे निवेश के समान अभिप्राय के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए, जिसमें मुद्रा के द्वारा भौतिक तथा वित्तीय परिसंपत्तियों की खरीद को प्रयोग में लाया जाता है। अतएव, निवेश शब्द का प्रयोग शेयरों अथवा परिसंपत्तियों की खरीद अथवा यहाँ तक बिना नीति के संबंध में भी जैसाकि अर्थशास्त्री निवेश को परिभाषित करते हैं, इसका कोई संबंध नहीं है। हमारे लिए निवेश सदैव पूँजी निर्माण है, पूँजीगत स्टॉक में सकल अथवा निवल सम्मिलन।

उपकरण; भवन, कार्यलय का स्थान, गोदाम या आधारभूत संरचना, जैसे–सड़क, सेतु, हवाईअड्डा या घाट आदि हो सकते हैं। किंतु एक वर्ष में उत्पादित सारी पूँजीगत वस्तुओं से पूर्व से विद्यमान पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त वृद्धि नहीं होती। पूँजीगत वस्तुओं के वर्तमान निर्गत का एक महत्त्वपूर्ण अंश विद्यमान पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक के अंश के रख-रखाव और प्रतिस्थापन में चला जाता है। यही कारण है कि पूर्व से विद्यमान पूँजी स्टॉक में टूट-फूट होती है और उसके रख-रखाव एवं प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है। इस वर्ष उत्पादित पूँजीगत वस्तुओं का एक हिस्सा विद्यमान पूँजीगत वस्तुओं के प्रतिस्थापन में चला जाता है और इससे पूँजीगत वस्तुओं के पहले से विद्यमान स्टॉक में कोई अभिवृद्धि नहीं होती है और इसके मूल्य को निवल निवेश के माप को प्राप्त करने के लिए सकल निवेश से घटाने की आवश्यकता होती है। पूँजीगत वस्तुओं की नियमित टूट-फूट का समायोजन करने के क्रम में सकल निवेश के मूल्य से किए गए लोप को **मूल्यह्रास** कहते हैं।

अतः अर्थव्यवस्था में पूँजीगत वस्तुओं में नए योग का माप निवल निवेश अथवा नई पूँजी रचना के द्वारा होता है, जिसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है:

निवल निवेश = सकल निवेश – मूल्यह्रास

इस संकल्पना की जिसे मूल्यह्रास कहते हैं, इसकी थोड़ी विस्तार में जाँच कीजिए। मान लीजिए, कोई फर्म नई मशीन में निवेश करती है, यह मशीन अगले 20 वर्षों तक कार्य कर सकती है जिसके बाद इसकी मरम्मत अथवा इसे बदलने की ज़रूरत हो सकती है। जिसे हम कल्पना कर सकते हैं कि यदि प्रत्येक वर्ष के उत्पादन प्रक्रम में मशीन का धीरे-धीरे घिसावट हो रहा हो, तो मानो प्रत्येक वर्ष इसके वास्तविक मूल्य में 20वें भाग के बराबर मूल्यह्रास होता है। अतः 20 वर्ष के बाद प्रतिस्थापन के लिए थोक निवेश पर विचार करने के बदले हम प्रतिवर्ष वार्षिक मूल्य के ह्रास लागत पर विचार कर सकते हैं। एक सामान्य समझ जिसमें मूल्यह्रास शब्द का प्रयोग तथा उसकी संकल्पना को लिया गया है- वह है किसी विशिष्ट पूँजीगत वस्तु का प्रत्याशित जीवनकाल। जैसे, मशीन के संदर्भ में दिया गया 20 वर्षों का उदाहरण। अतः मूल्यह्रास किसी पूँजीगत वस्तु की टूट-फूट के लिए वार्षिक भत्ता है।[2] दूसरे शब्दों में, यह वस्तु के उपयोग के वर्षों की संख्या से लागत में भाग देने पर प्राप्त होता है।[3]

ध्यातव्य है कि मूल्यह्रास एक लेखांकन संकल्पना है। कोई वास्तविक व्यय वास्तव में प्रत्येक वर्ष नहीं होता किंतु मूल्य का लेखांकन हर वर्ष होता है। किसी अर्थव्यवस्था में हजारों उद्यम हैं जिनके पास उपकरणों के अलग-अलग जीवन काल होते हैं। किसी वर्ष-विशेष में कुछ उद्यम वास्तव में बड़ी मात्रा में प्रतिस्थापन व्यय करते हैं। अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि वास्तविक प्रतिस्थापन व्यय का स्थिर प्रवाह होगा जो उस अर्थव्यवस्था में होने वाले वार्षिक मूल्यह्रास की मात्रा के लेखांकन से थोड़ा बहुत संगत होगा।

अब यदि हम किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित कुल अंतिम निर्गत पर एक दृष्टि डालें, तो हम देखेंगे कि उपभोक्ता वस्तुओं (और सेवाओं) और पूँजीगत वस्तुओं के निर्गत होते हैं। उपभोक्ता

[2] मूल्यह्रास, अप्रत्याशित अथवा अचानक हुए विनाश या पूँजी का दुरूपयोग जो कि दुर्घटना, प्राकृतिक आपदा या फिर इस तरह की अन्य बाह्य परिस्थितियों के कारण होता है, नहीं कहा जाता है।

[3] इसके बजाय यहाँ हम परिसंपत्तियों के मूल मूल्यों के आधार पर एक सरल पूर्वधारणा का निर्माण कर रहे हैं, कि मूल्यह्रास की दर स्थिर है। वास्तविक कार्य व्यवहार में मूल्यह्रास का परिकलन करने के अन्य तरीके हो सकते हैं।

वस्तुओं से अर्थव्यवस्था की संपूर्ण आबादी के उपभोग का संवर्धन होता है। अंतिम वस्तुओं का दूसरा हिस्सा पूँजीगत वस्तुएँ हैं, जिसका क्रय व्यापारी या उद्यमी करते हैं; वे इसका उपयोग या तो उद्योग रख-रखाव के लिए या पूँजी स्टॉक में हुए टूट-फूट के लिए या अपने पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त वृद्धि के लिए करते हैं। एक विशिष्ट समयावधि जैसे किसी एक वर्ष में अंतिम वस्तुओं का कुल उत्पादन चाहे तो उपभोग के रूप में होगा या निवेश के रूप में। इसका तात्पर्य है कि यहाँ उपभोग और निवेश के बीच में अदला-बदली होती है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता वस्तु का उत्पादन अधिक होगा तो पूँजीगत वस्तुओं का कम अथवा इसके विपरीत उत्पादन हो सकता है।

ऐसा सामान्यत: देखा गया है कि पूँजीगत वस्तुएँ जितनी परिष्कृत होंगी, वस्तु के उत्पादन के लिए श्रमिक की क्षमता बढ़ेगी। परंपरागत बुनकर को एक साड़ी बनाने में महीनों लगेगा लेकिन आधुनिक मशीनरी के द्वारा एक दिन में हजारों साड़ियाँ तैयार की जाती हैं। पिरामिड अथवा ताजमहल जैसे ऐतिहासिक स्मारक को बनाने में दशकों लगे लेकिन आधुनिक निर्माण मशीनरी से कुछ ही वर्षों में गगनचुंबी इमारतें बनाई जा सकती हैं। पूँजीगत वस्तुओं के अधिक उत्पादन करने वाले नये प्रकारों के कारण उपभोक्ता वस्तुओं के अधिक उत्पादन में मदद मिलेगी।

क्या यहाँ हम स्वयं परस्पर विरोधी विचार धारण नहीं कर रहे हैं? पीछे हमने देखा कि एक अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तुओं का कुल निर्गत का एक छोटा हिस्सा उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन के लिए उपलब्ध होता है, जब उत्पादन का अधिकांश हिस्सा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में व्यय किया जाता है। और अब हम यह कह सकते हैं कि अधिक पूँजीगत वस्तुओं का तात्पर्य अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ हैं। यद्यपि यहाँ कोई विरोधाभास नहीं है। यहाँ समय का क्या महत्व है? अर्थव्यवस्था के किसी खास अवधि में दिए गए कुल उत्पादन स्तर पर, यह सत्य है कि अधिक पूँजीगत वस्तुएँ कम उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करेंगी। लेकिन अधिक पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन का तात्पर्य है कि भविष्य में श्रमिकों के पास कार्य करने के लिए अधिक पूँजीगत औजार होंगे। हमने देखा कि यह एक उच्च क्षमता वाले अर्थव्यवस्था में समान संख्या में श्रमिक उत्पादन करते हैं। यह कुल निर्गत अधिक होती है

एडम स्मिथ को आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक के रूप में जाना जाता है। (उस समय यह विषय राजनीतिक अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता था)। वे स्कॉटलैंड के निवासी थे एवं ग्लासगो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। उन्हें दार्शनिक शास्त्र में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ था। उनकी प्रकाशित पुस्तक 'एन इन्क्वायरी इन्टू द नेचर एंड काउज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशंस' (1776) विषय की मुख्य व्याख्यात्मक पुस्तक के रूप में जाना जाता है। पुस्तक के अनुच्छेद से ''कसाई, किण्वक एवं नानबाई के परोपकारिता की भावना से हम भोजन की उम्मीद नहीं करते हैं। बल्कि वे भी स्वयं को स्वार्थ की पूर्ति के लिए ऐसा करते हैं। हम अपनी जरूरतों की बात करते हैं न कि मानवता की। यहाँ तक कि उनके स्व प्रेम और उनकी आवश्यकता के लिए भी चर्चा नहीं करते लेकिन उनकी सुविधा के लिये स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था की वकालत जरूर करते हैं।'' स्मिथ से पहले फ्रांस के फिजियोक्रेट्स राजनीतिक अर्थशास्त्र के महान विचारक थे।

एडम स्मिथ

जब हम इसकी तुलना कम पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन से करते हैं। यदि कुल निर्गत अधिक है तो निश्चित रूप से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा अधिक हो जाएगी। इस प्रकार आर्थिक चक्र मात्र अधिक पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन ही नहीं करती है बल्कि इसमें विस्तार भी करती है। यह संभव है कि चर्चा में दूसरे वर्तुल प्रवाह को भी हम ले सकते हैं।

किसी व्यक्ति के पास वस्तुओं को खरीदने की क्षमता आय से आती है। आय की प्राप्ति कोई व्यक्ति श्रमिक (मज़दूरी) अथवा उद्यमी (लाभ) अथवा भूस्वामी (लगान) अथवा पूँजीधारी (ब्याज) के रूप में प्राप्त करता है। संक्षेप में, उत्पादन के कारकों के स्वामी के रूप में लोग जो आय प्राप्त करते हैं, उनका उपयोग वे वस्तु और सेवाओं की अपनी माँग की पूर्ति के लिए करते हैं।

यहाँ हम एक वर्तुल प्रवाह को देख सकते हैं, जो बाज़ार के माध्यम से सुगम बनता है। उत्पादन प्रक्रम के संचालन के लिए उत्पादन के कारकों की माँग जो फर्म करती है, उससे लोगों के अदायगी का सृजन होता है, फलतः वस्तुओं और सेवाओं की लोगों की माँग से फर्म के लिए अदायगी का सृजन होता है और इससे उनके द्वारा उत्पादित उत्पादों की बिक्री होती है।

अतः समाज का उपभोग का कार्य और उत्पादन जटिलतापूर्वक एक–दूसरे से जुड़े होते हैं और वास्तव में यहाँ एक प्रकार का वर्तुल कार्योत्पादन होता है। अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रम से उनके लिए कारक आदयगी का सृजन होता है, जो उसमें संलग्न होते हैं और उत्पादन के निर्गत के रूप में वस्तुओं और सेवाओं का सृजन होता है। इस प्रकार सृजित आय से अंतिम उपभोग की वस्तुओं को खरीदने की शक्ति की रचना होती है और इस प्रकार व्यवसायी के द्वारा उनकी बिक्री संभव होती है, जो उनके उत्पादन का मुख्य उद्देश्य है। उत्पादन प्रक्रम में निर्मित पूँजीगत वस्तुएँ भी उत्पादकों को आय–मज़दूरी, लाभ, इत्यादि का अर्जन करने योग्य बनाती है। पूँजीगत वस्तुओं से किसी अर्थव्यवस्था के पूँजी स्टॉक में या तो योग होता है अथवा स्टॉक कायम रहता है और इससे अन्य वस्तुओं का उत्पादन संभव होता है।

2.2 आय का वर्तुल प्रवाह और राष्ट्रीय आय गणना की विधि

पूर्व खंड में अर्थव्यवस्था के संबंध में जो वर्णन किया गया, उससे हम कुल मिलाकर यह जानने

ब्रिटिश अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स का जन्म 1883 में हुआ था। उनकी शिक्षा किंग्स कॉलेज, कैंब्रिज यूनाइटेड किंगडम में हुई थी और बाद में 'विशेषज्ञ' के रूप में नियुक्त हुए। प्रथम विश्व युद्ध के वर्षों में वे तीक्ष्ण विद्वता के अलावा सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय राजनायिक के रूप में भी जुड़े रहे। अपनी पुस्तक 'इकोनॉमिक कंसीक्वेंसेज ऑफ द पीस (1919) में युद्ध की शांति समझौते के भंग होने की भविष्याणी इन्होंने कर दी थी। उनकी पुस्तक 'जनरल थ्योरी ऑफ इंप्लायमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी' (1936) बीसवीं सदी की अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है। कीन्स विदेशी मुद्रा के समझदार सट्टेबाज थे।

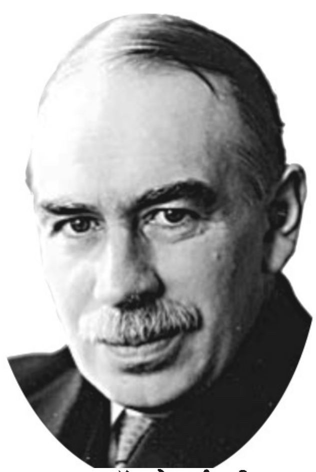

जॉन मेनार्ड कीन्स

में सक्षम हो गए हैं कि कोई सरल अर्थव्यवस्था सरकार, बाह्य व्यापार अथवा किसी बचत के बिना किस प्रकार कार्य करती है। फर्म, परिवारों को उसके उत्पादक कार्यकलाप, जिसका वह निष्पादन करता है, के लिए भुगतान करती है। जैसाकि हमने पहले ही उल्लेख किया है कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के दौरान चार प्रकार के मौलिक योगदान किये जा सकते हैं। (a) मानवीय श्रम का योगदान, जिसका पारिश्रमिक मज़दूरी कहलाता है। (b) पूँजी का योगदान, जिसका पारिश्रमिक ब्याज है। (c) उद्यमवृत्ति का योगदान, जिसका पारिश्रमिक लाभ है। (d) स्थिर प्राकृतिक संसाधनों (जिसे भूमि कहा जाता है) का योगदान, जिनका पारिश्रमिक लगान है।

इस सरलीकृत अर्थव्यवस्था में सिर्फ एक तरीका है, जिसमें परिवार अपनी आय का निपटान कर सकते हैं। नामतः वह अपनी समस्त आय को घरेलू फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय कर सकते हैं। उनकी आय के निपटान के अन्य मार्ग बंद रहते हैं। परिवार बचत नहीं करते हैं और वह न ही सरकार को कोई कर अदा करते हैं, क्योंकि यहाँ कोई सरकार नहीं है और ना ही वे वस्तुओं का अयात करते हैं, क्योंकि इस सरलीकृत अर्थव्यवस्था में कोई बाह्य व्यापार नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के कारक अपने पारिश्रमिक का उपयोग उन वस्तुओं और सेवाओं के क्रय पर करता है, जो उत्पादन में सहायक होते हैं। अर्थव्यवस्था के परिवारों का समस्त उपभोग फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर हुए समस्त व्यय के बराबर होता है। अतः विक्रय संप्राप्ति के रूप में अर्थव्यवस्था की समस्त आय उत्पादकों के पास पुनः वापस आ जाती है। इस व्यवस्था में किसी प्रकार का लीकेज़ नहीं होता है अर्थात फर्म द्वारा कारक अदायगी (उत्पादन के चारों कारकों द्वारा अर्जित पारिश्रमिक का कुल योग) के रूप में वितरित राशियों का कुल योग और उनके द्वारा विक्रय संप्राप्ति के रूप में प्राप्त समस्त उपभोग मूल्य में कोई अंतर नहीं होता है।

अगली अवधि में फर्म वस्तुओं और सेवाओं का पुनः उत्पादन करती है तथा उत्पादन के कारकों को पारिश्रमिक प्रदान करती हैं। इन पारिश्रमिकों का उपयोग पुनः वस्तुओं और सेवाओं के क्रय के लिए होगा। अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि अर्थव्यवस्था की समस्त आय हर वर्ष दो क्षेत्रकों फर्म और परिवार के बीच वर्तुल पथ पर प्रवाहमान रहेगी। इसे निम्नांकित रेखाचित्र 2.1 में प्रदर्शित किया गया है। जब आय को फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय किया जाता है, तो यह समस्त व्यय के रूप में फर्म को प्राप्त होती है। चूँकि व्यय का मूल्य वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य के बराबर होना चाहिए, इसीलिए हम समस्त आय की माप फर्म के द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य की गणना करके करते हैं। जब फर्म द्वारा प्राप्त समस्त संप्राप्ति का भुगतान उत्पादन के कारकों को किया जाता है, तो यह समस्त आय का रूप ले लेती है।

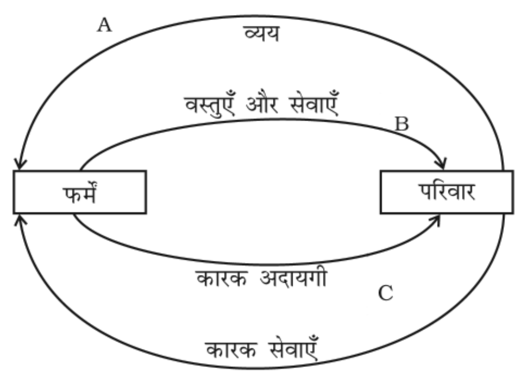

रेखाचित्र 2.1: सरल अर्थव्यवस्था में आय का वर्तुल प्रवाह

रेखाचित्र 2.1 में सबसे ऊपरी तीर, जो परिवार को फर्म से जोड़ती है फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के क्रय पर परिवार के व्यय को प्रदर्शित करता है। दूसरा तीर जो फर्म को परिवार से जोड़ता है, ऊपर के तीर का प्रतिरूप है। यह फर्म से परिवार की तरफ प्रवाहमान वस्तु

और सेवाओं को बतलाता है। दूसरे शब्दों में, यह वह प्रवाह है जो कि परिवार व्यय करके फर्मों से प्राप्त करते हैं। संक्षेप में, ऊपर के दो तीर वस्तुओं और सेवाओं के बाज़ार को प्रदर्शित करते हैं–ऊपर का तीर वस्तुओं और सेवाओं की अदायगी के प्रवाह को, नीचे का तीर वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार, रेखाचित्र के निचले भाग के दो तीर उत्पादन बाज़ार के कारकों को प्रदर्शित करता है। सबसे नीचे का तीर जो परिवार को फर्म से जोड़ता है, परिवार द्वारा फर्म को प्रदान की गई सेवा को संकेतित करता है। इन सेवाओं का उपयोग करके फर्म निर्गत का निर्माण करती हैं। इसके ऊपर का तीर जो फर्म को परिवार से जोड़ता है, फर्म द्वारा परिवार को उनकी सेवा के लिए किये गये भुगतान को प्रदर्शित करता है।

चूँकि वस्तु और सेवाओं के समस्त मूल्य को प्रदर्शित करते हुए मुद्रा का एक ही परिमाण वर्तुल पथ पर गमन करता है। यदि हम वस्तु और सेवाओं के समस्त मूल्यों का एक वर्ष के दौरान आकलन करना चाहें, तो आरेख में निर्देशित किसी भी बिंदु–रेखाओं पर अंकित प्रवाह का वार्षिक मूल्य की माप कर सकते हैं। यदि हम सभी फर्मों द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्यों का मूल्यांकन करते हुए (A पर) प्रवाह का मापन कर सकते हैं। यह विधि **व्यय विधि** कहलायेगी। यदि हम (B पर) सभी फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के समस्त मूल्यों की माप करते हैं, यह विधि **उत्पाद विधि** कहलायेगी। C पर सभी कारक अदायगियों के कुल योग का मापन **आय विधि** कहलायेगी।

अवलोकन कीजिए कि अर्थव्यवस्था का समस्त व्यय उत्पादन के कारकों द्वारा अर्जित समस्त आय के बराबर होना चाहिये (A और C पर प्रवाह समान है)। अब मान लीजिए कि किसी समय विशेष में परिवार फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु और सेवाओं पर अधिक व्यय करने का निर्णय लेते हैं। कुछ देर के लिए, हम इस प्रश्न को छोड़ दें कि अतिरिक्त व्यय के लिए उनके पास मुद्रा कहाँ से आयेगी, क्योंकि वे पहले ही अपनी पूरी आय व्यय कर चुके हैं (वे अतिरिक्त व्यय को करने के लिए उधार ले सकते हैं)। अब यदि वह वस्तुओं और सेवाओं पर अधिक व्यय करते हैं तो फर्म इस अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिए अधिक उत्पादन करेगी। चूँकि वे अधिक उत्पादन करेंगी, इसीलिए फर्मों को उत्पादन के कारकों को अतिरिक्त पारिश्रमिक देना चाहिए। फर्म कैसे मुद्रा की अतिरिक्त राशि अदा करेगी। अतिरिक्त कारक अदायगी उत्पादित अतिरिक्त वस्तु और सेवाओं के मूल्य के बराबर होना चाहिये। इस प्रकार, परिवार को अचानक अतिरिक्त आय प्राप्त होगी जिससे उसे अपनी प्रारंभिक अतिरिक्त व्यय की भरपाई करने में मदद मिलेगी। दूसरे शब्दों में, परिवार प्रारंभिक रूप में अतिरिक्त व्यय करने का निर्णय ले सकते हैं और अंत में उनकी आय उतनी ही बढ़ेगी जितना कि उसे अतिरिक्त व्यय के लिए आवश्यकता होगी। इससे पृथक कोई अर्थव्यवस्था आय के वर्तमान स्तर से अधिक व्यय करने का निर्णय ले सकती है। लेकिन ऐसा करने से उसकी आय अंततोगत्वा व्यय के उच्च स्तर के साथ अनुकूल रूप से बढ़ेगी। प्रथम दृष्टया यह थोड़ा विरोधाभासी लग सकता है, लेकिन आय चूँकि वर्तुल पथ पर गमन करती है, इसीलिए यह बताना कठिन नहीं है कि एक बिंदु पर प्रवाह में वृद्धि से सभी स्तरों पर प्रवाह में वृद्धि होगी। यह एकल आर्थिक एजेंट (एक परिवार) का कार्य समस्त अर्थव्यवस्था के कार्य से कैसे भिन्न है, इसका एक और दृष्टांत है। पूर्व में परिवार की व्यक्तिगत आय से व्यय बाधित होता है। यह कभी नहीं हो सकता कि एक श्रमिक अधिक व्यय करने का निर्णय ले और उससे उसकी आय में समतुल्य वृद्धि हो। हम चौथे अध्याय में इसे अधिक विस्तार से पढ़ेंगे कि उच्च समस्त व्यय से समस्त आय में परिवर्तन कैसे होता है।

अर्थव्यवस्था के उपर्युक्त रेखाचित्रीय उदाहरण को सर्वसम्मति से एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था

के रूप में माना जाता है। ऐसी कहानी जो एक काल्पनिक अर्थव्यवस्था के क्रियाकलाप का वर्णन करती है समष्टि-अर्थशास्त्रीय मॉडल कहलाती है। स्पष्ट है कि मॉडल में वास्तविक अर्थव्यवस्था का विस्तार से वर्णन नहीं होता। उदाहरणत: हमारे मॉडल में यह मान लिया जाता है कि परिवार बचत नहीं करते हैं, सरकार नहीं होती है और अन्य देशों से व्यापार नहीं होता है। यद्यपि मॉडल में अर्थव्यवस्था का क्षण-प्रतिक्षण विस्तार से वर्णन करने की इच्छा प्रकट नहीं की गई है, उनका उद्देश्य आर्थिक व्यवस्था की कार्यपद्धति की आवश्यक विशेषताओं को उजागर करना ही है। लेकिन यहाँ यह सावधानी बरतनी होगी कि सामग्री का सरलीकरण इस प्रकार न हो कि अर्थव्यवस्था की अनिवार्य प्रकृति का मिथ्या निरूपण हो। अर्थशास्त्र मॉडलों से पूर्ण विषय है, इस पुस्तक में कई मॉडलों को प्रस्तुत किया जाएगा। एक अर्थशास्त्री का कार्य यह दर्शाना है कि कौन-सा मॉडल किस वास्तविक जीवन की दशाओं के लिए ज़रूरी है।

यदि हम ऊपर वर्णित अपने सरल मॉडल में परिवर्तन करें और बचत को लें, तो इससे यह मुख्य निष्कर्ष बदल जाएगा कि अर्थव्यवस्था की आय का समस्त मूल्यांकन अपरिवर्तित रहेगा। चाहे इसकी गणना A, B अथवा C, किसी भी स्थिति में की जाए। इससे पता चलता है कि यह निष्कर्ष मौलिक विधि से नहीं बदलता है। आर्थिक तंत्र कितना भी जटिल क्यों न हो, तीनों विधियों से आकलित वस्तुओं और सेवाओं का वार्षिक उत्पादन एक समान होगा।

हमने देखा कि किसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य की गणना तीन विधियों से की जा सकती है। अब हम इन गणनाओं के विस्तृत चरणों की चर्चा करेंगे।

2.2.1 उत्पाद अथवा मूल्यवर्धित विधि

उत्पाद विधि में हम उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के वार्षिक मूल्य की गणना करते हैं (यदि एक वर्ष समय की इकाई हो)। इसकी गणना कैसे की जाए? क्या हम अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का योग करते हैं? इन प्रश्नों को समझने में निम्नलिखित उदाहरण सहायक होगा।

मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में केवल दो प्रकार के उत्पादक हैं। वे गेहूँ उत्पादक (किसान) और ब्रेड निर्माता (बेकर) हैं। गेहूँ उत्पादक गेहूँ का उत्पादन करते हैं और उन्हें मानव श्रम के अलावा किसी भी प्रकार के आगत की आवश्यकता नहीं होती है। वे गेहूँ का कुछ अंश बेकर को बेचते हैं। बेकर को ब्रेड के उत्पादन में गेहूँ के अतिरिक्त अन्य किसी कच्चे माल की आवश्यकता नहीं होती है। मान लीजिए कि एक वर्ष में किसान द्वारा उत्पादित गेहूँ का मूल्य 100 रु॰ है। इनमें से वे 50 रु॰ मूल्य का गेहूँ बेकर को बेचते हैं। बेकर गेहूँ की इस मात्रा का उपयोग करके एक वर्ष के दौरान 200 रु॰ मूल्य का ब्रेड बनाता है। अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन का मूल्य कितना है? यदि हम क्षेत्रकों के उत्पादन के मूल्यों का योग सरल तरीके से निकालें तो हम 200 रु॰ (बेकरों के उत्पादन का मूल्य) और 100 रु॰ (किसानों के उत्पादन का मूल्य) को जोड़ देंगे। परिणाम 300 रु॰ आएगा।

तालिका 2.1: उत्पादन, मध्यवर्ती वस्तुएँ और मूल्यवर्धित

	किसान (राशि रु॰ में)	*बेकर* (राशि रु॰ में)
कुल उत्पादन	100	200
प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुएँ	0	50
मूल्यवर्धित	100	200 – 50 = 150

थोड़ा चिंतन करने पर हम पाएँगे कि समस्त उत्पादन का मूल्य 300 रु॰ नहीं है। किसान 100 रु॰ मूल्य का गेहूँ उपजाता है, जिसके लिए उसे किसी भी प्रकार के आगत की आवश्यकता नहीं होती है। अतः किसान 100 रु॰ मूल्य के उपज में पूर्ण योगदान का अधिकारी है। लेकिन यह बात बेकर के संबंध में सत्य नही है। बेकरों को अपने ब्रेड का उत्पादन करने के लिए 50 रु॰ का गेहूँ खरीदना पड़ता है। वे 200 रु॰ मूल्य के ब्रेड का जो उत्पादन उसमें करते हैं, उनका पूर्णतया योगदान नहीं है। बेकरों के निवल योगदान की गणना के लिए हमें गेहूँ का मूल्य घटाना होगा, जो कि वे किसान से क्रय करते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो 'दुहरी गणना' की त्रुटि होगी। क्योंकि गेहूँ के 50 रु॰ मूल्य की गणना दो बार हो जाएगी। पहली बार तो यह किसानों द्वारा उत्पादित निर्गत का हिस्सा है और दूसरी बार बेकरों के द्वारा उत्पादित ब्रेड में गेहूँ के आरोपित मूल्य के रूप में इसकी गणना होगी।

अतः बेकरों का निवल योगदान 200 – 50 = 150 रु॰ है। अतः इस सरल अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का समस्त उत्पादन 100 रु॰ (किसानों का निवल योगदान) + 150 रु॰ (बेकरों का निवल योगदान) = 250 रु॰ है।

फर्म के निवल योगदान को जिस शब्द से सूचित किया जाता है, उसे **मूल्यवर्धित** कहते हैं। हमने देखा कि कोई फर्म दूसरे फर्म से जो कच्चा माल खरीदती हैं, उसको उत्पादन प्रक्रम में पूर्ण रूप से उपयोग कर लिया जाता है और इसे 'मध्यवर्ती वस्तुएँ' कहते हैं। अतः किसी फर्म का मूल्यवर्धित *फर्म के उत्पादन का मूल्य–फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य* है। फर्म के मूल्यवर्धित का वितरण उत्पादन के चारों कारकों में किया जाता है, जिनके नाम–श्रम, पूँजी, उद्यमिता और भूमि हैं। इसलिए एक फर्म द्वारा अदा की गयी मज़दूरी, ब्याज, लाभ और लगान फर्म की मूल्यवर्धित में जुड़ना चाहिए। मूल्यवर्धित एक प्रवाह परिवर्त है।

उपर्युक्त उदाहरण को तालिका 2.1 के रूप में दर्शाया जा सकता है। यहाँ सभी परिवर्तों को मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ सूचीबद्ध विभिन्न परिवर्तों का मूल्यांकन करने के लिए हम वस्तुओं की बाज़ार कीमत पर विचार कर सकते हैं। उदाहरण में, हम उत्पादन श्रृंखला में और अधिक कारकों को समाविष्ट कर सकते हैं और इसे अधिक यथार्थवादी बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, किसान गेहूँ के उत्पादन के लिए उर्वरक अथवा कीटनाशकों का प्रयोग कर सकते हैं। इन आगतों का मूल्य गेहूँ के निर्गत के मूल्य से घटाना होगा अथवा बेकर अपना ब्रेड जलपानगृह को बेच सकते हैं, जिसके मूल्यवर्धित की गणना मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को घटाकर (ब्रेड के मामले में) करनी होगी। मूल्यह्रास की संकल्पना से हम पूर्व परिचित हैं, जिसे स्थिर पूँजी का उपभोग भी कहते हैं। चूँकि उत्पादन के संचालन में प्रयुक्त पूँजी में टूट-फूट होती है। पूँजी के मूल्य को स्थिर रखने के लिए उत्पादक को प्रतिस्थापन निवेश करना पड़ता है। प्रतिस्थापन निवेश पूँजी का मूल्यह्रास ही है। यदि हम मूल्यवर्धित में मूल्यह्रास को शामिल करें तो हमें मूल्यवर्धित का जो मूल्य प्राप्त होगा, उसे हम **सकल मूल्यवर्धित** कहते हैं। यदि सकल मूल्यवर्धित से मूल्यह्रास को घटाया जाये तो **निवल मूल्यवर्धित** प्राप्त होता है। सकल मूल्यवर्धित के विपरीत निवल मूल्यवर्धित में पूँजी की टूट-फूट शामिल नहीं है। उदाहरण के लिए, कोई फर्म प्रतिवर्ष 100 रु॰ मूल्य का उत्पादन करती है। उस वर्ष में 20 रुपये का मध्यवर्ती वस्तु का उपयोग किया जाता है और पूँजी उपभोग का मूल्य 10 रुपये है तो फर्म का सकल मूल्यवर्धित 100 रु॰ – 20 रु॰ = 80 रु॰ प्रतिवर्ष होगा। निवल मूल्यवर्धित 100 रु॰ –20रु॰ – 10 रु॰ = 70 रु॰ प्रतिवर्ष।

ध्यातव्य है कि मूल्यवर्धित की गणना करते समय फर्म के **उत्पादन का मूल्य** लिया जाता है।

किंतु फर्म अपने सारे उत्पादन को नहीं बेच पाती है। उस स्थिति में वर्ष के अंत में उसके पास कुछ अबिक्रित स्टॉक होगा। विलोमत: ऐसा भी हो सकता है कि फर्म के पास पहले से ही कुछ अबिक्रित स्टॉक हो। वर्ष के दौरान फर्म द्वारा बहुत कम उत्पादन किया जाता है किंतु उस वर्ष के आरंभ में जो स्टॉक उसके पास रहता है, उसे बेचकर बाज़ार में माँग की पूर्ति करती है। हम इन स्टॉकों के साथ कैसे व्यवहार करेंगे जो कोई फर्म अपनी इच्छा से अथवा नहीं चाहते हुए अपने पास रखती है। स्मरणीय है कि कोई फर्म दूसरी फर्म से कच्चा माल खरीदती है। कच्चे माल का वह अंश जिसका पूर्ण उपयोग हो जाता है, उसे मध्यवर्ती वस्तु के रूप में कोटिबद्ध किया जाता है। उस अंश का क्या होता है जिसका पूर्ण उपयोग नहीं होता है?

अर्थशास्त्र में, अबिक्रित निर्मित वस्तुओं अथवा अर्धनिर्मित वस्तुओं अथवा कच्चे मालों का स्टॉक जो कोई फर्म एक वर्ष से अगले वर्ष तक रखता है, उसे **माल-सूची** कहते हैं। माल-सूची एक स्टॉक परिवर्त है। वर्ष के आरंभ में इसका मूल्य हो सकता है और वर्ष के अंत में इसका उच्च मूल्य भी हो सकता है। इस स्थिति में, माल-सूची में वृद्धि (अथवा संचय) होती है यदि माल-सूची का मूल्य वर्ष के आरंभ की तुलना में वर्ष के अंत में कम हो तो माल-सूची में ह्रास (अपसंचय) होता है। अत: हम अनुमान लगा सकते हैं कि **एक वर्ष के दौरान किसी फर्म की माल-सूची में परिवर्तन $\equiv$ वर्ष के दौरान फर्म का उत्पादन–वर्ष के दौरान फर्म की बिक्री।**

चिह्न '$\equiv$' **तादात्म्य** को बताता है। समानता ('=') चिन्ह के समान तादात्म्य चिन्ह में दायीं ओर की वस्तुओं और बायीं ओर की वस्तुओं के बीच समानता नहीं देखी जाती बल्कि तादात्म्य सदैव इनसे निरपेक्ष होता है। उदाहरण के लिए, हम $2 + 2 \equiv 4$ लिख सकते हैं, क्योंकि यह हमेशा सत्य है। किंतु $2 \times x = 4$ हमें अवश्य लिखना चाहिए। क्योंकि दो बार x, x के विशेष मूल्य के लिए 4 के बराबर होता है (नामत: जब $x = 2$) हमेशा नहीं। $2 \times x \equiv 4$ हम नहीं लिख सकते हैं।

अवलोकन कीजिए कि फर्म का उत्पादन $\equiv$ मूल्यवर्धित + फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुएँ, एक वर्ष के दौरान फर्म की माल-सूची में परिवर्तन $\equiv$ मूल्यवर्धित + फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुएँ – वर्ष के दौरान फर्म की बिक्री।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि फर्म के पास वर्ष के आरंभ में 100 रुपये मूल्य का अबिक्रित स्टॉक था। वर्ष के दौरान इसने 1000 रुपये मूल्य की वस्तु का उत्पादन किया, जिसमें से 800 रुपये मूल्य की वस्तुओं की बिक्री हुई। अत: उत्पादन और बिक्री के बीच अंतर 200 रुपये है। यह 200 रुपये माल-सूची में परिवर्तन है। यह 100 रुपये मूल्य की माल-सूची में जुड़ जाएगी जिससे कि फर्म ने उत्पादन प्रारंभ किया था। अत: वर्ष के अंत में माल-सूची 100 रुपये + 200 रुपये = 300 रुपये है। याद रखें कि माल-सूची में परिवर्तन एक समयावधि के बाद ही होता है इसीलिए, इसे **प्रवाह परिवर्त** कहते हैं।

माल-सूची पूँजी के रूप में समझी जाती है। फर्म की पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त योग को निवेश कहते हैं। अत: माल-सूची में परिवर्तन को **निवेश** के रूप में समझा जाता है। निवेश की तीन प्रमुख कोटियाँ हैं। प्रथम, एक फर्म के एक वर्ष में माल-सूची के मूल्य में वृद्धि है, जिसे कि फर्म का निवेश व्यय कहा जाता है। निवेश की दूसरी कोटि स्थिर व्यवसाय निवेश है, जिसे मशीनरी में वृद्धि, फैक्ट्री, भवन, फर्म द्वारा लगाए गए उपकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है। निवेश की अंतिम कोटि आवासीय निवेश है, जो आवास सुविधाओं के योग को बताता है।

माल-सूची में परिवर्तन नियोजित अथवा अनियोजित हो सकता है। बिक्री में अप्रत्याशित गिरावट की स्थिति में फर्म के पास वस्तुओं का अबिक्रित स्टॉक होगा। जिसके बारे में वह आशा नहीं कर सकता था। अत: **माल-सूची का अनियोजित संचय** होगा। इसके विपरीत जहाँ बिक्री में अप्रत्याशित वृद्धि होगी, वहाँ **माल-सूची में अनियोजित अपसंचय** होगा।

इसका उल्लेख निम्नलिखित उदाहरण की सहायता से किया जा सकता है। मान लीजिए कोई फर्म कमीज़ बनाती है। उसके पास वर्ष के आरंभ में 100 कमीज़ की माल-सूची है। अगले वर्ष वह 1000 कमीज़ बेचने की आशा करती है। अत: वह 1000 कमीज़ का उत्पादन करती है और वर्ष के अंत में 100 कमीज़ की माल-सूची रखना चाहती है। किंतु वर्ष के दौरान अप्रत्याशित रूप से कमीज़ की बिक्री कम होती है। फर्म केवल 600 कमीज़ ही बेच पाती है। इसका अर्थ है कि 400 कमीज़ अबिक्रित रह जाती हैं। वर्ष के अंत में फर्म के पास 400 + 100 = 500 कमीज़ें हैं। माल-सूची में 400 की अप्रत्याशित वृद्धि अनियोजित माल-सूची संचय का उदाहरण है। इसके विपरीत यदि बिक्री 1000 से अधिक होती, तो वह भी माल-सूची में अनियोजित अपसंचय होता। उदाहरणार्थ–यदि बिक्री 1050 होती तो न केवल 1000 कमीज़ों के उत्पादन की बिक्री होती, बल्कि फर्म को माल-सूची से भी 50 कमीज़ की बिक्री करना पड़ती। माल-सूची में यह 50 की अप्रत्याशित कटौती माल-सूची में अप्रत्याशित अपसंचय का उदाहरण है।

माल-सूची में नियोजित संचय अथवा **अपसंचय** के उदाहरण क्या हो सकते हैं? मान लीजिए कि किसी वर्ष के दौरान फर्म माल-सूची में 100 कमीज़ से 200 कमीज़ की वृद्धि करना चाहती है। वर्ष के दौरान 1000 कमीज़ की आशा करते हुए (पहले की तरह), फर्म 1000 + 100 = 1100 कमीज़ों का उत्पादन करती है। यदि बिक्री वास्तव में 1000 कमीज़ है, तो फर्म की माल-सूची में सचमुच वृद्धि होती है। माल-सूची का नया स्टॉक 200 कमीज़ है जो वास्तव में फर्म के द्वारा नियोजित थी। यह वृद्धि माल-सूची में नियोजित संचय का उदाहरण है। इसके विपरीत यदि फर्म माल-सूची में 100 से 25 की कटौती करना चाहती है, तो वह 1000 – 75 = 925 कमीज़ का उत्पादन करती है। क्योंकि 100 कमीज़ की माल-सूची में से 75 (ताकि वर्ष के अंत में माल-सूची 100 – 75 = 25 कमीज़ हो, जो कि फर्म की इच्छा है) बेचने की योजना बनाती है। यदि फर्म द्वारा प्रत्याशित बिक्री वास्तव में 1000 होगी, तो फर्म की योजना के अनुसार माल-सूची में 25 कमीज़ की कटौती होगी।

माल-सूची में अनियोजित और नियोजित परिवर्तन के बीच भेद के संबंध के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

माल-सूची में परिवर्तन के प्रति ध्यान आकृष्ट करने के लिए हम इसे इस प्रकार लिख सकते हैं:

फर्म i का सकल मूल्यवर्धित $(GVA_i) \equiv$ फर्म i के द्वारा उत्पादित निर्गत का सकल मूल्य Q_i –फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य (Z_i)।

$GVA_i \equiv$ फर्म की बिक्री का मूल्य (V_i) + माल-सूची में परिवर्तन का मूल्य (A_i)–फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य (Z_i) (2.1)

समीकरण (2.1) की व्युत्पत्ति के लिए: वर्ष में फर्म की माल-सूची में परिवर्तन $\equiv$ वर्ष के दौरान फर्म का उत्पादन – वर्ष के दौरान फर्म की बिक्री।

यह ध्यातव्य है कि फर्म की बिक्री में घरेलू क्रेताओं को की गई बिक्री ही नहीं बल्कि विदेशी क्रेताओं को की गई बिक्री भी शामिल होती है (बाद वाले को निर्यात कहते हैं)। यह भी उल्लेखनीय है कि ऊपर वर्णित सारे परिवर्त प्रवाह परिवर्त हैं। साधारणत: इनका मापन वार्षिक आधार पर होता है। अत: ये प्रति वर्ष प्रवाह के मूल्य का मापन करते हैं।

फर्म i का निवल मूल्यवर्धित $\equiv GVA_i$ – फर्म i का मूल्यह्रास (D_i)

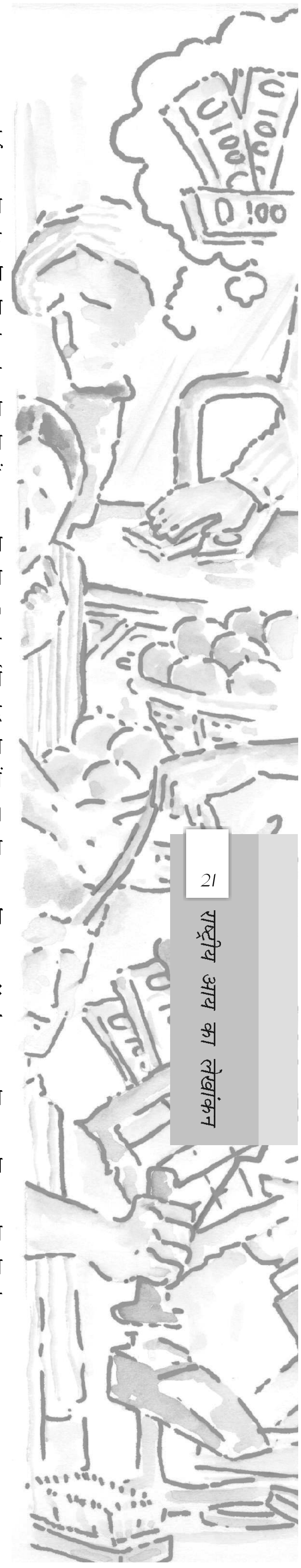

यदि हम एक वर्ष में अर्थव्यवस्था की सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित का योग निकालें, तो हमें वर्ष में अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के समस्त परिमाण का मूल्य प्राप्त होगा (जैसे पहले हमने गेहूँ-ब्रेड वाले उदाहरण से किया है)। इस प्रकार का आकलन **सकल घरेलू उत्पाद (*GDP*)** कहलाता है। अतः $GDP \equiv$ अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित का कुल योग।

यदि अर्थव्यवस्था में N फर्म हों और प्रत्येक को 1 से N क्रम संख्या में लिखा जाये, तो

$GDP \equiv$ अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित का कुल योग

$$\equiv GVA_1 + GVA_2 + \cdots + GVA_N$$

अतः
$$\text{GDP} \equiv \sum_{i=1}^{N} GVA_i \qquad (2.2)$$

संकेत Σ संक्षेप है; इसका प्रयोग कुल योग को निरूपित करने के लिए होता है। उदाहरणार्थ, $\sum_{i=1}^{N} X_i$, $X_1 + X_2 + \ldots + X_N$ के बराबर होगा। इस स्थिति में $\sum_{i=1}^{N} GVA_i A$ से N तक के सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित के कुल योग को बतलाता है। हम जानते हैं कि फर्म$_i$ (NVA_i) का निवल मूल्यवर्धित, सकल मूल्यवर्धित फर्म द्वारा प्रयुक्त पूँजी की टूट-फूट को घटाने पर प्राप्त होता है।

इस प्रकार, $NVA_i \equiv GVA_i - D_i$ अतः, $GVA_i \equiv NVA_i + D_i$

यह i फर्म के लिए है। फर्म की संख्या N तक है, अतः, संपूर्ण अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद, जो सभी N फर्मों के मूल्यवर्धित का कुल योग है, N फर्मों के निवल मूल्यवर्धित और मूल्यह्रास का कुल योग होगा (समीकरण 2.2 से)।

दूसरे शब्दों में, $GDP \equiv \sum_{i=1}^{N} NVA_i + \sum_{i=1}^{N} D_i$

इससे यह सूचित होता है कि अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों के निवल मूल्यवर्धित और मूल्यह्रास का कुल योग होता है। सभी फर्मों के निवल मूल्यवर्धित के योग को निवल घरेलू उत्पाद **(NDP)** कहते हैं।

सांकेतिक रूप में, $NDP \equiv \sum_{i=1}^{N} NVA_i$

2.2.2 व्यय विधि

सकल घरेलू उत्पाद की गणना की एक वैकल्पिक विधि उत्पाद के माँग पक्ष को दृष्टि में रखकर करती है। इस विधि को व्यय विधि कहते हैं। उपर्युक्त किसान-बेकर वाले उदाहरण में जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, अर्थव्यवस्था में व्यय विधि से निर्गत के समस्त मूल्य की गणना निम्नलिखित विधि से होगी। इस विधि में प्रत्येक फर्म द्वारा प्राप्त अंतिम व्ययों का योग प्राप्त करते हैं। अंतिम व्यय, व्यय का वह अंश है जिसे मध्यवर्ती उद्देश्यों से ग्रहण नहीं किया जाता है। बेकर किसान से 50 रु० मूल्य का गेहूँ खरीदता है। यहाँ गेहूँ मध्यवर्ती वस्तु है। अतः यह अंतिम व्यय के श्रेणी में नहीं आता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था के निर्गत का समस्त मूल्य 200 रु० (बेकर द्वारा प्राप्त अंतिम व्यय) + 50 रु० (किसान द्वारा प्राप्त अंतिम व्यय) = 250 रु० प्रतिवर्ष।

फर्म i निम्नलिखित खातों में अंतिम व्यय प्राप्त कर सकती है। (i) फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर अंतिम उपभोग व्यय। इसे हम C_i से सूचित करते हैं। ध्यातव्य है कि प्रायः परिवार ही उपभोग पर व्यय करते हैं। इसका अपवाद भी हो सकता है, जैसे- फर्म अपने अतिथियों अथवा

कर्मचारियों को खिलाने के लिए उपभोग्य पदार्थों का क्रय करती है। (ii) फर्म i द्वारा उत्पादित पूँजीगत वस्तुओं पर दूसरे फर्मों द्वारा उपगत अंतिम निवेश व्यय I_i हैं। अवलोकन कीजिए कि मध्यवर्ती वस्तुएँ, जो सकल घरेलू उत्पाद की गणना में शामिल नहीं है, पर व्यय के विपरीत निवेश व्यय को सम्मिलित किया जाता है। इसका कारण यह है कि निवेश वस्तुएँ फर्म के पास होती है जबकि उत्पादन प्रक्रम मध्यवर्ती वस्तुओं का उपभोग होता है। (iii) वह व्यय जो सरकार फर्म i के द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं पर करती है। हम इसे G_i द्वारा व्यक्त करते हैं हम यह दर्शा सकते हैं कि सरकार द्वारा उपगत अंतिम व्यय में उपभोग और निवेश व्यय दोनों शामिल है। (iv) निर्यात संप्राप्ति जो फर्म i, विदेशों में अपनी वस्तुओं और सेवाओं को बेचकर अर्जित करती है, इसे X_i के द्वारा सूचित किया जाएगा।

अत:, फर्म, के द्वारा प्राप्त संप्राप्ति के कुल योग को निम्न प्रकार दर्शाया जाता है:

$RV_i \equiv$ फर्म i द्वारा प्राप्त अंतिम उपभोग, निवेश, सरकारी और निर्यात संबंधी व्ययों का कुल योग।

$$\equiv C_i + I_i + G_i + X_i$$

यदि फर्मों की संख्या N हो तो N तक फर्मों का कुल योग हमें प्राप्त होगा,

$\sum_{i=1}^{N} RV_i \equiv$ अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों द्वारा प्राप्त अंतिम उपभोग, निवेश, सरकारी और निर्यात संबंधी व्यय

$$\equiv \sum_{i=1}^{N} C_i + \sum_{i=1}^{N} I_i + \sum_{i=1}^{N} G_i + \sum_{i=1}^{N} X_i \qquad (2.3)$$

संपूर्ण अर्थव्यवस्था का समस्त अंतिम उपभोग व्यय को C मान लीजिए। ध्यान दीजिए कि C का एक अंश उपभोग वस्तुओं के आयात पर व्यय किया जाता है। मान लीजिए कि उपभोग वस्तुओं के आयात पर व्यय को C_m द्वारा सूचित किया जाता है। अत: $C - C_m$ से घरेलू फर्मों के ऊपर समस्त अंतिम उपभोग व्यय सूचित होता है। इसी प्रकार, $I - I_m$ से घरेलू फर्मों के ऊपर समस्त अंतिम निवेश व्यय सूचित होता है, जहाँ I अर्थव्यवस्था का समस्त अंतिम निवेश व्यय है और इससे I_m विदेशी निवेश वस्तुओं पर व्यय किया जाता है। इसी प्रकार $G - G_m$ समस्त अंतिम सरकारी व्यय का अंश है जिसका व्यय घरेलू फर्मों पर होता है जहाँ G अर्थव्यवस्था में सरकार का समस्त व्यय है और G_m, G का वह अंश है, जिसका व्यय आयात पर होता है।

अत: $\sum_{i=1}^{N} C_i \equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों द्वारा प्राप्त अंतिम उपभोग व्यय का कुल योग $\equiv C - C_m$; $\sum_{i=1}^{N} I_i \equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों द्वारा अंतिम निवेश व्यय का कुल योग $\equiv I - I_m$; $\sum_{i=1}^{N} G_i \equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों के द्वारा प्राप्त अंतिम सरकारी व्यय का कुल योग $\equiv G - G_m$। समीकरण (2.3) में इन्हें प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होगा,

$$\sum_{i=1}^{N} RV_i \equiv C - C_m + I - I_m + G - G_m + \sum_{i=1}^{N} X_i$$

$$\equiv C + I + G + \sum_{i=1}^{N} X_i - (C_m + I_m + G_m)$$

$$\equiv C + I + G + X - M$$

यहाँ $X \equiv \sum_{i=1}^{N} X_i$ अर्थव्यवस्था के निर्यात पर विदेशियों द्वारा किये गए समस्त व्यय को

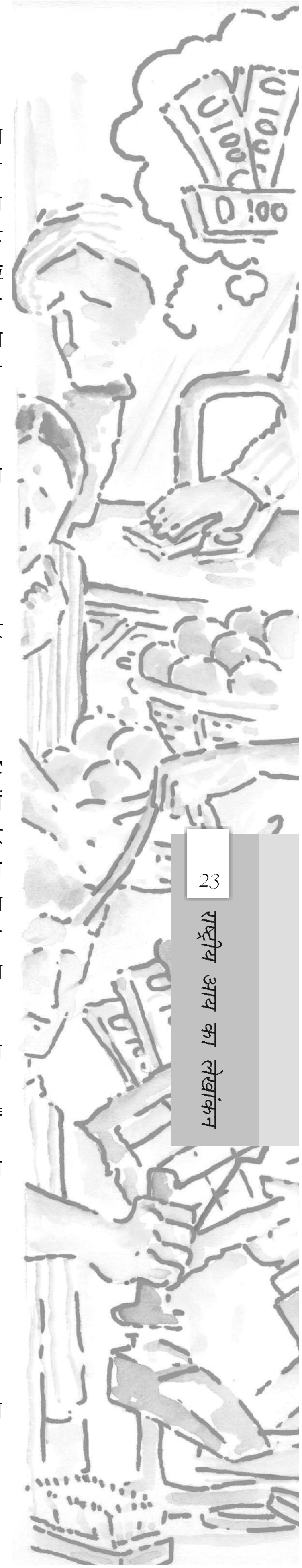

सूचित करता है। $M \equiv C_m + I_m + G_m$ अर्थव्यवस्था के द्वारा उपगत समस्त आयात व्यय है।

हम जानते हैं कि GDP ≡ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों द्वारा प्राप्त अंतिम व्यय का कुल योग। दूसरे शब्दों में,

$$GDP \equiv \sum_{i=1}^{N} RV_i \equiv C + I + G + X - M \qquad (2.4)$$

व्यय विधि के अनुसार समीकरण (2.4) सकल घरेलू उत्पाद को व्यक्त करता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि दांयी ओर दिए गए पाँच चरों में से, निवेश व्यय, I, सबसे अधिक परिवर्तनशील है।

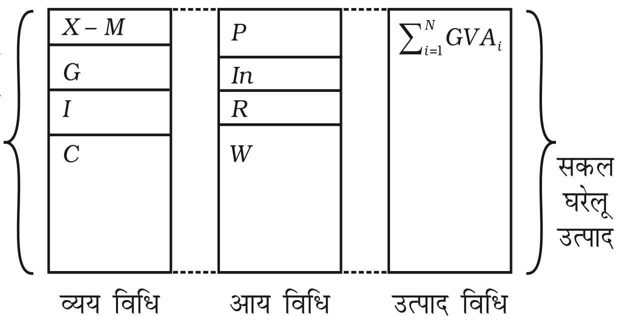

रेखाचित्र 2.2: सकल घरेलू उत्पाद का तीन विधियों द्वारा आरेखीय चित्रण

2.2.3 आय विधि

आरंभ में जैसा कि हमने उल्लेख किया है कि अर्थव्यवस्था में अंतिम व्यय का योग उत्पादन के सभी कारकों की सम्मिलित आय (अंतिम वस्तु पर किया गया व्यय है, इसमें मध्यवर्ती वस्तु पर किया गया व्यय सम्मिलित नहीं है) के बराबर होता है। यहाँ इस सरल विचार का अनुपालन होता है कि सभी फर्मों के द्वारा सम्मिलित रूप से अर्जित *राजस्व* का वितरण उत्पादन के कारकों के बीच वेतन, मज़दूरी, लाभ, ब्याज अर्जन और लगान के रूप में होना चाहिए। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में परिवारों की संख्या M है। i वें परिवार के द्वारा किसी वर्ष विशेष में प्राप्त मज़दूरी और वेतन को W_i मान लें। इसी प्रकार, P_i, In_i, R_i क्रमशः सकल लाभ, ब्याज अदायगी और लगान जो कि i वें परिवार के द्वारा किसी वर्ष विशेष में प्राप्त होता है। अतः सकल घरेलू उत्पाद निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा–

$$\text{सकल घरेलू उत्पाद} \equiv \sum_{i=1}^{M} W_i + \sum_{i=1}^{M} P_i + \sum_{i=1}^{M} In_i + \sum_{i=1}^{M} R_i \equiv W + P + In + R \quad (2.5)$$

यहाँ, $\sum_{i=1}^{M} W_i \equiv W$, $\sum_{i=1}^{M} P_i \equiv P$, $\sum_{i=1}^{M} In_i \equiv In$, $\sum_{i=1}^{M} R_i \equiv R$. समीकरण (2.2), (2.4) और (2.5) को एक साथ लेने पर हमें प्राप्त होगा–

$$\text{सकल घरेलू उत्पाद} \equiv \sum_{i=1}^{N} GV\,A_i \equiv C + I + G + X - M \equiv W + P + In + R \qquad (2.6)$$

यह दृष्टिगत है कि तादात्म्य (2.6) में I फर्म द्वारा ग्रहण किए गए नियोजित और अनियोजित दोनों प्रकार के निवेशों का बोध होता है।

चूँकि तादात्म्य (2.2), (2.4) और (2.6) एक ही प्रकार के परिवर्त, सकल घरेलू उत्पाद की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं, इसीलिए हम रेखाचित्र 2.2 के द्वारा समतुल्यता को प्रदर्शित कर सकते हैं।

यह जाँच करने योग्य है कि परिवार अपनी आय का व्यय किस प्रकार करते हैं। वे अपनी आय को तीन विधियों से व्यय कर सकते हैं। वे या तो उसका उपभोग करते हैं या बचत अथवा इस आय से वे कर अदा करते हैं (मान लीजिए कि कोई सहायता, दान, अंतरण अदायगी जो आमतौर पर विदेशों को भेजा जाता है: यह आय को व्यय करने का दूसरा तरीका है)। मान लीजिए कि S उनके द्वारा की गई समस्त बचत और T अदा किए गए करों के कुल योग को, बताता है, इस प्रकार,

$$\text{सकल घरेलू उत्पाद} \equiv C + S + T \qquad (2.7)$$

समीकरण (2.4) का (2.7) से तुलना करने पर हम पाते हैं कि

$$C + I + G + X - M \equiv C + S + T$$

दोनों ओर से उपभोग व्यय C को रद्द करने पर हमें प्राप्त होता है–

$$I + G + X - M \equiv S + T$$

दूसरे शब्दों में,

$$(I - S) + (G - T) \equiv M - X \qquad (2.8)$$

(2.8) में $G - T$ से उस मात्रा की माप होती है, जिस मात्रा में सरकारी व्यय में सरकार द्वारा अर्जित कर राजस्व से अधिक वृद्धि होती है। इसे 'बजटीय घाटा' के रूप में सूचित किया जाता है। $M - X$ को 'व्यापार घाटा' के रूप में जाना जाता है। इससे अर्थव्यवस्था के द्वारा अर्जित निर्यात राजस्व के ऊपर आयात व्यय के आधिक्य की माप होती है (M देश से बाह्य प्रवाह है, X देश में अंतर्प्रवाह है)।

यदि सरकार नहीं हो, विदेशी व्यापार नहीं हो तो $G = T = M = X = 0$ इस प्रकार (2.8) से प्राप्त होता है–

$$I \equiv S \qquad (2.9)$$

(2.9) मात्र लेखा तादात्म्य है। सकल घरेलू उत्पाद में से, एक अंश का उपभोग किया जाता है और एक अंश की बचत की जाती है (आय का प्रापक पक्ष है)। दूसरी ओर, फर्म की ओर से उनके द्वारा प्राप्त समस्त अंतिम व्यय (≡सकल घरेलू उत्पाद) अवश्य ही उपभोग व्यय और निवेश व्यय के बराबर होंगे। परिवार द्वारा प्राप्त समस्त आय फर्मों द्वारा प्राप्त व्यय के बराबर होगा क्योंकि आय विधि और व्यय विधि से हमें सकल घरेलू उत्पाद की एक समान राशि प्राप्त होगी। चूँकि उपभोग व्यय को दोनों ओर से निरस्त कर दिया जाता है, इसीलिए हमारे पास समस्त बचत समस्त सकल निवेश व्यय के बराबर बच जाता है।

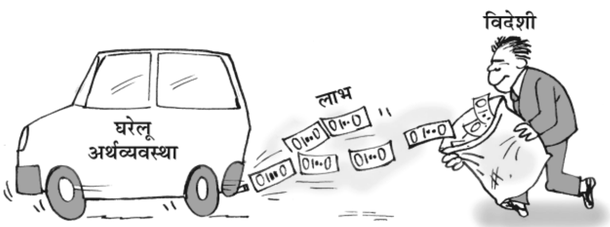

हमारे घरेलू अर्थव्यवस्था में विदेशियों का अंश है। अपनी कक्षा में इस पर परिचर्चा करें।

2.3 कुछ समष्टि अर्थशास्त्रीय तादात्म्य

सकल घरेलू उत्पाद में किसी घरेलू अर्थव्यवस्था के अंतर्गत एक वर्ष के दौरान अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समस्त उत्पादन की माप की जाती है। किंतु इसका संपूर्ण उत्पादन देश की जनता को प्राप्त नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, भारत के नागरिक सऊदी अरब में मज़दूरी अर्जित करते हैं, जो सऊदी अरब के सकल घरेलू उत्पाद में शामिल होगा। विधिक रूप से वह एक भारतीय है। भारतीयों के द्वारा अर्जित आय अथवा भारतीय के स्वामित्व के उत्पादन के कारकों के अर्जित आय की माप करने की क्या कोई विधि है? जब हम ऐसा करते हैं, तो समता बनाये रखने के लिए हमें विदेशियों द्वारा अर्जित आय, जो हमारी घरेलू अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कार्यरत है अथवा विदेशियों के स्वामित्व वाले उत्पादन के कारकों को की गयी अदायगी को अवश्य घटा देना चाहिए। उदाहरणार्थ, कोरियाई

स्वामित्व की हुंडई कार फैक्ट्री के द्वारा अर्जित लाभ को भारत के सकल घरेलू उत्पाद से घटाना होगा। समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्त में इस प्रकार के जोड़ और घटाव को **सकल राष्ट्रीय उत्पाद** के रूप में जाना जाता है। अतः इसकी परिभाषा निम्नलिखित रूप में की जाती है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ सकल घरेलू उत्पाद + शेष विश्व में नियुक्त उत्पादन के घरेलू कारकों द्वारा अर्जित कारक आय – घरेलू अर्थव्यवस्था में नियोजित शेष विश्व के उत्पादन के कारकों द्वारा अर्जित कारक आय।

इस प्रकार, सकल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय (विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय = शेष विश्व में नियोजित उत्पादन के घरेलू कारकों के द्वारा अर्जित कारक आय – घरेलू अर्थव्यवस्था में नियोजित शेष विश्व के उत्पादन के कारकों द्वारा अर्जित कारक आय)।

पूर्व में हम देख चुके हैं कि टूट-फूट के कारण वर्ष के दौरान पूँजी के एक अंश का उपभोग कर लिया जाता है। इस टूट-फूट को मूल्यह्रास कहते हैं। स्वाभाविक है कि मूल्यह्रास किसी व्यक्ति की आय का अंश नहीं होता। यदि हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद से मूल्यह्रास को घटाते हैं, तो हमें समस्त आय की जो माप प्राप्त होती है, उसे **निवल राष्ट्रीय उत्पाद** कहते हैं। इस प्रकार–

निवल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ सकल राष्ट्रीय उत्पाद – मूल्यह्रास।

उल्लेखनीय है कि इन परिवर्तों का मूल्यांकन बाज़ार कीमत पर किया जाता है। उपर्युक्त व्यंजक के माध्यम से हमें बाज़ार कीमत पर मूल्यांकित निवल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य प्राप्त होता है, किंतु बाज़ार कीमत में **अप्रत्यक्ष कर** शामिल रहते हैं। अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं और सेवाओं पर आरोपित किये जाते हैं। फलतः कीमत बढ़ जाती है। अप्रत्यक्ष कर सरकार को उपार्जित होता है। निवल राष्ट्रीय उत्पाद का वह अंश जो वास्तव में उत्पादन के कारकों को उपार्जित होता है, उसी गणना करने के क्रम में बाज़ार कीमत पर मूल्यांकित राष्ट्रीय निवल उत्पाद से अप्रत्यक्ष करों को घटाया जाता है। इसी प्रकार, कुछ वस्तुओं की कीमतों पर सरकार द्वारा **उपदान** प्रदान किया जा सकता

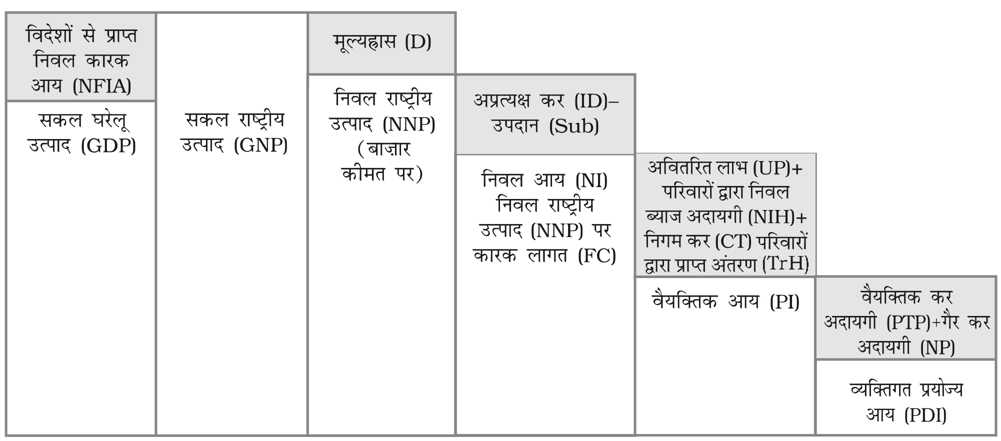

रेखाचित्र 2.3: समस्त आय की उपकोटियों का आरेखीय चित्रण। NFIA: विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय, D: मूल्यह्रास, ID: अप्रत्यक्ष कर, Sub: उपदान, UP: अवितरित लाभ, NIH: परिवारों द्वारा निवल ब्याज अदायगी, CT: निगम कर, TrH: परिवारों द्वारा प्राप्त अंतरण, PTP: वैयक्तिक कर अदायगी, NP: गैर-कर अदायगी।

है (भारत में पेट्रोल पर सरकार अत्यधिक कर लगाती है जबकि रसोई गैस पर उपदान प्रदान किया जाता है)। अतः हमें बाज़ार कीमतों पर मूल्यांकित निवल राष्ट्रीय उत्पाद में उपदान को शामिल

करने की आवश्यकता होती है। ऐसा करने पर हमें जो माप प्राप्त होता है, उसे कारक लागत पर **निवल राष्ट्रीय उत्पाद** अथवा **राष्ट्रीय आय** कहते हैं। अत:, कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद≡ राष्ट्रीय आय (NI) = बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद – (अप्रत्यक्ष कर – उपदान) ≡ बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद – निवल अप्रत्यक्ष कर।

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय और निजी आय

भारत में समस्त समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तों की इन कोटियों के अलावे कुछ अन्य समस्त आय कोटियाँ भी हैं, जिनका प्रयोग राष्ट्रीय आय लेखांकन में होता है।

- **राष्ट्रीय प्रयोज्य आय** = बाज़ार कीमतों पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद + शेष विश्व के दूसरे देशों से प्राप्त अन्य चालू अंतरण।

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय के परिप्रेक्ष्य का विचार यह है कि इससे जानकारी मिलती है कि घरेलू अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की अधिकतम मात्रा कितनी है। शेष विश्व में चालू अंतरण में उपहार, सहायता राशि इत्यादि आते हैं।

- **निजी आय** = निजी क्षेत्र को उपगत होने वाले घरेलू उत्पाद से प्राप्त कारक आय + राष्ट्रीय ऋण ब्याज + विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय + सरकार से चालू अंतरण + शेष विश्व से अन्य निवल अंतरण।

(निवल अप्रत्यक्ष कर ≡ अप्रत्यक्ष कर – उपदान)

राष्ट्रीय आय को हम पुन: छोटी-छोटी कोटियों में उपविभाजित कर सकते हैं। अब हम परिवारों के द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय आय के अंश के लिए अभिव्यक्ति प्राप्त करें। इसे हम **वैयक्तिक आय** कहेंगे। प्रथम, मान लीजिए कि राष्ट्रीय आय जो फर्मों और सरकारी उद्यमों के द्वारा अर्जित की जाती है; में से लाभ का एक अंश उत्पादन के कारकों के बीच वितरित नहीं होता है, इसे **अवितरित लाभ** कहते हैं। चूँकि अवितरित लाभ परिवारों को उपार्जित नहीं होता है, इसलिए वैयक्तिक आय की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय आय से अवितरित लाभ को घटा दिया जाता है। इसी प्रकार, निगम कर जो फर्मों की आय पर आरोपित होता है, को भी राष्ट्रीय आय से घटाना होगा क्योंकि यह परिवारों को उपार्जित नहीं होता है। दूसरी ओर, परिवार निजी फर्मों से अथवा सरकार से अपने अग्रिम पूर्व ऋण पर ब्याज अदायगी प्राप्त करता है। परिवार को फर्मों और सरकारों को भी ब्याज अदा करना पड़ता है, यदि फर्म और सरकार से मुद्रा ऋण के रूप में ग्रहण करते हैं। अत: हमें परिवारों द्वारा फर्मों और सरकार को अदा किये गये निवल ब्याज को घटाना होगा। परिवार सरकार और फर्मों (उदाहरण के लिए पेंशन, छात्रवृत्ति, पुरस्कार) से अंतरण अदायगी प्राप्त करते हैं, परिवारों की वैयक्तिक आय की गणना करने के लिए हमें अंतरण अदायगी को जोड़ना होगा।

अत: वैयक्तिक आय ≡ राष्ट्रीय आय – अवितरित लाभ – **परिवारों द्वारा की गयी निवल ब्याज अदायगी-निगम कर + सरकार और फर्मों से परिवारों को की गयी अंतरण अदायगी।**

यद्यपि वैयक्तिक आय पूर्णरूपेण परिवारों की आय नहीं है, उन्हें वैयक्तिक आय से कर अदायगी करनी पड़ती है। **यदि वैयक्तिक आय से वैयक्तिक कर अदायगी** (उदाहरण के लिए आयकर) और **गैरकर अदायगी** (जैसे, शुल्क) को घटा दें तो हमें जो प्राप्त होगा, उसे **वैयक्तिक प्रयोज्य आय** कहते हैं। इस प्रकार,

वैयक्तिक प्रयोज्य आय ≡ वैयक्तिक आय – वैयक्तिक कर अदायगी – गैरकर अदायगी।

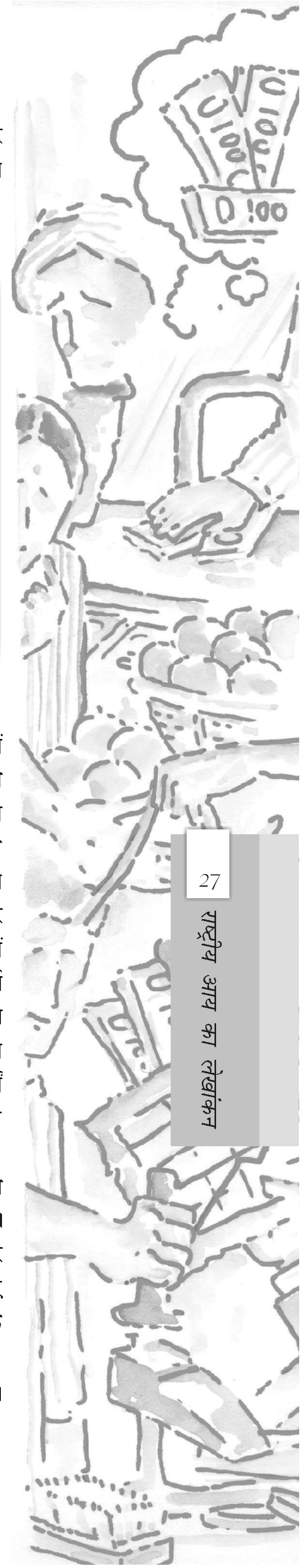

वैयक्तिक प्रयोज्य आय परिवारों की समस्त आय का अंश है। वे इसके एक अंश का उपभोग करने का निर्णय ले सकते हैं और शेष की बचत कर सकते हैं। रेखाचित्र 2.3 में इन प्रमुख समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तों के बीच संबंधों को रेखाचित्रीय प्रतिचित्रण किया गया है। भारत के कुछ प्रधान समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्ती की एक तालिका (वर्ष 1990–91 से 2004–05) अध्याय के अंत में दी गयी है, जिससे पाठकों को उनके वास्तविक मूल्यों का ज्ञान मोटे तौर पर प्राप्त होगा।

2.4 वस्तुएँ और कीमतें

इस पूरी चर्चा कि एक अव्यक्त मान्यता यह है कि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें हमारे अध्ययन की अवधि के दौरान नहीं बदलती हैं। यदि कीमतों में परिवर्तन होता है, तो सकल घरेलू उत्पादों में तुलना करने में कठिनाइयाँ आ सकती है। यदि हम दो लगातार वर्षों में किसी देश के घरेलू उत्पादों की माप करें और देखें कि घरेलू उत्पादों की माप दूसरे वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का आँकड़ा पूर्व वर्ष के आँकड़े का दुगुना है, तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि देश के उत्पादन का परिमाण दुगुना हो जायेगा। किंतु यह संभव है कि दोनों वर्षों में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें ही केवल दुगुनी हुई है, जबकि उत्पादन स्थिर है।

अत: विभिन्न देशों के सकल घरेलू उत्पाद के आँकड़ों (अन्य समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तों) की तुलना अथवा विभिन्न समयों में एक ही देश के सकल घरेलू उत्पाद के आँकड़ों की तुलना करने के क्रम में हम चालू बाज़ार कीमतों पर मूल्यांकित सकल घरेलू उत्पादों पर विश्वास नहीं कर सकते हैं। तुलना के लिए हम **वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद** की सहायता ले सकते हैं। वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना इस प्रकार की जाती है कि वस्तुओं का मूल्यांकन **कीमतों के कुछ स्थिर समुच्चय** या **(स्थिर कीमतों)** पर होता है। चूँकि ये कीमतें स्थिर रहती हैं, इसीलिए यदि वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद में परिवर्तन होता है, तो यह निश्चित है कि उत्पादन के परिमाण में परिवर्तन होगा। इसके विपरीत **मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद** वर्तमान कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद का मूल्य मात्र ही है। उदाहरण के लिए, कोई देश केवल ब्रेड का उत्पादन करता है। वर्ष 2000 में उसने ब्रेड की 100 इकाइयों का उत्पादन किया और प्रति ब्रेड कीमत 10 रु॰ थी। वर्तमान कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद 1000 रु॰ थी। वर्ष 2001 में उसी देश में 15 रु॰ प्रति ब्रेड की कीमत पर ब्रेड की 110 इकाइयों का उत्पादन किया गया। अत: 2001 में मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद 1650 रु॰ (=110 × 15 रु॰) था। 2001 में वर्ष 2000 (वर्ष 2000 को आधार वर्ष कहा जाएगा) की कीमत पर वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना करने पर 110 × 10 रु॰ = 1100 रु॰ होगा।

ध्यान दीजिए कि मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद और वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात से हमें यह ज्ञात होता है कि कीमत में **आधार वर्ष** (जिस वर्ष की कीमतों का प्रयोग वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना में की जाती है) की तुलना में चालू वर्ष में किस प्रकार वृद्धि हुई। चालू वर्ष के वास्तविक और मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद की गणना में उत्पादन का परिमाण स्थिर रहता है। अत: इन मापों में अंतर केवल आधार वर्ष और चालू वर्ष की कीमत में अंतर के कारण ही होता है। मौद्रिक और वास्तविक सकल घरेलू उत्पादों का अनुपात सुपरिचित कीमत सूचकांक होता है। इसे **सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक** कहते हैं। अत: सकल घरेलू उत्पाद से मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद तथा gdp से वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद का बोध होता है। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक $\frac{GDP}{gdp}$।

कभी-कभी अवस्फीतिक को प्रतिशत के पदों में भी प्रदर्शित किया जाता है। इस स्थिति में, अवस्फीतिक = $\frac{GDP}{gdp} \times 100$। यदि पूर्व उदाहरण सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक $\frac{1,650}{1,100} = 1.50$ (प्रतिशत के पदों में 150%) है। इससे सूचित होता है कि 2001 में उत्पादित ब्रेड की कीमत 2000 की कीमत की तुलना में 1.5 गुणी थी। जो सत्य है, क्योंकि ब्रेड की कीमत वास्तव में 10 रु॰ से बढ़कर 15 रु॰ हो गई थी। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक की तरह हमारे पास सकल राष्ट्रीय उत्पाद अवस्फीतिक भी हो सकता है।

अर्थव्यवस्था में कीमतों में परिवर्तन की माप करने की दूसरी विधि भी है जिसे **उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI)** कहते हैं। यह वस्तुओं की दी गई टोकरी, जिनका क्रय प्रतिनिधि उपभोक्ता करते हैं, का कीमत सूचकांक है। उपभोक्ता कीमत सूचकांक को प्राय: प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। हम दो वर्षों पर विचार करते हैं – एक आधार वर्ष होता है तथा दूसरा चालू वर्ष। हम आधार वर्ष में वस्तुओं की दी हुई टोकरी के क्रय की लागत की गणना करते हैं। फिर हम परवर्ती को पूर्ववर्ती के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करते हैं। इससे हमें आधार वर्ष से संबंधित चालू वर्ष का उपभोक्ता कीमत सूचकांक प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, एक अर्थव्यवस्था को लीजिए जिसमें दो वस्तुओं, चावल और वस्त्र का उत्पादन होता है। एक प्रतिनिधि उपभोक्ता एक वर्ष में 90 किलोग्राम चावल और 5 टुकड़े वस्त्र का क्रय करता है। मान लीजिए कि वर्ष 2000 में एक किलोग्राम चावल की कीमत 10 रु॰ थी और वस्त्र के एक टुकड़े की कीमत 100 रु॰ थी। अत: उपभोक्ता को 2000 में चावल पर बहुत अधिक अर्थात 10 × 90 = 900 रु॰ व्यय करना पड़ा। इसी प्रकार उसने 100 रु॰ × 5 = 500 रु॰ वस्त्र पर व्यय किया। दोनों मदों का योग, 900 रु॰ + 500रु॰ = 1400 रु॰

सकल घरेलू उत्पाद का वितरण एक समान है, कैसे? यह अभी तक दिखता है कि अधिकांश लोग गरीब हैं और मात्र कुछ लोग ही इससे लाभान्वित हैं।

अब मान लीजिए कि एक किलोग्राम चावल और एक टुकड़ा वस्त्र की कीमतें वर्ष 2005 में क्रमश: 15 रु॰ और 120 रु॰ हो गई। चावल और वस्त्र की उसी मात्रा को खरीदने के लिए प्रतिनिधि उपभोक्ता को 1350 रु॰ + 600 रु॰ = 1950 रु॰ (जैसे कि पूर्व में गणना की गई थी) व्यय करना पड़ेगा। उनका योग 1350 रु॰ + 600 रु॰ = 1950 रु॰ होगा। अत: उपभोक्ता कीमत सूचकांक $\frac{1,950}{1,400} \times 100 = 139.29$ होगा (लगभग)।

यह ध्यान देने योग्य है कि अनेक वस्तुओं की कीमतें दो समुच्चयों में होती है एक खुदरा कीमत होती है जो उपभोक्ता वास्तव में अदा करता है। दूसरी थोक कीमत होती है, इस कीमत पर बहुमात्रा में वस्तुओं का व्यापार होता है। इन दोनों के मूल्यों में अंतर हो सकते हैं, क्योंकि उपांत व्यापारियों के पास रहता है। बहुमात्रा में व्यापार की जाने वाली वस्तुओं (कच्चा माल अथवा अर्ध-निर्मित वस्तुएँ) का क्रय साधारण उपभोक्ता नहीं करते हैं। उपभोक्ता कीमत सूचकांक के

समान थोक कीमत सूचकांक को **थोक कीमत सूचकांक** (WPI) कहते है। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देशों में इसे उत्पादक कीमत सूचकांक (PPI) कहते हैं। ध्यान रहे कि उपभोक्ता कीमत सूचकांक (थोक कीमत सूचकांक के सादृश्य) में सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक से अंतर हो सकता है क्योंकि,

1. उपभोक्ता जिन वस्तुओं का क्रय करते हैं, उनसे देश में उत्पादित सभी वस्तुओं का प्रतिनिधित्व नहीं होता है। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक में सभी ऐसी वस्तुएँ और सेवाएँ हैं।
2. उपभोक्ता कीमत सूचकांक में प्रतिनिधि उपभोक्ता द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं की कीमतें शामिल हैं। अतः इसमें आयातित वस्तुओं की कीमतें शामिल हैं। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक में आयातित वस्तुओं की कीमतें शामिल नहीं होती है।
3. उपभोक्ता कीमत सूचकांक में भार नियत रहता है। लेकिन सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक में प्रत्येक वस्तु के उत्पादन स्तर के अनुसार उनमें अंतर होता है।

2.5 सकल घरेलू उत्पाद और कल्याण

क्या किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद को उस देश के लोगों के कल्याण के सूचकांक के रूप में लिया जा सकता है? यदि किसी व्यक्ति की आय अधिक है, तो वह अधिक वस्तुओं और सेवाओं का क्रय कर सकता है अथवा उनके भौतिक कल्याण में सुधार हो सकता है। अतः यह उचित होगा कि उनके आय स्तर को उनके कल्याण स्तर के रूप में देखा जाए। सकल घरेलू उत्पाद किसी वर्ष विशेष में किसी देश की भौगोलिक सीमा के अंतर्गत सृजित वस्तु एवं सेवाओं के कुल मूल्य का योग होता है। सकल घरेलू उत्पाद का वितरण लोगों के बीच आय (प्रतिधारित आय को छोड़कर)। अतः हम किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद के उच्चतर स्तर को उस देश के लोगों के उच्च कल्याण के सूचकांक के रूप में समझने का लालच कर सकते हैं (कीमत परिवर्तन के लेखांकन के लिए हम मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद के बदले वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद का मूल्य ले सकते हैं)। किंतु यह सही नहीं हो सकता। इसके कम से कम तीन कारण हैं।

1. **सकल घरेलू उत्पाद का वितरण:** यह कितना समरूप है? यदि देश के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हो रही, तो कल्याण में उसके अनुसार वृद्धि नहीं हो सकती है। इस स्थिति में संपूर्ण देश के कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि वर्ष 2000 में किसी काल्पनिक देश में 100 व्यक्ति थे, जिनमें प्रत्येक की आय 10 रुपये थी। अतः देश का सकल घरेलू उत्पाद 1000 रुपये था (आय विधि से)। मान लीजिए 2001 में उसी देश में 90 व्यक्तियों में प्रत्येक व्यक्ति की आय 9 रुपये थी और शेष 10 व्यक्तियों की प्रति व्यक्ति आय 20 रुपये थी। मान लीजिए कि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में इन दोनों अवधियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वर्ष 2001 में देश की सकल घरेलू उत्पाद = 90 × (9 रुपये) + 10 × (20 रुपये) = 810 रुपये + 200 रुपये = 1010 रुपये। अवलोकन कीजिए कि 2000 की तुलना में 2001 में देश का सकल घरेलू उत्पाद 10 रुपये अधिक था। किंतु यह तब हुआ, जब 90 प्रतिशत लोगों की आय में 10 प्रतिशत की कमी (10 रुपये से 9 रुपये) आयी। जबकि केवल 10 प्रतिशत लोगों को अपनी आय में 100 प्रतिशत (10 रुपये से बढ़कर 20 रुपये) वृद्धि का लाभ मिला। 90 प्रतिशत लोगों की दशा देश के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से दयनीय हो गई। यदि हम देश के कल्याण में उन्नति समृद्ध लोगों के प्रतिशत से करें, तो निश्चित रूप से सकल घरेलू उत्पाद एक अच्छा सूचकांक नहीं है।

2. **गैर-मौद्रिक विनिमयः** अर्थव्यवस्था के अनेक कार्यकलापों का मूल्यांकन मौद्रिक रूप में नहीं होता। उदाहरणार्थ, महिलाएँ जो अपने घरों में घरेलू सेवाओं का निष्पादन करती है, उसके लिए उसे कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। मुद्रा की सहायता के बिना अनऔपचारिक क्षेत्रक में जो विनिमय होते हैं, उसे वस्तु विनिमय कहते हैं। वस्तु विनिमय में वस्तुओं का (सेवाएँ) एक-दूसरे के बदले प्रत्यक्ष रूप से विनिमय होता है, लेकिन चूँकि मुद्रा का यहाँ प्रयोग नहीं होता है, इसलिए विनिमय दरों को आर्थिक कार्यकलाप का हिस्सा नहीं माना जाता है। विकासशील देशों में जहाँ अनेक सुदूर क्षेत्र अल्प-विकसित है, इस प्रकार के विनिमय होते हैं। लेकिन इनकी गणना प्रायः देश के घरेलू उत्पादों में नहीं होती। इस स्थिति में सकल घरेलू उत्पाद का अल्प-मूल्यांकन होता है, अतः सकल घरेलू उत्पाद का मूल्यांकन मानक तरीके से करने पर हमें उत्पादक कार्यकलाप और किसी देश के कल्याण का स्पष्ट संगत नहीं मिलता है।

3. **बाह्य कारणः** बाह्य कारणों से तात्पर्य किसी फर्म या व्यक्ति के लाभ (हानि) से है, जिससे दूसरा पक्ष प्रभावित होता है जिसे भुगतान नहीं किया जाता है (दंडित)। बाह्य कारणों का कोई बाज़ार नहीं होता है, जिसमें उनको खरीदा या बेचा जा सके। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक तेल शोधक संयंत्र है, जिसमें कच्चे पेट्रोलियम का परिशोधन होता है और उसे बाज़ार में बेचा जाता है। तेल शोधक यंत्र का निर्गत इसके द्वारा परिशोधित तेल की मात्रा है। हम तेल शोधक संयंत्र की मध्यवर्ती के मूल्य (इस स्थिति में कच्चा तेल) को इसके निर्गत से घटाकर मूल्यवर्धित का आकलन कर सकते हैं। तेल शोधक संयंत्र के मूल्यवर्धित की अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में गणना की जाती है। किंतु उत्पादन के संचालन में तेल शोधक संयंत्र तटवर्ती नदियों को भी प्रदूषित कर सकता है। इससे उन लोगों को हानि पहुँच सकती है, जो नदी जल का उपयोग करते हैं। अतः उनकी उपयोगिता में कमी होगी। प्रदूषण से मछली अथवा नदी के अन्य जीवों के जीवन को खतरा हो सकता है। फलतः नदी का नाविक अपनी आय और उपयोगिता से वंचित होगा। इनके हानिकारक प्रभाव हैं। नाविक को नदी में मछली पकड़ने वालों की आय से वंचित होना पड़ सकता है। तेल शोधक संयंत्रों द्वारा दूसरों पर डाले गए हानिकारक प्रभावों जिनकी उन्हें कोई लागत नहीं अदा करनी होती है, बाह्य कारण कहे जाते हैं। इस स्थिति में सकल घरेलू उत्पाद को इन बाहरी कारणों में शामिल नहीं किया गया है। अतः यदि हम सकल घरेलू उत्पाद को अर्थव्यवस्था के कल्याण की माप के रूप में लें, तो हमें वास्तविक कल्याण का अति मूल्यांकन प्राप्त होगा। यह *ऋणात्मक बाह्यकारण* का उदाहरण था। यह *धनात्मक बाह्यकरण* की स्थितियाँ भी हो सकती है। ऐसी स्थितियों में सकल घरेलू उत्पाद से अर्थव्यवस्था के वास्तविक कल्याण का अल्प-मूल्यांकन होगा।

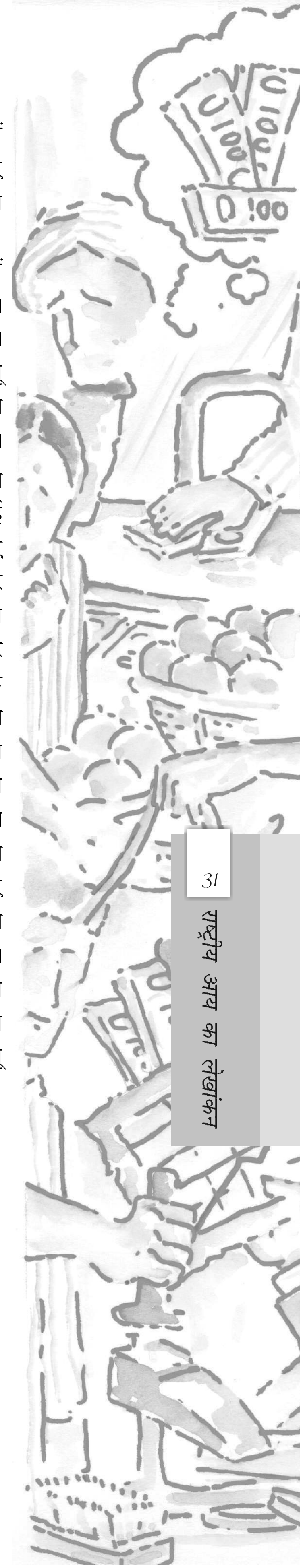

सारांश

अति मौलिक स्तर पर समष्टिगम अर्थव्यवस्था (जिस अर्थव्यवस्था का अध्ययन हम समष्टि अर्थशास्त्र में करते हैं) की कार्य पद्धति को वर्तुल पथ में देखा जा सकता है। फर्म परिवारों के द्वारा पूर्ति किए गए आगतों का नियोजन करते हैं और परिवारों को बेचने के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करते हैं। परिवार फर्म को प्रदान की गई सेवा के लिए पारिश्रमिक प्राप्त करता है और उससे फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का क्रय करता है। अतः हम किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की गणना तीन में से किसी भी विधि से कर सकते हैं। 1. कारक अदायगी के समस्त मूल्यों की माप करके (आय विधि), 2. फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य की माप करके (उत्पाद विधि) और 3. फर्मों द्वारा प्राप्त व्यय के समस्त मूल्य की माप करके (व्यय विधि)। उत्पाद विधि में दुहरी गणना को दूर करने के लिए हमें मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को घटाना होगा और अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य को ही ग्रहण करना होगा। इनमें से प्रत्येक विधियों से हम अर्थव्यवस्था की समस्त आय की गणना के लिए सूत्र व्युत्पन्न कर सकते हैं। हमें यह भी ध्यान में रखना है कि वस्तुओं का क्रय निवेश के लिए भी किया जा सकता है और इनसे निवेशकर्ता फर्मों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। समस्त आय की भिन्न-भिन्न कोटियाँ हो सकती है, जो उन पर निर्भर करेगी जिनको आय उपगत होती है। सकल घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद, कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद, वैयक्तिक आय और वैयक्तिक प्रयोज्य आय में हम अंतर दिखला सकते हैं। चूँकि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, इसीलिए हम यह विमर्श करते हैं कि तीन महत्त्वपूर्ण कीमत सूचकांकों (सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक, उपभोक्ता कीमत सूचकांक और थोक कीमत सूचकांक) की गणना कैसे की जाए। अंत में, हम यह देखते हैं कि सकल घरेलू उत्पाद को किसी देश के कल्याण के सूचकांक के रूप में लेना गलत होगा।

मूल संकल्पनाएँ

अंतिम वस्तुएँ	उपभोग वस्तुएँ
टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ	पूँजीगत वस्तुएँ
मध्यवर्ती वस्तुएँ	स्टॉक
प्रवाह	सकल निवेश
निवल निवेश	मूल्यह्रास
मज़दूरी	ब्याज
लाभ	लगान
आय का वर्तुल प्रवाह	राष्ट्रीय आय गणना की उत्पाद विधि
राष्ट्रीय आय गणना की व्यय विधि	राष्ट्रीय आय गणना की आय विधि
समष्टि अर्थशास्त्रीय मॉडल	आगत
मूल्यवर्धित	माल-सूची
माल-सूची में नियोजित परिवर्तन	माल-सूची में अनियोजित परिवर्तन
सकल घरेलू उत्पाद	निवल घरेलू उत्पाद
सकल राष्ट्रीय उत्पाद	निवल राष्ट्रीय उत्पाद (बाज़ार कीमत पर)
निवल राष्ट्रीय उत्पाद (कारक लागत पर) अथवा राष्ट्रीय आय	अवितरित लाभ
परिवार के द्वारा निवल ब्याज अदायगी	निगम कर
सरकार और फर्मों के द्वारा परिवार को अंतरण अदायगी	वैयक्तिक आय (PI)
वैयक्तिक कर अदायगी	गैर-कर अदायगी
वैयक्तिक प्रयोज्य आय	राष्ट्रीय प्रयोज्य आय
निजी आय	मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद
वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद	आधार वर्ष
सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक	उपभोक्ता कीमत सूचकांक
थोक कीमत सूचकांक	बाह्य कारक

अभ्यास

1. उत्पादन के चार कारक कौन-कौन से हैं और इनमें से प्रत्येक के पारिश्रमिक को क्या कहते हैं?
2. किसी अर्थव्यवस्था में समस्त अंतिम व्यय समस्त कारक अदायगी के बराबर क्यों होता है? व्याख्या कीजिए।
3. स्टॉक और प्रवाह में भेद स्पष्ट कीजिए। निवल निवेश और पूँजी में कौन स्टॉक है और कौन प्रवाह? हौज में पानी के प्रवाह से निवल निवेश और पूँजी की तुलना कीजिए।
4. नियोजित और अनियोजित माल-सूची संचय में क्या अंतर है? किसी फर्म की माल-सूची और मूल्यवर्धित के बीच संबंध बताइए।
5. तीनों विधियों से किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद की गणना करने की किन्हीं तीन निष्पत्तियाँ लिखिए। संक्षेप में यह भी बताइए कि प्रत्येक विधि से सकल घरेलू उत्पाद का एक-सा मूल्य क्या आना चाहिए?
6. बजटीय घाटा और व्यापार घाटा को परिभाषित कीजिए। किसी विशेष वर्ष में किसी देश की कुल बचत के ऊपर निजी निवेश का आधिक्य 2000 करोड़ रु॰ था। बजटीय घाटे की राशि 1500 करोड़ रु॰ थी। उस देश के बजटीय घाटे का परिमाण क्या था?
7. मान लीजिए कि किसी विशेष वर्ष में किसी देश का सकल घरेलू उत्पाद बाज़ार कीमत पर 1100 करोड़ रु॰ था। विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय 100 करोड़ रु॰ था। अप्रत्यक्ष कर मूल्य-उपदान का मूल्य 150 करोड़ रु॰ और राष्ट्रीय आय 850 करोड़ रु॰ है, तो मूल्यह्रास के समस्त मूल्य की गणना कीजिए।
8. किसी देश विशेष में एक वर्ष में कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद 1900 करोड़ रु॰ है। फर्मो/सरकार के द्वारा परिवार को अथवा परिवार के द्वारा सरकार/फर्मों को किसी भी प्रकार का ब्याज अदायगी नहीं की जाती है, परिवारों की वैयक्तिक प्रयोज्य आय 1200 करोड़ रु॰ है। उनके द्वारा अदा किया गया वैयक्तिक आयकर 600 करोड़ रु॰ है और फर्मे तथा सरकार द्वारा अर्जित आय का मूल्य 200 करोड़ रु॰ है। सरकार और फर्म द्वारा परिवार को की गई अंतरण अदायगी का मूल्य क्या है?
9. निम्नलिखित आँकड़ों से वैयक्तिक आय और वैयक्तिक प्रयोज्य आय की गणना कीजिए:

		(करोड़ रु॰ में)
(a)	कारक लागत पर निवल घरेलू उत्पाद	8000
(b)	विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय	200
(c)	अवितरित लाभ	1000
(d)	निगम कर	500
(e)	परिवारों द्वारा प्राप्त ब्याज	1500
(f)	परिवारों द्वारा भुगतान किया गया ब्याज	1200
(g)	अंतरण आय	300
(h)	वैयक्तिक कर	500

10. हजाम राजू एक दिन में बाल काटने के लिए 500 रु॰ का संग्रह करता है। इस दिन उसके उपकरण में 50 रु॰ का मूल्यह्रास होता है। इस 450 रुपये में से राजू 30 रु॰ बिक्री कर अदा करता है। 200 रु॰ घर ले जाता है और 220 रु॰ उन्नति और नए उपकरणों का क्रय करने के लिए रखता है। वह अपनी आय में से 20 रु॰ आय कर के रूप में अदा करता है। इन पूरी सूचनाओं के आधार पर निम्नलिखित में राजू का योगदान ज्ञात कीजिए: (a) सकल घरेलू उत्पाद (b) बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (c) कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (d) वैयक्तिक आय (e) वैयक्तिक प्रयोज्य आय।
11. किसी वर्ष एक अर्थव्यवस्था में मौद्रिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य 2500 करोड़ रु॰ था। उसी वर्ष, उस देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य किसी आधार वर्ष की कीमत पर 3000 करोड़ रु॰ था। प्रतिशत के रूप में वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक के मूल्य की गणना कीजिए। क्या आधार वर्ष और उल्लेखनीय वर्ष के बीच कीमत स्तर में वृद्धि हुई?
12. किसी देश के कल्याण के निर्देशांक के रूप में सकल घरेलू उत्पाद की कुछ सीमाओं को लिखो।

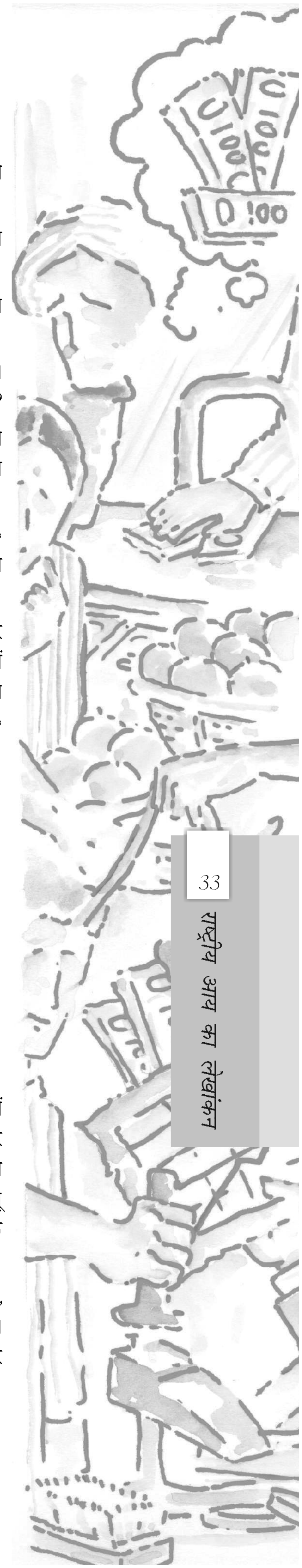

सुझावात्मक पठन

भादुड़ी, ए., 1990. *मैक्रोइकोनॉमिक्स: द डायनामिक्स ऑफ कोमोडिटी प्रोडक्शन,* पृ॰ 1-27, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली।

ब्रेनसन डब्ल्यू. एच., 1992. *मैक्रोइकोनॉमिक्स थ्योरी एंड पोलिसी,* (तृतीय संस्करण), पृ॰ 15-34, हार्पर कोलिंस पब्लिशर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली।

डॉर्नबुश, आर. और एस. फिशर, 1988. *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* (चतुर्थ संस्करण) पृ॰ 29-62, मैक्ग्राहिल।

मानकिव एन. जी. 2000. *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* (चतुर्थ संस्करण) पृ॰ 15-76, मैकमिलन वर्थ पब्लिशर्स न्यूयार्क।

परिशिष्ट 2.1

तालिका 2.2: भारत के समष्टि अर्थशास्त्रीय समस्त वर्तमान कीमत पर (पुरानी श्रेणी इकाई: करोड़ रु॰);

	बाज़ार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद	विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय	बाज़ार कीमत पर सकल राष्ट्रीय आय	स्थिर पूँजी का उपयोग (मूल्यह्रास)	बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद
1990-91	5, 68, 674	-7, 545	5, 61, 129	53, 264	5, 07, 865
1991-92	6, 53, 117	-10, 077	6, 43, 040	64, 402	5, 78, 638
1992-93	7, 48, 367	-11, 645	7, 36, 722	74, 512	6, 62, 210
1993-94	8, 59, 220	-12, 080	8, 47, 140	83, 353	7, 63, 787
1994-95	10, 12, 770	-13, 083	9, 99, 687	97, 994	9, 01, 693
1995-96	11, 88, 012	-13, 484	11, 74, 528	1, 17, 926	10, 56, 602
1996-97	13, 68, 209	-13, 082	13, 55, 127	1, 36, 503	12, 18, 624
1997-98	15, 22, 547	-13, 205	15, 09, 342	1, 51, 997	13, 57, 345
1998-99	17, 40, 985	-14, 968	17, 26, 017	1, 68, 066	15, 57, 951
1999-00	19, 36, 831	-15, 431	19, 21, 400	1, 82, 359	17, 39, 041
2000-01	20, 89, 500	-18, 109	20, 71, 391	1, 97, 895	18, 73, 696
2001-02	22, 71, 984	-15, 566	22, 56, 418	2,17, 679	20, 38, 739
2002-03	24, 63, 324	-13, 166	24, 50, 158	2, 32, 952	22, 17, 206
2003-04	27, 60, 025	-14, 078	27, 45, 947	2, 53, 637	24, 92, 310
2004-05	31, 05, 512	-17, 707	30, 87, 805	2, 77, 131	28, 17, 968

स्रोत: बैंक ऑफ इंडिया: हैंडबुक ऑफ इंडियन इकोनॉमी

तालिका 2.3: भारत के विभिन्न समष्टि अर्थशास्त्रीय समस्त वर्तमान कीमतों पर (पुरानी श्रेणी; इकाई: करोड़ रु०);

	अप्रत्यक्ष कर – उपदान	कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय)	वैयक्तिक प्रयोज्य आय
1990–91	57, 720	4, 50, 145	4, 61, 192
1991–92	64, 031	5, 14, 607	5, 27, 018
1992–93	75, 146	5, 87, 064	6, 11, 390
1993–94	77, 875	6, 85, 912	7, 07, 692
1994–95	95, 712	8, 05, 981	8, 34, 764
1995–96	1, 14, 741	9, 41, 861	9, 49, 191
1996–97	1, 24, 662	10, 93, 962	11, 27, 542
1997–98	1, 32, 399	12, 24, 946	12, 53, 142
1998–99	1, 42, 858	14, 15, 093	14, 61, 827
1999–00	1, 74, 993	15, 64, 048	16, 11, 834
2000–01	1, 86, 501	16, 86, 995	17, 76, 381
2001–02	1, 90, 510	18, 48, 229	19, 67, 770
2002–03	2, 08, 436	20, 08, 770	21, 06, 551
2003–04	2, 40, 240	22, 52, 070	23, 58, 503
2004–05	2, 75, 047	25, 35, 627	*उपलब्ध नहीं*

स्रोत: रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया: हैंडबुक ऑफ इंडियन इकोनॉमी।

तालिका 2.4: भारत के विभिन्न समष्टि अर्थशास्त्रीय समस्त वर्तमान कीमतों पर (पुरानी श्रेणी; इकाई: करोड़ रु०);

	निजी अंतिम उपभोग व्यय	सकल घरेलू पूँजी निर्माण (निजी और सार्वजनिक दोनों उपक्रमों के द्वारा किया गया निवेश)	सरकारी अंतिम उपभोग व्यय
1990-91	3,81,157	1,49,536	66,030
1991-92	4,40,594	1,47,285	74,285
1992-93	4,96,310	1,76,722	83,957
1993-94	5,69,225	1,98,412	97,725
1994-95	6,59,239	1,63,356	1,08,639
1995-96	7,60,138	3,19,527	1,28,816
1996-97	8,96,470	3,34,999	1,45,725
1997-98	9,76,131	3,74,480	1,72,189
1998-99	11,34,134	3,93,021	2,14,033
1999-00	12,67,658	4,90,669	2,51,108
2000-01	13,53,709	4,98,179	2,64,237
2001-02	14,85,675	5,13,543	2,83,351
2002-03	15,83,879	6,10,228	2,91,547
2003-04	17,61,788	7,26,868	3,12,109
2004-05	*उपलब्ध नहीं*	*उपलब्ध नहीं*	*उपलब्ध नहीं*

स्रोत: रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया: हैंडबुक ऑफ इंडियन इकोनॉमी।

अध्याय 3

मुद्रा और बैंकिंग

मुद्रा विनिमय का एक सर्वमान्य माध्यम है। ऐसी अर्थव्यवस्था, जो व्यक्ति विशेष से बनी हो, उसमें वस्तुओं का कोई विनिमय नहीं हो सकता और इसलिए वहाँ मुद्रा की कोई भूमिका नहीं होती है। एक से ज़्यादा व्यक्ति होने पर भी अगर वे बाज़ार के संव्यवहार में भाग नहीं लेते हैं, जैसे कि किसी टापू पर कोई एक परिवार रहता हो, तो वहाँ मुद्रा का कोई कार्य नहीं होता है। किंतु जैसे ही एक से अधिक आर्थिक एजेंट बाज़ार के माध्यम से संव्यवहार शुरु करते हैं, मुद्रा विनिमय को सुविधाजनक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जाती है। मुद्रा के माध्यम के बिना आर्थिक विनिमय को *वस्तु विनिमय* कहा जाता है। यद्यपि वे *आवश्यकताओं के उभय संयोग* की असंभाव्यता को अनुमानित करते हैं। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि एक व्यक्ति के पास चावल का अधिशेष है, जिसके बदले में वह वस्त्र का विनिमय करना चाहता है। यदि वह बहुत भाग्यशाली नहीं है, तो उसे ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसकी माँग ठीक विपरीत हो अर्थात् उसे चावल की ज़रूरत हो और उसे वह ज़रूरत से ज़्यादा उपलब्ध कपड़ों के बदले विनिमय करना चाहता हो। जैसे-जैसे व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होगी, खोज की लागत निषेधक होती जाएगी। इसलिए एक मध्यवर्ती वस्तु का होना बहुत ज़रूरी है, जिससे लेन-देन को सरल बनाया जा सके और जो दोनों पक्ष द्वारा स्वीकार्य हो। ऐसी वस्तु को मुद्रा कहते हैं। एक व्यक्ति अपने उत्पादित वस्तु को मुद्रा के बदले बेचकर इसका उपयोग अपनी ज़रूरत की वस्तु को खरीदने में कर सकता है।

यद्यपि मुद्रा की मुख्य भूमिका विनिमय को सुगम बनाना है, किंतु यह अन्य उद्देश्यों की पूर्ति में भी सहायक होता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

3.1 मुद्रा के कार्य

जैसाकि ऊपर वर्णित है, मुद्रा की सर्वप्रथम भूमिका यह है कि वह **विनिमय के माध्यम** के रूप में कार्य करती है। बड़ी अर्थव्यवस्था में वस्तु विनिमय अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि उच्च कीमतों के कारण व्यक्तियों को अपने आधिक्य के विनिमय के लिए योग्य व्यक्तियों की तलाश करनी होगी।

मुद्रा सुविधाजनक **लेखा की एक इकाई** के रूप में भी कार्य करती है। सभी वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य मौद्रिक इकाई के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। जब हम कहते हैं कि एक कलाई घड़ी का मूल्य 500 रुपये है, तो

इसका मतलब है कि कलाई घड़ी का विनिमय मुद्रा की 500 इकाइयों से की जा सकती है, जहाँ मुद्रा की एक इकाई रुपया है। यदि एक पेंसिल की कीमत 2 रुपये है और एक कलम की कीमत 10 रुपये है, तो हम कलम और पेंसिल की सापेक्ष कीमत की गणना कर सकते हैं। जैसे एक कलम की कीमत $\frac{10}{2} = 5$ पेंसिल। अन्य वस्तुओं की तुलना में मुद्रा की गणना में भी इसी प्रकार की धारणा का प्रयोग किया जा सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में, एक रुपये का मूल्य $\frac{1}{2} = 0.5$ पेंसिल या $\frac{1}{10} = 0.1$ कलम है। अतः यदि सभी वस्तुओं की कीमतें मुद्रा के रूप में बढ़ती है, दूसरे शब्दों में, जिसे कीमत स्तर में सामान्य वृद्धि कहते हैं, तो मुद्रा का मूल्य किसी वस्तु के सापेक्ष घट जाता है, क्योंकि अब मुद्रा की एक इकाई कम वस्तुओं को खरीदेगी। इसे मुद्रा की क्रय-शक्ति में ह्रास कहा जाता है।

वस्तु विनिमय प्रणाली की अन्य खामियाँ भी हैं। वस्तु विनिमय प्रणाली में किसी व्यक्ति की संपत्ति को आगे के लिए बनाए रखना कठिन है। मान लीजिए कि आपके पास चावल का एन्डाउमेंट है, जिसका आप आज ही पूर्णरूपेण उपभोग नहीं करना चाहते हैं। आप चावल के इस आधिक्य स्टॉक को भविष्य में दूसरी आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अथवा परिसंपत्ति के रूप में संचित रखना चाहते हैं। लेकिन चावल एक शीघ्रनाशी वस्तु है, जिसे आप एक निश्चित समय से अधिक दिनों तक संचित नहीं रख सकते हैं और इसे संचित करने के लिए बहुत जगह की भी आवश्यकता होती है। इसके अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब आप अपने संचित चावल के बदले दूसरी ज़रूरत की वस्तु खरीदना चाहेंगे, तो आपको बहुत समय और साधन दोनों ऐसे ज़रूरतमंद व्यक्तियों की खोज में लगाना पड़ेगा, जिन्हें आपकी ज़रूरत की वस्तु के बदले चावल की आवश्यकता है। इस समस्या का समाधान हो सकता है, यदि आप चावल को मुद्रा के लिए बेचते हैं। मुद्रा नाशवान वस्तु नहीं है और इसकी संचय लागत अत्यंत कम होती है। मुद्रा किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी समय ग्रहण करने योग्य होती है। अतः मुद्रा व्यक्तियों के लिए ***मूल्य संचय*** का काम करती है। भविष्य के लिए धन का संचय मुद्रा के रूप में किया जा सकता है। किंतु इस कार्य के कुशलतापूर्वक निष्पादन के लिए मुद्रा के मूल्य में पर्याप्त स्थायित्व होना आवश्यक है। कीमतों का स्तर बढ़ते जाने से मुद्रा की क्रय-शक्ति घटती जाती है। ध्यातव्य है कि मुद्रा के अतिरिक्त अन्य परिसंपत्ति भी मूल्य संचय का कार्य कर सकती है। जैसे - सोना, संपत्ति, भू-संपत्ति, मकान और बंधपत्र (शीघ्र ही इसके बारे में जानकारी मिलेगी)। परंतु, ये संपत्तियाँ दूसरी वस्तु के रूप में आसानी से परिवर्तनीय नहीं भी हो सकती हैं और इनकी सार्वभौमिक स्वीकार्यता नहीं होगी।

3.2 मुद्रा की माँग

मुद्रा सभी प्रकार की संपत्तियों में सबसे **तरल** संपत्ति इस अर्थ में है कि यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य है और इसका किसी दूसरी वस्तु के रूप में आसानी से विनिमय किया जा सकता है। दूसरी ओर, इसकी अवसर लागत भी होती है। यदि मुद्रा की एक निश्चित नकद राशि धारण करने के बदले आप इसे किसी बैंक के निक्षेप में जमा करते हैं, तो आपको इस जमा मुद्रा पर ब्याज प्राप्त होता है। एक निश्चित समय पर कितनी मुद्रा का धारण किया जाए, इसका निर्धारण करते समय तरलता से लाभ और ब्याज के त्याग की हानि के संबंध में विचार करना होगा। अतः मुद्रा शेष की माँग प्रायः *तरलता अधिमान* कहलाता है। लोगों में मुद्रा कोष रखने की इच्छा के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं।

3.2.1 संव्यवहार प्रयोजन

मुद्रा धारण करने का मुख्य प्रयोजन संव्यवहारों को जारी रखना है। अगर आप अपनी आय साप्ताहिक आधार पर प्राप्त करते हैं और सप्ताह के पहले दिन बिल का भुगतान करते हैं, तो आपको पूरे सप्ताह नकद राशि धारण करने की आवश्यकता नहीं होती। आप अपने नियोक्ता को कह सकते हैं कि वह आपके साप्ताहिक वेतन से व्यय को सीधे काट कर बाकी बचे वेतन को आपके बैंक खाते में जमा कर दें। लेकिन हमारे व्यय के ढाँचे और प्राप्तियों में प्राय: मिलान नहीं होता। लोग अलग-अलग समय पर आय प्राप्त करते हैं, किंतु उनका व्यय उस पूरे समयांतराल में निरंतर होता रहता है। मान लीजिए कि आपको प्रत्येक माह की पहली तारीख को 100 रु॰ आय प्राप्त होती है और इसका माह के शेष दिनों में व्यय होता रहता है। इस प्रकार, माह के आरंभ और अंत में आपका रोकड़ शेष क्रमश: 100 रु॰ और 0 रु॰ रहता है। तब आपकी औसत नकद धारिता की गणना (100 रु॰ + 0 रु॰) ÷ 2 = 50 रु॰ के रूप में की जा सकती है, जिससे आप हर माह 100 रु॰ मूल्य का संव्यवहार करते हैं। अत: आपकी मुद्रा की औसत संव्यवहार माँग आपकी मासिक आय के आधे के बराबर है अथवा दूसरे शब्दों में, आपके मासिक संव्यवहार का मूल्य आधा है।

अब हम दो व्यक्ति वाली अर्थव्यवस्था पर विचार करेंगे, जिसमें दो सत्व–एक फर्म (एक व्यक्ति का स्वामित्व) और एक श्रमिक हैं। प्रत्येक महीने के प्रथम दिन फर्म श्रमिक को 100 रु॰ वेतन देती है। श्रमिक इसके बदले आय को फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु पर पूरे माह में व्यय करता है। यहाँ अर्थव्यवस्था में केवल एक ही वस्तु उपलब्ध है। इस प्रकार, प्रत्येक माह के आरंभ में श्रमिक के पास 100 रु॰ मुद्रा शेष रहता है और फर्म के पास 0 रु॰। माह के अंतिम दिन तस्वीर उल्टी होती है–फर्म के पास 100 रु॰ होता है जो उसे श्रमिक को अपनी वस्तु बेचने से प्राप्त हुआ है। फर्म और श्रमिक की औसत मुद्रा धारिता 50 रु॰ के बराबर है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग 100 रु॰ के बराबर होगी। इस अर्थव्यवस्था में मासिक संव्यवहार का कुल परिमाण 200 रु॰ है। फर्म 100 रु॰ मूल्य का उत्पाद श्रमिक को बेचता है और श्रमिक 100 रु॰ मूल्य की सेवा फर्म को बेचता है। किसी-किसी इकाई अवधि में इस अर्थव्यवस्था में संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग संव्यवहार की कुल मात्रा का अंश मात्र होगी।

अत: सामान्य अर्थों में मुद्रा की संव्यवहार माँग, M_T^d को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है:

$$M_T^d = k.T \tag{3.1}$$

जहाँ T एक इकाई समयावधि में अर्थव्यवस्था में संव्यवहार का कुल मूल्य (मौद्रिक) है और k धनात्मक अंश है।

ऊपर वर्णित दो-व्यक्ति वाली अर्थव्यवस्था को दूसरी दृष्टि से भी देखा जा सकता है। आपको शायद आश्चर्य होगा कि 200 रु॰ प्रतिमाह के संव्यवहार के लिए अर्थव्यवस्था में 100 रु॰ मूल्य के मुद्रा शेष का प्रयोग होता है। इस पहेली का उत्तर सरल है: महीने में दो बार प्रत्येक रुपये का हस्तांतरण होता है। प्रथम दिन नियोक्ता की जेब से इसका शिफ्ट श्रमिक की जेब में होता है और महीने के दौरान बार-बार यह रुपया श्रमिक से नियोक्ता के पास जाता है। मुद्रा की एक इकाई का एक इकाई अवधि में जितनी बार हस्तांतरण होता है, उसे **मुद्रा का संचलन वेग** कहते हैं। उपयुर्क्त उदाहरण में 2, अर्थों का विलोम-मुद्रा अधिशेष और संव्यवहार मूल्य का अनुपात है। अत: हम सामान्य रूप में समीकरण 3.1 को निम्न रूप से दुबारा लिख सकते हैं।

$$\frac{1}{k} \cdot M_T^d = T \text{ अथवा } v.M_T^d = T \tag{3.2}$$

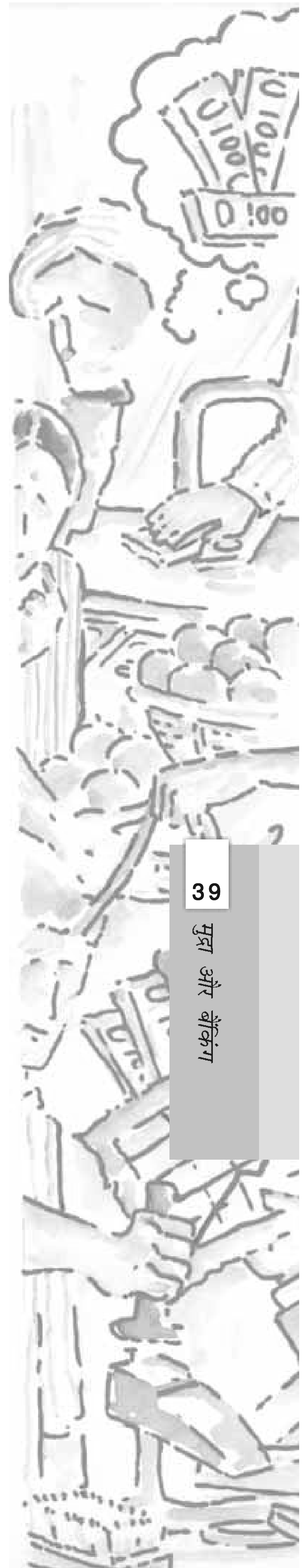

जहाँ $V=\frac{1}{k}$ संचलन वेग है। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त समीकरण की दायीं ओर का पद T प्रवाह परिवर्त है जबकि मुद्रा की माँग, M_T^d एक स्टॉक संकल्पना है–यह मुद्रा के स्टॉक को दर्शाती है, जो कि लोग किसी निश्चित समय पर धारण करना चाहते हैं। किंतु मुद्रा के वेग V का समय आयाम होता है। इससे किसी इकाई समयावधि में अर्थात् एक माह या एक वर्ष में जितनी बार स्टॉक की एक इकाई का हस्तांतरण होता है, उसकी संख्या सूचित होती है। अतः बायीं ओर $v.M_T^d$ मुद्रा के संव्यवहार के कुल मूल्य का मूल्यांकन करता है, जो कि इस समयावधि में स्टॉक में होता है। यह प्रवाह परिवर्त है और यह दायीं ओर के परिवर्त के बराबर होता है।

अंततोगत्वा किसी अर्थव्यवस्था में दिए हुए वर्ष में समस्त संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग और सकल घरेलू उत्पाद नाममात्र के बीच संबंध का अध्ययन करने में हमारी दिलचस्पी होगी। किसी अर्थव्यवस्था में वार्षिक संव्यवहार के वार्षिक मूल्य में सभी प्रकार की मध्यवर्ती वस्तुओं और सेवाओं के संव्यवहार आते हैं और स्पष्ट रूप से यह नाममात्र के सकल घरेलू उत्पाद की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। लेकिन सामान्यतः संव्यवहारों के मूल्य और नाममात्र के सकल घरेलू उत्पाद के बीच स्थायी और धनात्मक संबंध रहता है। नाममात्र के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से संव्यवहार के कुल मूल्य में वृद्धि सूचित होती है और इस प्रकार समीकरण (3.1) से संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग अपेक्षाकृत अधिक होती है। अतः सामान्यतः समीकरण (3.1) में निम्न प्रकार से परिवर्तन किया जा सकता है:

$$M_T^d = kPY \qquad (3.3)$$

जहाँ Y वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद है और P सामान्य कीमत स्तर अथवा सकल घरेलू उत्पादक अवस्फीतिक है। उपर्युक्त समीकरण बताता है कि किसी अर्थव्यवस्था में संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग का अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय और उसके औसत कीमत स्तर के बीच धनात्मक संबंध होता है।

3.2.2 सट्टा उद्देश्य प्रयोजन

कोई व्यक्ति भू-संपत्ति, बहुमूल्य धातुओं, बंधपत्रों, मुद्रा इत्यादि के रूप में अपने पास धन संचित कर सकता है। सरलता की दृष्टि से हम मुद्रा के अलावा परिसंपत्तियों के अन्य सभी रूपों को मिलाकर एकल कोटि "बंधपत्र" बना लें। प्रतीकात्मक रूप में बंधपत्र ऐसे कागज़ हैं, जो एक समयावधि के उपरांत भविष्य में मौद्रिक प्रतिफल की धारा का वादा करते हैं। सरकार अथवा फर्म जनता से लिए गए उधार के लिए इन कागज़ों को जारी करते हैं और बाज़ार में इन्हें खरीदा-बेचा जा सकता है। निम्नलिखित द्वि-आवधिक बंधपत्र पर विचार कीजिए। कोई फर्म जनता से 100 रु॰ का कर्ज़ लेना चाहती है। वह एक बंधपत्र जारी करती है जो प्रथम वर्ष के अंत में 10 रु॰ और दूसरे वर्ष के अंत में मूलधन 100 रु॰ के साथ 10 रु॰ के योगफल को देने का भरोसा दिलाता है। ऐसे बंधपत्र का *अंकित मूल्य* 100 रु॰, *परिपक्वता अवधि* 2 वर्ष और *कूपन* दर 10 प्रतिशत है। कल्पना कीजिए कि आपके बचत बैंक खाते पर प्रचलित ब्याज की दर 5% के बराबर है। स्वाभाविक है कि आप इस बंधपत्र से अर्जित आय की तुलना अपने बचत बैंक खाते के ब्याज से करेंगे, इस संबंध में आप जो प्रश्न करेंगे वह इस प्रकार है: कितना रुपया बचत बैंक खाते में रखा जाये कि उससे वर्ष के अंत में 10 रु॰ का सृजन हो सके? इस राशि को X मान लीजिए।

अतः,

$$X\left(1 + \frac{5}{100}\right) = 10$$

अथवा, दूसरे शब्दों में,

$$X = \frac{10}{\left(1+\frac{5}{100}\right)}$$

X की इस मात्रा को *बाज़ार की ब्याज* दर *के बट्टे पर 10 रु० का वर्तमान मूल्य* कहते हैं। इसी प्रकार, मुद्रा की वह मात्रा जो बचत बैंक खाते में रखी जाती है, इससे 2 वर्ष के अंत में 110 रु० का सृजन होगा। अतः बंधपत्र से प्राप्त प्रतिफल का वर्तमान मूल्य निम्नलिखित के बराबर होगा,

$$\text{वर्तमान मूल्य } (PV) = X + Y = \frac{10}{\left(1+\frac{5}{100}\right)} + \frac{(10+100)}{\left(1+\frac{5}{100}\right)^2}$$

उपर्युक्त गणना से प्रकट होता है कि यह 109.29 रु० (लगभग) है। अभिप्राय यह है कि आप अपने बचत बैंक खाते में यदि 109.29 रु० रखेंगे, तो उससे उतना ही प्रतिफल प्राप्त होगा जितना कि बंधपत्र से। किंतु बंधपत्र का विक्रेता उतना ही प्रदान करता है, जितना कि उसका अंकित मूल्य 100 रु० है। स्पष्टतः बचत बैंक खाते की अपेक्षा बंधपत्र अधिक आकर्षक है और लोगों में बंधपत्र लेकर रखने की तीव्रता बढ़ जाएगी। प्रतिस्पर्धी बोली से बंधपत्र के उपर्युक्त अंकित मूल्य में वृद्धि तब तक होगी, जब तक कि बंधपत्र वर्तमान मूल्य (PV) के बराबर न हो जाएगा। यदि कीमत वर्तमान मूल्य (PV) से अधिक होगी तो बंधपत्र बचत बैंक खाते की अपेक्षा कम आकर्षक होगा और लोग इससे छुटकारा पाना चाहेंगे। बंधपत्र की पूर्ति की अधिपूर्ति होगी और बंधपत्र की कीमत पर दबाव नीचे की ओर होगा, जो इसे वर्तमान मूल्य (PV) तक वापस खींच लाएगा। स्पष्ट है कि स्पर्धी परिसंपत्ति बाज़ार की दशा में बंधपत्र की कीमत अपने वर्तमान मूल्य के बराबर संतुलन की स्थिति में होगी।

अब मान लीजिए कि ब्याज की बाज़ार दर में 5% से 6% की वृद्धि होती है। अतः उसी बंधपत्र का वर्तमान मूल्य और कीमत निम्नलिखित होगा:

$$\frac{10}{\left(1+\frac{6}{100}\right)} + \frac{(10+100)}{\left(1+\frac{6}{100}\right)^2} = 107.33 \text{ (लगभग)}$$

अतः बंधपत्र की कीमत और ब्याज की बाज़ार दर में प्रतिलोम संबंध होता है।

भिन्न-भिन्न लोगों की अर्थव्यवस्था के संबंध में अपनी निजी सूचना के आधार पर ब्याज की बाज़ार दर में भविष्य में होने वाले संचलन के संबंध में आशाएँ भिन्न-भिन्न होंगी। यदि आप सोचते हैं कि ब्याज की बाज़ार दर अकस्मात 8% वार्षिक पर स्थिर होती है, तो आप 5 प्रतिशत चालू के दर के बारे में विचार कर सकते हैं, जो धारणीय समयावधि में बहुत कम हैं। आप ब्याज दर में वृद्धि के बारे में आशा कर सकते हैं और परिणामतः बंधपत्र की कीमत गिर सकती है। यदि आप एक बंधपत्रकर्मी हैं तो बंधपत्र की कीमत में कमी का अर्थ है कि आपको हानि होगी, ठीक उसी तरह जैसे आपके द्वारा धारण की गई संपत्ति के मूल्य में अकस्मात बाज़ार में मूल्यह्रास के कारण आपको हानि होती है। बंधपत्र की कीमत में गिरावट से हुई इस हानि को बंधपत्र धारी की *पूँजी हानि* कहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में आप अपने बंधपत्र को बेचने का प्रयास करेंगे और उसके बदले मुद्रा धारण करेंगे। अतः ब्याज की दर और बंधपत्र की कीमत में भविष्य में होने वाले संचलन के संबंध में सट्टा के लिए मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है।

जब ब्याज की दर बहुत ऊँची हो तो हर कोई भविष्य में इसके गिरने की आशा करता है और इस प्रकार बंधपत्र धारण करने से पूँजीगत लाभ की आशा करता है। अतः लोग अपनी मुद्रा को बंधपत्र में बदल देते हैं। इस प्रकार सट्टा के लिए मुद्रा की माँग कम होगी। जब बाज़ार दर गिरती है, तो बहुसंख्यक लोग आशा करते हैं कि भविष्य में इसमें वृद्धि होगी और पूँजीगत हानि की आशा करते हैं। इस प्रकार, वे अपने बंधपत्र को मुद्रा में परिवर्तित करते हैं जिससे सट्टा के लिए मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है। सट्टा के लिए मुद्रा की माँग और ब्याज की दर में व्युत्क्रम संबंध होता है। एक सरल रूप की कल्पना करने पर सट्टा के लिए मुद्रा की माँग को इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$M_s^d = \frac{r_{\max} - r}{r - r_{\min}} \qquad (3.4)$$

जहाँ r ब्याज की बाज़ार दर और $r_{\max}$ और $r_{\min}$ उच्च और निम्न मान्यताएँ धनात्मक नियतांक हैं। समीकरण (3.4) से स्पष्ट है कि r में $r_{\max}$ से $r_{\min}$ तक में कमी होती है, तो M_s^d का मूल्य शून्य से अनंत तक बढ़ता है।

जैसाकि पूर्वोलिखित है कि ब्याज की दर को धारित मुद्रा अधिशेष का अवसर लागत अथवा कीमत के रूप में समझा जा सकता है। यदि अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है और लोग बंधपत्र खरीदते हैं, तो बंधपत्र के लिए मुद्रा की इस अतिरिक्त माँग में वृद्धि होगी, जिससे बंधपत्र की कीमत बढ़ेगी और ब्याज की दर में गिरावट आएगी। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में मुद्रा की बढ़ी हुई पूर्ति से अधिशेष मुद्रा धारित करने के लिए आपको एक कीमत चुकानी पड़ेगी, अर्थात् ब्याज की दर में कमी आएगी। किंतु, यदि ब्याज की बाज़ार दर पहले से ही काफी निम्न हो, जिससे कि हर कोई यह आशा करे कि भविष्य में इसमें वृद्धि होगी, इस कारण से कोई पूँजी की क्षति करके बंधपत्र नहीं रखेगा। अर्थव्यवस्था में हर कोई अपने धन को मुद्रा अधिशेष के रूप में रखता है। यदि अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मुद्रा इंजेक्ट की जाती है, तो इसका उपयोग बंधपत्र की माँग में वृद्धि और पुनः $r_{\min}$ स्तर से नीचे ब्याज की दर में कमी के बिना, मुद्रा अधिशेष के लिए लोगों की लालच को परितृप्त करने में इसका उपयोग किया जाएगा। ऐसी स्थिति को *तरलता पाश* कहते हैं। सट्टा के लिए मुद्रा की माँग फलन यहाँ अनंत लोचदार है।

रेखाचित्र 3.1 में सट्टा के लिए मुद्रा की माँग को समस्तरीय अक्ष पर और ब्याज की दर को उर्ध्व-अक्ष पर अंकित किया गया है। जब $r = r_{\max}$, तो सट्टा के लिए मुद्रा की माँग शून्य है। ब्याज की दर इतनी ऊँची है कि हर कोई भविष्य में इसके गिरने की आशा करता है और इसलिए यह विश्वास करता है कि भविष्य में पूँजी लाभ होगा। अतः हर कोई सट्टा मुद्रा अधिशेष को बंधपत्र में बदल देता है। जब $r = r_{\min}$, तो अर्थव्यवस्था तरलता पाश में होती है। हर कोई ब्याज दर में भविष्य में वृद्धि के लिए तथा बंधपत्र की कीमत में गिरावट के लिए आश्वस्त रहता है। हर कोई अपने धन को मुद्रा के रूप में रखता है और सट्टा के लिए मुद्रा की माँग अनंत होती है।

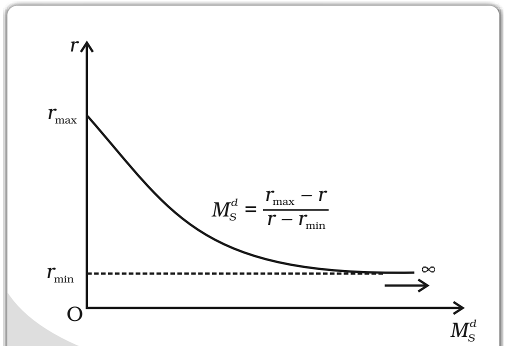

रेखाचित्र 3.1

सट्टा के लिए मुद्रा की माँग

अतः अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल माँग की रचना अंतरण माँग और सट्टा माँग से होती है। पूर्ववर्ती वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (GDP) और कीमत स्तर का सीधा समानुपाती होता है, जबकि परवर्ती और ब्याज की बाज़ार दर में व्युत्क्रम संबंध होता है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की समस्त माँग को संक्षेप में निम्नलिखित समीकरण से दर्शाया जा सकता है

$$M^d = M_T^d + M_s^d$$

या,

$$M^d = kPY + \frac{r_{\max} - r}{r - r_{\min}} \qquad (3.5)$$

3.3 मुद्रा की पूर्ति

आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा के अंतर्गत मुख्य रूप से देश के मौद्रिक प्राधिकरण द्वारा जारी करेंसी, नोट और सिक्के आते हैं। भारत में करेंसी नोट भारतीय रिज़र्व बैंक जारी करता है जो कि भारत का मौद्रिक प्राधिकरण है। किंतु सिक्के भारत सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं। करेंसी नोट और सिक्कों के अतिरिक्त, व्यावसायिक बैंकों में लोगों द्वारा जमा किये गए बचत खाते और चालू खाते को भी मुद्रा कहा जाता है, क्योंकि इन खातों से आहरित चेकों का उपयोग संव्यवहार के लिए किया जाता है। ऐसी जमा को *माँग जमा* कहते हैं, जो खाताधारी की माँग पर बैंक द्वारा भुगतान योग्य होता है। अन्य जमा, जैसे *आवधि जमा* की परिपक्वता की अवधि निश्चित होती है और इसे आवधिक जमा कहा जाता है।

चूँकि 100 रु॰ के नोट का उपयोग करके दुकान से 100 रु॰ मूल्य की वस्तु प्राप्त की जा सकती है, इसलिए कागज़ का मूल्य नगण्य होता है–निश्चित रूप से 100 रु॰ से कम। इसी तरह, 5 रु॰ के सिक्के में धातु का मूल्य संभवतः 5 रु॰ नहीं होता है, तो फिर लोग इन सिक्कों और नोट को उन वस्तुओं के विनिमय के रूप में क्यों स्वीकार करते हैं, जो स्पष्ट रूप से इनसे अधिक मूल्यवान है? करेंसी नोट और सिक्कों का मूल्य इन मदों के प्राधिकरण द्वारा जारी की गई गारंटी से व्युत्पन्न होता है। प्रत्येक करेंसी नोट पर भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा एक वादा किया जाता है। यदि कोई भारतीय रिज़र्व बैंक अथवा किसी व्यावसायिक बैंक को नोट प्रस्तुत करता है, भारतीय रिज़र्व बैंक उस नोट पर अंकित मूल्य के बराबर क्रय-शक्ति प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है। सिक्कों के संबंध में भी यही बात सही है। अतः करेंसी नोट और सिक्कों को *कागज़ी मुद्रा* कहते हैं। इनका सोने और चाँदी के सिक्के की तरह *आंतरिक मूल्य* नहीं होता। इनको *वैधानिक पत्र* भी कहते हैं, क्योंकि देश के किसी भी नागरिक के द्वारा इसके किसी भी प्रकार के संव्यवहार को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। किंतु बचत अथवा चालू खाते में आहरित चेक को किसी के भी द्वारा अस्वीकार किया जा सकता है। अतः माँग जमा वैध मुद्रा नहीं है।

3.3.1 वैध परिभाषाएँ: संकुचित और व्यापक मुद्रा

मुद्रा की माँग की तरह, मुद्रा की पूर्ति एक स्टॉक परिवर्त होती है। एक निश्चित समय में लोगों में संचरण करने वाली कुल मुद्रा को मुद्रा की पूर्ति कहते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक मुद्रा की पूर्ति के वैकल्पिक मापों को चार रूपों में प्रकाशित करता है, नामतः M1, M2, M3 और M4.। ये सभी निम्नलिखित तरह से परिभाषित किये जाते हैं–

M1 = CU + DD

M2 = M1 + डाकघर बचत बैंकों में बचत जमाएँ

M3 = M1 + व्यावसायिक बैंकों की निवल आवधिक जमाएँ

M4 = M3 + डाकघर बचत संस्थाओं में कुल जमाएँ (राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रों को छोड़कर)

यहाँ, CU लोगों द्वारा रखी गई करेंसी (नोट और सिक्के) हैं और DD व्यावसायिक बैंकों द्वारा रखी गयी निवल माँग जमा है। 'निवल' शब्द से बैंक के द्वारा रखी गयी लोगों की जमा का ही बोध होता है और इसलिए यह मुद्रा की पूर्ति में शामिल हैं। अंतर बैंक जमा, जो एक व्यावसायिक बैंक दूसरे व्यावसायिक बैंक में रखते हैं, को मुद्रा की पूर्ति के भाग के रूप में नहीं जाना जाता है।

M1 और M2 *संकुचित मुद्रा* कहलाती है। M3 और M4 को *व्यापक मुद्रा* कहते हैं। ये कोटियाँ तरलता के घटते हुए क्रम में होती है। M1 संव्यवहार के लिए सबसे तरल और आसान है, जबकि M4 इनमें सबसे कम तरल है। M3 मुद्रा पूर्ति की माप का सबसे साधारण रूप है। इसे *समस्त मौद्रिक संसाधन*[1] भी कहते हैं।

3.3.2 बैंकिंग पद्धति द्वारा मुद्रा सृजन

इस खंड में, हम लोग मुद्रा पूर्ति के निर्धारकों का पता लगाएँगे। यदि CU, DD जैसे मुद्रा के किसी घटक या आवधिक जमा के मूल्य में परिवर्तन हो, तो मुद्रा पूर्ति में भी परिवर्तन होगा। इस दृष्टि से सरलता के लिए अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति की माप के लिए हम मुद्रा की सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा नामतः M1 = CU + DD का उपयोग करेंगे। मौद्रिक प्राधिकरण की विभिन्न कार्रवाइयाँ, भारतीय रिज़र्व बैंक और व्यावसायिक बैंक इन मदों के मूल्य में परिवर्तन के लिए जिम्मेदार होती हैं। बैंकों में जमा के साथ लोगों की अपने पास नकदी जमा रखने की अधिमानता भी मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करती है। मुद्रा की पूर्ति पर इन प्रभावों का संक्षेपण निम्नलिखित प्रमुख अनुपातों से किया जा सकता है।

करेंसी जमा अनुपातः लोगों द्वारा करेंसी में धारित मुद्रा और बैंक जमा के रूप में धारित मुद्रा के अनुपात को *करेंसी जमा अनुपात* (cdr) कहा जाता है अर्थात् cdr = CU/ DD. अगर कोई व्यक्ति 1 रु॰ आय प्राप्त करता है, तो वह अपने बैंक खाते में 1/(1+cdr) जमा करेगा तथा cdr/(1 + cdr) रु॰ अपने पास नकदी के रूप में रखेगा। इससे लोगों का तरलता अधिमान प्रतिबिंबित होता है। यह शुद्ध रूप में व्यावहारिक प्राचल है, जो अन्य बातों के अतिरिक्त व्यय संबंधी मौसम के स्वरूप पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, त्योहारों के मौसम में जब लोग अपनी जमा को इन मौसमों में होने वाले अतिरिक्त खर्चे के लिए नकदी में बदलते हैं, तो करेंसी जमा अनुपात (cdr) बढ़ जाता है।

आरक्षित जमा अनुपातः लोग अपने बैंक खाते में जो मुद्रा जमा करते हैं, उसका एक अंश आरक्षित मुद्रा के रूप में रखकर शेष राशि को बैंक विविध निवेश परियोजनाओं को कर्ज़ के रूप में देती है। आरक्षित मुद्रा में दो चीजें होती हैं– बैंकों में नकदी और व्यावसायिक बैंकों द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक के पास रखी जमा। व्यावसायिक बैंक अपनी कुल जमा का जो अनुपात आरक्षित निधियों के रूप में रखते हैं, उसे *आरक्षित निधि जमा अनुपात (rdr)* कहा जाता है।

आरक्षित निधि (rdr) रखना बैंकों के लिए महँगा होता है, क्योंकि वे इस राशि को ब्याज प्राप्त करने वाली परियोजनाओं में ऋण के रूप में निवेश कर सकते हैं। किंतु, रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया व्यावसायिक बैंकों से अपेक्षा करता है कि वे यह सुनिश्चित करें कि उनके पास सुरक्षित परिसंपत्ति का भाग है, जिससे वे खाताधारकों को उनके द्वारा माँग करने पर भुगतान कर सकें। भारतीय रिज़र्व बैंक व्यावसायिक बैंकों के पास लाभप्रद *आरक्षित जमा अनुपात (rdr)* को बनाए रखने के लिए

[1]कालावधि में M1 और M3 में अंतर का आकलन के लिए परिशिष्ट 3.2 को देखिए।

विविध नीति-साधनों का उपयोग करता है। पहला साधन *आरक्षित नकद अनुपात* है जिसके अनुसार व्यावसायिक बैंकों को भारतीय रिज़र्व बैंक के पास जमा अपनी राशि के एक अंश को रखना होता है। दूसरा साधन *सांविधिक तरलता अनुपात* है, बैंकों को निर्दिष्ट तरल परिसंपत्तियों के रूप में अपने कुल माँग और आवधिक जमा के दिये हुए अंश को बनाये रखना पड़ता है। इन अनुपातों के अतिरिक्त भारतीय रिज़र्व बैंक आरक्षित जमा अनुपात को नियंत्रित करने के लिए एक निश्चित ब्याज दर का प्रयोग करता है, जिसे *बैंक* दर कहते हैं। व्यावसायिक बैंक आरक्षित निधि की कमी की स्थिति में भारतीय रिज़र्व बैंक से इस दर पर कर्ज़ ले सकते हैं। ऊँची बैंक दर की स्थिति में भारतीय रिज़र्व बैंक से ऋण लेना महँगा पड़ता है, अत: इससे व्यावसायिक बैंकों को लाभप्रद आरक्षित जमा अनुपात रखने के लिए प्रोत्साहन मिलता है।

तालिका 3.1: **व्यावसायिक बैंक के तुलन पत्र का नमूना**

परिसंपत्ति (रु०)		*देयता (रु०)*	
रिज़र्व		जमा	100
कोष्ठ नकद राशि	15		
भारतीय रिज़र्व बैंक में जमा	5		
बैंक साख कर्ज़	30		
निवेश	50		
आरक्षित जमा अनुपात = 0.2			

व्यावसायिक बैंक

बैंक लोगों से जमा स्वीकार करते हैं तथा इस धन से ब्याज अर्जन करने वाली निवेश परियोजनाओं को उधार देते हैं। बैंक अपने जमाधारकों को उसकी जमा पर ब्याज प्रदान करता है। इस ब्याज दर को उधार देने पर 'ऋण दर' कहते हैं और जिस दर पर बैंक अपनी आरक्षित निधियाँ निवेशकों को ऋण के रूप में प्रदान करता है, उसे 'उधार लेने पर ऋण दर' कहते हैं। दोनो दरों के अंतर को 'कीमत-लागत अंतर' कहते हैं। यह बैंकों के द्वारा विनियोजित लाभ है। जमा मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं- माँग जमा, खाताधारकों की माँग पर बैंक द्वारा भुगतान योग्य जैसे - चालू और बचत खाता जमा और आवधिक जमा। जिसकी परिपक्वता की निर्धारित अवधि होती है, जैसे - मियादी जमा। बैंक मुख्यत: नकद जमा के रूप में ऋण प्रदान करता है। यह निजी निवेशकों और बैंकों को सरकारी प्रतिभूतियों में तथा अन्य अनुमोदित बंधपत्रों के दायरे में अल्पावधि ऋण प्रदान करता है। बैंक द्वारा किसी भी व्यक्ति की साख उसके वर्तमान परिसंपत्ति और संपार्श्विक (बैंक के पास ऋण की पुनर्वापसी के लिए रखी गई गिरवी) के द्वारा निर्धारित की जाती है।

उच्च शक्तिशाली मुद्रा: भारतीय रिज़र्व बैंक की देश की मौद्रिक प्राधिकरण की संपूर्ण देयता को *मौद्रिक आधार या उच्च शक्तिशाली मुद्रा कहते हैं।* इसमें करेंसी (आम जनता के साथ संचरण में नोट और करेंसी तथा व्यावसायिक बैंक की कोष्ठ नकदी राशि) तथा व्यावसायिक बैंक और भारत सरकार द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक में रखी गई जमा आते है। यदि कोई आम जनता भारतीय रिज़र्व बैंक को करेंसी नोट प्रस्तुत करती है, तो रिज़र्व बैंक को उस मुद्रा के मूल्य पर अंकित मूल्य की राशि के बराबर का भुगतान करना होता है। इसी तरह भारतीय रिज़र्व बैंक में जमा की गयी राशि

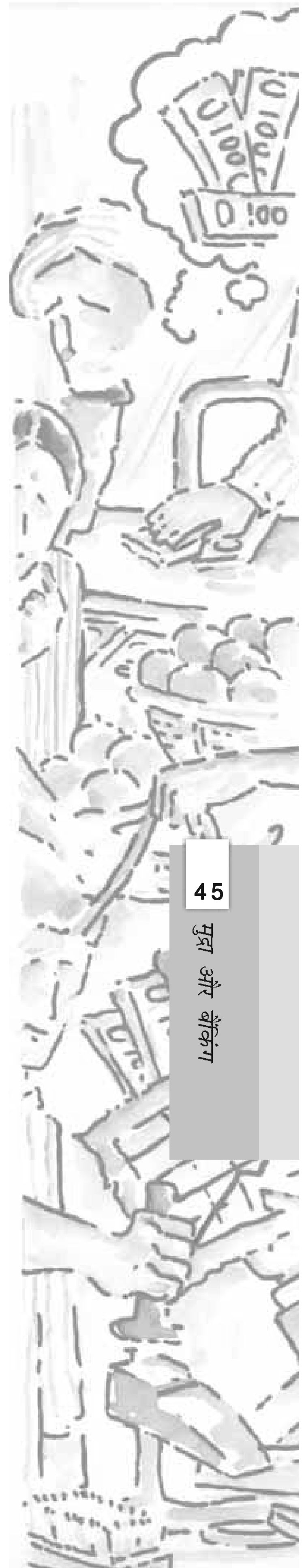

तालिका 3.2: भारतीय रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र का नमूना

परिसंपत्ति (स्रोत)-रु०		*दायित्व (उपयोग) रु०*	
सोना	10	करेंसी:	
विदेशी विनिमय	20	*लोगों के पास रखी गई करेंसी*	200
सरकारी प्रतिभूतियाँ (सरकार को ऋण)	230	*व्यावसायिक बैंक की कोष्ठ नकदी*	10
व्यावसायिक बैंक को ऋण	5	भारतीय रिज़र्व बैंक में व्यावसायिक बैंक की जमा राशि	40
		भारत सरकार द्वारा खजाना जमा	15
मौद्रिक आधार (स्रोत)	265	मौद्रिक आधार (उपयोग)	265

भी लौटाए जाने योग्य होती है, जब जमाधारी इसकी माँग करते हैं। इन मदों को दावा कहते हैं जो कि आम जनता, सरकार और बैंकों का रिज़र्व बैंक पर होता है। अत: इनको रिज़र्व बैंक के दायित्व के रूप में माना जाता है।

भारतीय रिज़र्व बैंक इन दायित्वों के बदले में परिसंपत्तियों का अधिग्रहण करता है। यदि हम एक सरल उदाहरण पर विचार करें, तो इस प्रक्रम को आसानी से समझा जा सकता है। माना कि भारतीय रिज़र्व बैंक 5 रु० के बराबर का सोना या डॉलर खरीदता है, तो इसे विदेशी विनिमय या सोने के लिए विक्रेताओं को नकद प्रदान करना होता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में मुद्रा 5 रु० से बढ़ती है, जो तुलन पत्र में *दायित्व* वाले मद के अंतर्गत रखी गई है। अर्जित परिसंपत्ति का मूल्य भी 5 रु० के बराबर होता है तथा यह *परिसंपत्ति* वाले कॉलम के तरफ तुलन पत्र में रखा जाता है। उसी तरह, भारतीय रिज़र्व बैंक सरकार से ऋण बंधपत्र और प्रतिभूतियाँ जारी करता है तथा बदले में सरकार करेंसी जारी करती है। इसी प्रकार[2], यह व्यावसायिक बैंकों को ऋण प्रदान करता है।

अब हम लोग मौद्रिक प्राधिकरण भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा मुद्रा निर्माण की प्रक्रिया पर विस्तार से बात करने के लिए तैयार हैं। मान लीजिए कि भारतीय रिज़र्व बैंक मुद्रा पूर्ति में वृद्धि करना चाहता है। निम्नलिखित उपाय से यह अर्थव्यवस्था में अति शक्तिशाली मुद्रा को प्रभावित करता है। मान लीजिए, भारतीय रिज़र्व बैंक कुछ परिसंपत्तियाँ खरीदता है, बाज़ार से बंधपत्र या सोने के रूप में जो H रु० मूल्य के बराबर है। इसके लिए भारतीय रिज़र्व बैंक खुद एक H रु० का चेक बंधपत्र विक्रेता के नाम निर्गमन करेगा। यह भी मान लिया कि इस अर्थव्यवस्था में नकद जमा अनुपात और आरक्षित जमा अनुपात का मूल्य क्रमश: 1 और 0.2 है। विक्रेता बैंक के अपने खाते में चेक भुनाता है तथा $\frac{H}{2}$ को अपने खाते में जमा करके $\frac{H}{2}$ को नकद के रूप में निकाल लेता है। इस प्रकार, लोगों द्वारा जमा की गई मुद्रा $\frac{H}{2}$ बढ़ जाती है तथा बैंक A का दायित्व $\frac{H}{2}$ बढ़ जाता है, क्योंकि लोगो द्वारा किए गये जमा में बढ़ोतरी होती है। लेकिन इसकी परिसंपत्ति इस चेक की उपस्थिति के कारण इसी राशि के बराबर बढ़ती है, जो कुछ नहीं होने के बाद भी भारतीय रिज़र्व बैंक से इस राशि के लिए दावा करती है। भारतीय रिज़र्व बैंक का दायित्व H बढ़ता है, जो बैंक A और उसके ग्राहक के दावे का कुल योग होता है। विक्रेता और बैंक के ग्राहक दोनों $\frac{H}{2}$ रु० के बराबर होते हैं। इस प्रकार, परिभाषा से उच्च शक्तिशाली मुद्रा H रु० के बराबर बढ़ती है।

[2]कालावधि के उपरांत मौद्रिक आधार के स्रोतों में परिवर्तन के आकलन के लिए परिशिष्ट 3.2 को देखिए।

प्रक्रिया यहाँ समाप्त नहीं होती है। बैंक A $\frac{0.2H}{2}$ रु॰ को अतिरिक्त जमा के रूप में अपने पास सुरक्षित रखता है और $\frac{(1-0.2)H}{2}$ रु॰ = $\frac{0.8H}{2}$ रु॰ को अन्य कर्ज़दारों[3] को ऋण के रूप में प्रदान करता है। कर्ज़दार इस ऋण का वास्तविक प्रयोग निवेशी परियोजनाओं में तथा कुछ पैसे का प्रयोग कारक अदायगी में करता है। माना कि उस परियोजना का एक कर्मचारी भुगतान प्राप्त करता है। कर्मचारी अपने पास नकदी के रूप में $\frac{0.8H}{4}$ रु॰ रखता है तथा बैंक B के अपने खाते में $\frac{0.8H}{4}$ रु॰ रखता है। बैंक B $\frac{0.64H}{4}$ रु॰ प्रदान करेगी। कोई इस पैसे को प्राप्त करता है तथा $\frac{0.64H}{8}$ रु॰ अपने पास नकद के रूप में रखता है तथा $\frac{0.64H}{8}$ रु॰ किसी दूसरे बैंक में रखता है। यह प्रक्रिया *लगातार* चलती रहती है।

अब हम लोग आगे की तालिका में देखते हैं कि किस प्रकार अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति क्रमशः बदलती है।

तालिका 3.3: **गुणक प्रक्रम**

	करेंसी	*जमा*	*मुद्रा की पूर्ति*
चक्र 1	$\frac{H}{2}$	$\frac{H}{2}$ (बैंक A)	H
चक्र 2	$\frac{0.8H}{4}$	$\frac{0.8H}{4}$ (बैंक B)	$\frac{0.8H}{2}$
चक्र 3	$\frac{0.64H}{8}$	$\frac{0.64H}{8}$ (बैंक C)	$\frac{0.64H}{4}$
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	इत्यादि

दूसरा कॉलम प्रत्येक चक्र में लोगों की करेंसी धारिता के मूल्य में वृद्धि को दर्शाता है। तीसरा कॉलम इसी तरह अर्थव्यवस्था में बैंक जमा में वृद्धि के मूल्य की माप करता है। अंतिम कॉलम में दोनों का कुल योग है, जो कि परिभाषा से प्रत्येक चक्र में अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि है (अनुमानतः मुद्रा का सरलतम और सबसे तरल माप नामतः M_1)। ध्यातव्य है कि अनुवर्ती चक्रों में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की मात्रा धीरे-धीरे घट रही है। अतः चक्रों की अधिक संख्या के बाद वृद्धि का आकार वास्तव में शून्य से अविभेद्य हो जाएगा और परवर्ती चक्रों के प्रभाव से मुद्रा पूर्ति के कुल परिमाण में व्यावहारिक रूप से कोई योगदान नहीं होगा। हम कहते हैं कि मुद्रा की पूर्ति पर चक्र के प्रभाव से *अभिसारी प्रक्रम* का प्रतिचित्रण होता है। मुद्रा पूर्ति में कुल वृद्धि ज्ञात करने के क्रम में हमें अंतिम कॉलम में अनंत ज्यामितीय शृंखलाओं[4] का योग अवश्य करना चाहिए, अर्थात्–

$$H + \frac{0.8H}{2} + \frac{0.64H}{4} + \ldots\ldots\infty$$

$$H\left\{1 + \left(\frac{0.8}{2}\right) + \left(\frac{0.8}{2}\right)^2 + \ldots\ldots\infty\right\} = \frac{H}{1-0.4} = \frac{5H}{3}$$

[3]अव्यक्त रूप से हम कल्पना करते हैं कि वर्तमान ऋण दर पर बैंक ऋण की माँग अनंत है अर्थात् बैंक जितना चाहे उतनी मात्रा में ऋण दे सकता है।

[4]इस तरह की शृंखलाओं पर विस्तृत चर्चा के लिए परिशिष्ट 3.1 को देखें।

प्रारंभ में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में इंजेक्ट की गई शक्तिशाली मुद्रा की मात्रा से कुल मुद्रा पूर्ति अधिक होती है। *मुद्रा गुणक* की परिभाषा हम अर्थव्यवस्था में मुद्रा के स्टॉक और शक्तिशाली मुद्रा के स्टॉक के अनुपात के रूप में करते हैं, नामतः $\frac{M}{H}$ स्पष्टतः इसका मूल्य 1 से अधिक है।

मुद्रा गुणक के मूल्य गणना करने के लिए हमें हमेशा चक्रीय प्रभाव का उपयोग नहीं करना चाहिए। यहाँ हमने इसका प्रयोग मुद्रा सृजन प्रक्रिया को प्रदर्शित करने के लिए किया। मुद्रा सृजन प्रक्रिया में व्यावसायिक बैंक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किंतु गुणक को व्युत्पन्न करने का अधिक सरल तरीका है। परिभाषा से, मुद्रा पूर्ति करेंसी और जमा का योग होता है–

$$M = CU + DD = (1 + cdr)\ DD$$

जहाँ, cdr = CU/DD सरलता के लिए, मान लीजिए कि भारतीय रिज़र्व बैंक में सरकार के खजाने में जमा शून्य है। उच्च शक्तिशाली मुद्रा जिसमें करेंसी शामिल है, लोगों के पास और व्यावसायिक बैंक के पास आरक्षित निधि के रूप में है जिसमें, कोष्ठ नकदी और भारतीय रिज़र्व बैंक के पास बैंक जमा शामिल हैं। इस प्रकार–

$$H = CU + R = cdr.DD + rdr.DD = (cdr + rdr)DD$$

अतः मुद्रा पूर्ति और उच्च शक्तिशाली मुद्रा का अनुपात

$$\frac{M}{H} = \frac{1 + cdr}{cdr + rdr} > 1, \text{ जैसाकि } rdr < 1$$

स्पष्ट रूप से, यह मुद्रा गुणक की माप है।

3.3.3 मुद्रा नीति के उपकरण और भारतीय रिज़र्व बैंक

इसकी उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्टॉक का कुल परिमाण उच्च शक्तिशाली मुद्रा के परिमाण से बहुत अधिक होता है। व्यावसायिक बैंक अपनी जमा का एक अंश कर्ज़ अथवा निवेश साख के रूप में प्रदान करके मुद्रा की इस अतिरिक्त मात्रा का सृजन करता है। यह सारणी 3.1 से भी स्पष्ट है कि देश के सभी व्यावसायिक बैंकों के द्वारा धारित जमा की कुल मात्रा उनकी आरक्षित निधि के कुल आकार से बहुत अधिक है। यदि देश के व्यावसायिक बैंकों के सभी खाताधारी अपनी जमा एक ही समय वापस ले लें, तो बैंकों के पास प्रत्येक खाताधारी की आवश्यकता की पूर्ति के पर्याप्त साधन नहीं होंगे और बैंक विफल हो जाएँगे।

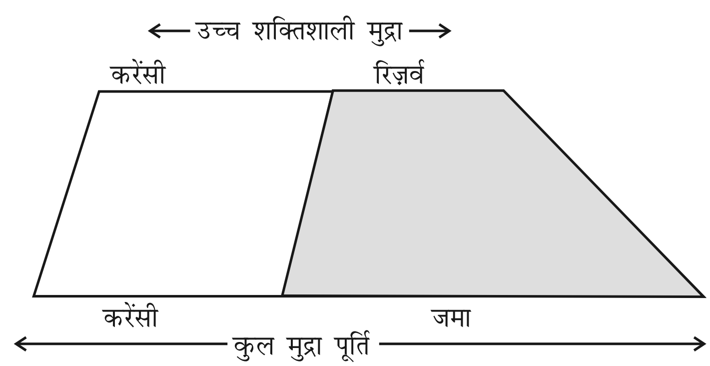

रेखाचित्र 3.2: *कुल मुद्रा पूर्ति के संबंध में उच्च शक्तिशाली मुद्रा*

अर्थव्यवस्था के हर जानकार व्यक्ति के लिए यह सामान्य जानकारी की बात है। *बैंक रन* (वह स्थिति जिस पर हर आदमी अपने बैंक खाते से बैंक की आरक्षित निधि के समाप्त होने के पूर्व मुद्रा निकासी करना चाहते हैं) की स्थिति में वे अपने बैंक की चूक की संभावना से भली-भाँति परिचित होते हैं, फिर भी वे बैंक जमा में अपनी मुद्रा क्यों रखते हैं?

भारतीय रिज़र्व बैंक यहाँ निर्णायक भूमिका निभाता है। उपर्युक्त प्रकार के किसी भी संकट की स्थिति में भारतीय रिज़र्व बैंक व्यावसायिक बैंकों का जमानतदार होता है और वह इन बैंकों की संपन्नता निश्चित करने के लिए ऋण प्रदान करता है। गारंटी की इस प्रणाली से व्यक्तिगत खाताधारकों को भरोसा मिलता है कि उनके बैंक संकट की स्थिति में उनके पैसे वापस अदा करने में सक्षम हैं और इसीलिए बैंक रन की बातों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुद्रा प्राधिकरण की इस भूमिका को *अंतिम ऋणदाता* के रूप में जाना जाता है।

व्यावसायिक बैंकों का बैंक के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त भारतीय रिज़र्व बैंक भारत सरकार और राज्य सरकार के बैंकर के रूप में भी कार्य करता है। यहाँ सामान्यत: यह जाना जाता है कि सरकार कभी-कभी बजटीय घाटे की स्थिति में अर्थात् जब सरकार अपनी अर्जित कर राजस्व से अपने व्यय (जैसे – सरकारी कर्मचारियों का वेतन, प्रतिरक्षा उपकरण की खरीद इत्यादि) की पूर्ति नहीं कर पाती है; मुद्रा छापती है। यद्यपि सरकार के पास इस तरह से करेंसी जारी करने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं है। सरकार ट्रेज़री बिल अथवा सरकारी प्रतिभूतियों को भारतीय रिज़र्व बैंक को बेचकर उधार लेती है, जो बदले में सरकार को करेंसी जारी करता है। सरकार तब इस मुद्रा से अपने व्यय को पूरा करती है। इस प्रकार, अंत में मुद्रा आम जनता के हाथ में आ जाती है (वेतन के रूप में अथवा प्रतिरक्षा की मदों की बिक्री से प्राप्त आय इत्यादि, के रूप) एवं मुद्रा पूर्ति का हिस्सा बन जाती है। इस प्रकार से, सरकार द्वारा बजटीय घाटे की पूर्ति के लिए वित्त प्रबंधन को केंद्रीय बैंक ऋणग्रहण के माध्यम से *घाटे का वित्त प्रबंधन* कहते हैं।

यद्यपि भारतीय रिज़र्व बैंक की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति और साख सृजन के नियंत्रक के रूप में है। अर्थव्यवस्था के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त मौद्रिक नीति का संचालन करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक एक स्वतंत्र प्राधिकरण है—वह अर्थव्यवस्था में उच्च शक्तिशाली मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि अथवा कमी करता है तथा व्यावसायिक बैंकों के निवेशकों को कर्ज़ अथवा साख प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित या निरुत्साहित करता है। भारतीय रिज़र्व बैंक मौद्रिक नीति के संचालन के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग करता है, वे निम्नलिखित हैं:

खुली बाज़ार कार्रवाई: भारतीय रिज़र्व बैंक अर्थव्यवस्था में उच्च शक्तिशाली मुद्रा के स्टॉक में वृद्धि (अथवा कमी) करने के लिए बोली लगाकर जनसाधारण से सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय करता है अथवा (बेचता है।) मान लीजिए कि भारतीय रिज़र्व बैंक 100 रु॰ मूल्य की सरकारी प्रतिभूतियाँ बंधपत्र बाज़ार से खरीदता है। वह 100 रु॰ मूल्य का चेक बंधपत्र विक्रेता को जारी करेगा जैसा कि यदि एक व्यक्ति या संस्था इस चेक को भारतीय रिजर्व बैंक को देती है तो भारतीय रिजर्व बैंक निश्चित रूप से उस व्यक्ति या संस्था को इसके समतुल्य राशि प्रदान करेगी। विक्रेता अपने बैंक में चेक को जमा करेगा, जो विक्रेता के खाते में 100 रु॰ के शेष के साथ क्रेडिट हो जाएगा। यह जमा बैंक में 100 रु॰ के रूप में बढ़ेगा, जो कि बैंक का उत्तरदायित्व हो जायेगा। यद्यपि इसकी परिसंपत्तियों में भी इस चेक के अधिकार से 100 रु॰ वृद्धि होगी। यह भारतीय रिज़र्व बैंक के ऊपर एक दावा है। बैंक इस चेक को भारतीय रिज़र्व बैंक में जमा करेगा जो कि बदले में भारतीय रिज़र्व बैंक में उस बैंक के खाते में क्रेडिट हो जाएगा। भारतीय रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र में परिवर्तन को निम्नलिखित तालिका 3.4 में दर्शाया गया है।

भारतीय रिज़र्व बैंक की कुल देयता की परिभाषा से अर्थव्यवस्था में उच्च शक्तिशाली मुद्रा की

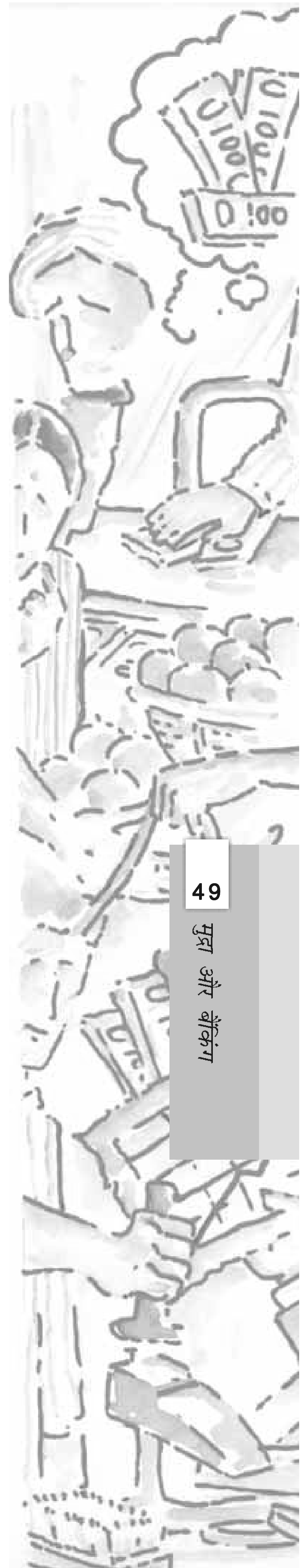

तालिका 3.4: **भारतीय रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र में खुली बाज़ार खरीद के प्रभाव**

परिसंपत्तियाँ (स्रोत)-रु॰		*देयता (प्रयोग)-रु॰*	
अन्य सभी परिसंपत्तियाँ	0	करेंसी	0
सरकारी प्रतिभूतियाँ	+100	भारतीय रिज़र्व बैंक में व्यावसायिक बैंकों का जमा	+100
मौद्रिक आधार (स्रोत)	+100	मौद्रिक आधार (प्रयोग)	+100

पूर्ति 100 रु॰ बढ़ गई। यदि भारतीय रिज़र्व बैंक शक्तिशाली मुद्रा की पूर्ति में कटौती करना चाहता है, तो उसे अपने पास की सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री खुले बाज़ार में करनी होगी ताकि उसके विपरीत उसका मौद्रिक आधार कम हो।

बैंक दर नीति: जैसाकि पूर्वोलिखित है कि भारतीय रिज़र्व बैंक, व्यावसायिक बैंकों की आरक्षित जमा को बैंक दर के मूल्य में समंजन करके प्रभावित कर सकता है। बैंक दर ब्याज की दर है जो व्यावसायिक बैंक भारतीय रिज़र्व बैंक को आरक्षित निधि की कमी की स्थिति में रिज़र्व बैंक से प्राप्त ऋण पर ब्याज अदा करता है। निम्न (अथवा ऊँची) बैंक दर बैंकों को अपनी जमा का अपेक्षाकृत अल्प अनुपात आरक्षित निधि के रूप में रखने के लिए प्रोत्साहित करती है, क्योंकि भारतीय रिज़र्व बैंक से उधार लेना अब पहले की अपेक्षा अधिक महँगा होगा। फलत: बैंक अपने संसाधनों का अपेक्षाकृत बड़ा अनुपात ऋण ग्रहणकर्ताओं अथवा निवेशकों को कर्ज़ प्रदान करने के लिए उपयोग करेगा और उससे गौण मुद्रा सृजन की सहायता (या प्रतिरोध) के माध्यम से गुणक प्रक्रम में वृद्धि (कमी) होगी। संक्षेप में, निम्न (अथवा उच्च) बैंक दर से आरक्षित जमा अनुपात में कटौती (अथवा वृद्धि) होती है और इससे मुद्रा गुणक के मूल्य में वृद्धि (अथवा कमी) होती है, जो $(1 + cdr)/(cdr + rdr)$ है। अत: उच्च शक्तिशाली मुद्रा की दी हुई मात्रा H के लिए कुल मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होगी।

आरक्षित आवश्यकताओं में अंतर करके: नकद आरक्षित अनुपात और वैधानिक तरलता अनुपात का कार्य आरक्षित जमा अनुपात के मार्ग से होता है। नकद आरक्षित अनुपात और वैधानिक तरलता अनुपात के उच्च और निम्न मूल्य से आरक्षित जमा अनुपात के मूल्य में (वृद्धि) अथवा (कमी) करने में मदद मिलती है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में एक समान रीति से मुद्रा गुणक और मुद्रा की पूर्ति के मूल्य में कमी या वृद्धि होती है।

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा स्थिरीकरण: भारतीय रिज़र्व बैंक प्राय: अर्थव्यवस्था में बाहरी आघातों से मुद्रा के स्टॉक स्थिरीकरण करने के लिए मुद्रा सृजन करने में अपने उपकरणों का उपयोग करता है। मान लीजिए कि भविष्य में विकास की आशा से पूरे संसार के भारतीय निवेशक भारतीय बंधपत्रों में अपने निवेश में वृद्धि करते हैं, जो इन परिस्थितियों में लगभग प्रतिफल की ऊँची दर देने वाला है। वे विदेशी करेंसी से इन बंधपत्रों का क्रय करेंगे। चूँकि कोई घरेलू बाज़ार में विदेशी करेंसी से वस्तुएँ नहीं खरीद सकता, इसलिए जो व्यक्ति या वित्तीय संस्था इन बंधपत्रों को विदेशी निवेशकों को बेचते हैं वे अपने विदेशी करेंसी की धारिता का व्यावसायिक बैंक में रु॰ में विनिमय करते हैं। बैंक इस विदेशी करेंसी को भारतीय रिज़र्व बैंक में प्रस्तुत करते हैं। इस पूरे संव्यवहार में किस प्रकार का समंजन होता है? व्यावसायिक बैंकों की कुल आरक्षित निधि और जमा अपरिवर्तित रहती है (वह अपने कोष्ठ नकदी का उपयोग करके विक्रेता से विदेशी करेंसी खरीदता है, जिससे कोष्ठ नकदी घट जाती है। लेकिन भारतीय रिज़र्व बैंक में बैंक की जमा एक समतुल्य मात्रा, इसके कुल आरक्षित निधि को छोड़कर, में बढ़ोतरी होती है)। किंतु, परिसंपत्तियों और भारतीय रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र में दायित्वों में वृद्धि होगी। भारतीय रिज़र्व

बैंक की विदेशी विनिमय धारिता में बढ़ोतरी होती है। दूसरी ओर, भारतीय रिज़र्व बैंक में व्यावसायिक बैंकों की जमा भी समान मात्रा में बढ़ती है। लेकिन उससे उच्च शक्तिशाली मुद्रा के स्टॉक में ही वृद्धि होती है, जो कि परिभाषा से भारतीय रिज़र्व बैंक के कुल दायित्व के बराबर होता है। मुद्रा गुणक की कार्रवाई से अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होगी।

मुद्रा की बढ़ी हुई पूर्ति अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए हमेशा अच्छी नहीं होगी। यदि अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा अपरिवर्तित रहती है, तो अतिरिक्त मुद्रा से सभी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होगी। लोगों के पास अपेक्षाकृत अधिक मुद्रा होगी, जिससे वे वस्तु बाज़ार में एक ही प्रकार के वस्तुओं के पुराने स्टॉक को खरीदने के लिए प्रतिस्पर्धा करेंगे। चूँकि निर्गत की एक ही प्रकार की पूर्व मात्रा के लिए अपेक्षाकृत अधिक मात्राएँ होती है, इसलिए इस प्रक्रम का अंत प्रत्येक वस्तु की कीमतों में बोली लगाने से होता है। इससे सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि होती है, जिसे *स्फीति* कहते हैं।

प्राय: भारतीय रिज़र्व बैंक इस प्रकार के परिणाम को रोकने के लिए अपने उपकरणों से हस्तक्षेप करता है। उपर्युक्त उदाहरण में अर्थव्यवस्था में विदेशी विनिमय अंतरप्रवाह की मात्रा के बराबर मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री खुले बाज़ार में करती है। इस प्रकार, शक्तिशाली मुद्रा का स्टॉक और कुल मुद्रा पूर्ति अपरिवर्तित रहती है। अत: इससे अर्थव्यवस्था को प्रतिकूल बाह्य आघातों के विरुद्ध स्थिर रखा जाता है। भारतीय रिज़र्व बैंक की इस कार्रवाई को *स्थिरीकरण* कहते हैं।

अत: मुद्रा पूर्ति एक महत्त्वपूर्ण समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्त है। किसी अर्थव्यवस्था के निर्गत, कीमत स्तर और ब्याज की साम्य दर के मूल्यों पर इसके कुल प्रभाव का बहुत महत्त्व है। इन मुद्दों पर चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

सारांश

मुद्रा के माध्यम के बिना वस्तुओं के विनिमय को वस्तु विनिमय कहते हैं। आवश्यकताओं के उभय संयोग के अभाव में यह अप्रचलित हो गया। मुद्रा साधारणत: विनिमय के स्वीकार्य माध्यम के कार्य से विनिमय को सुगम बनाती है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में लोग मुख्य रूप से दो उद्देश्यों से मुद्रा धारण करते हैं– अंतरण उद्देश्य और सट्टा उद्देश्य। इसके विपरीत मुद्रा की पूर्ति में करेंसी नोट और सिक्के, व्यावसायिक बैंकों द्वारा रखी गई माँग और आवधिक जमा आदि आते हैं। इसका वर्गीकरण संकुचित और व्यापक मुद्रा के रूप में तरलता के घटते हुए क्रम के अनुसार किया जाता है। भारत में मुद्रा की पूर्ति का नियमन भारतीय रिज़र्व बैंक करता है, जो कि देश के मौद्रिक प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों के लिए लोगों के विभिन्न कार्यकलाप, देश के व्यावसायिक बैंक और भारतीय रिज़र्व बैंक उत्तरदायी हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक उच्च शक्तिशाली मुद्रा के स्टॉक ब्याज दर और व्यावसायिक बैंकों की रिज़र्व आवश्यकताओं को नियंत्रित करके मुद्रा की पूर्ति को नियंत्रित करता है। यह बाह्य आघातों से अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति का स्थिरीकरण करता है।

मूल संकल्पनाएँ

वस्तु विनिमय	आवश्यकताओं का दुहरा संपातन
मुद्रा	विनिमय माध्यम
लेखा की इकाई	संचय मूल्य
व्यवहार माँग	सट्टा माँग
बंधपत्र	वर्तमान मूल्य
ब्याज दर	पूँजीगत लाभ अथवा हानि

तरलता पाश	कागज़ी मुद्रा
वैधानिक पत्र	संकुचित मुद्रा
व्यापक मुद्रा	समस्त मौद्रिक संसाधन
करेंसी जमा अनुपात	आरक्षित जमा अनुपात
उच्च शक्तिशाली मुद्रा	मुद्रा गुणक
अंतिम ऋणदाता	केंद्रीय बैंक द्वारा उधार लेकर घाटे का वित्त प्रबंधन
खुली बाज़ार कार्रवाई	बैंक दर
नकद आरक्षित अनुपात	स्थिरीकरण
वैधानिक तरलता अनुपात	

अभ्यास

1. वस्तु विनिमय प्रणाली क्या है? इसकी क्या कमियाँ हैं?
2. मुद्रा के प्रमुख कार्य क्या-क्या हैं? मुद्रा किस प्रकार वस्तु विनिमय प्रणाली की कमियों को दूर करता है?
3. संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग क्या है? किसी निर्धारित समयावधि में संव्यवहार मूल्य से यह किस प्रकार संबंधित है?
4. मान लीजिए कि एक बंधपत्र दो वर्षों के बाद 500 रु० के वादे का वहन करता है, तत्काल कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं होता है। यदि ब्याज दर 5% वार्षिक है, तो बंधपत्र की कीमत क्या होगी?
5. मुद्रा की सट्टा माँग और ब्याज की दर में विलोम संबंध क्यों होता है?
6. तरलता पाश क्या है?
7. भारत में मुद्रा पूर्ति की वैकल्पिक परिभाषा क्या है?
8. वैधानिक पत्र क्या है? कागज़ी मुद्रा क्या है?
9. उच्च शक्तिशाली मुद्रा क्या है?
10. व्यावसायिक बैंक के कार्यों का वर्णन कीजिए।
11. मुद्रा गुणक क्या है? इसका मूल्य आप कैसे निर्धारित करेंगे? मुद्रा गुणक के मूल्य के निर्धारण में किस अनुपातों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है?
12. भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति के कौन-कौन से उपकरण हैं? बाह्य आघातों के विरुद्ध भारतीय रिज़र्व बैंक किस प्रकार मुद्रा की पूर्ति को स्थिर करता है?
13. क्या आप ऐसा मानते हैं कि अर्थव्यवस्था में व्यावसायिक बैंक ही 'मुद्रा का निर्माण करते हैं?'
14. भारतीय रिज़र्व बैंक की किस भूमिका को अंतिम ऋणदाता कहा जाता है?

सुझावात्मक पठन

डोर्न बुश आर. और एस. फिशर 1990, *मैक्रोइकोनॉमिक्स* (पाँचवा संस्करण) पृष्ठ 345-427, मैक्ग्राहिल, पेरिस।

ब्रेनसन डब्ल्यू. एच. 1992, *मैक्रोइकोनॉमिक थ्योरी एंड पॉलिसी* (छठा संस्करण) पृष्ठ 243-280, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली।

सिकदर एस., 2006, *प्रिंसिपल ऑफ मैक्रोइकोनॉमिक्स,* पृष्ठ 77 - 89, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।

परिशिष्ट 3.1

अनंत ज्यामितीय शृंखलाओं का योग

हम निम्नलिखित रूप से एक अनंत ज्यामितीय शृंखलाओं का योग ज्ञात करना चाहते हैं :

$S = a + a.r + a.r^2 + a.r^3 + \cdots + a.r^n \cdots \infty$

जहाँ a और r वास्तविक संख्याएँ हैं और $0 < r < 1$ है। योग निकालने के लिए उपर्युक्त समीकरण को r से गुणा कीजिए।

$r.S = a.r + a.r^2 + a.r^3 + \cdots + a.r^{n+1} \cdots \infty$

दूसरे समीकरण को प्रथम से घटा दीजिए

$$S - r.S = a$$

अथवा $$(1 - r)S = a$$

जिससे प्राप्त होता है $$S = \frac{a}{1-r}$$

मुद्रा गुणक की व्युत्पत्ति के लिए प्रयुक्त उदाहरण में $a = 1$ और $r = 0.4$ अत: अनंत शृंखलाओं का मूल्य है–

$$\frac{1}{1-0.4} = \frac{5}{3}$$

परिशिष्ट 3.2

भारत में मुद्रा की पूर्ति

तालिका 3.5: M_1 और M_3 में एक समयावधि परिवर्तन
(करोड़ रु॰)

वर्ष	$M1$	$M3$
1989–90	81,060	2,30,950
1990–91	92,892	2,65,828
1991–92	1,14,406	3,17,049
1992–93	1,24,066	3,64,016
1993–94	1,50,778	4,31,084
1994–95	1,92,257	5,27,496
1995–96	2,14,844	5,99,191
1996–97	2,40,615	6,96,012
1997–98	2,67,844	8,21,332
1998–99	3,09,128	9,81,020
1999–00	3,41,796	11,24,174
2000–01	3,79,450	13,13,220
2001–02	4,22,843	14,98,355
2002–03	4,72,827	17,25,222

स्रोत : सिकदर, एस॰ 2006. *प्रिंसिपल्स ऑफ मैक्रोइकोनॉमिक्स,* ओ.यू.पी. (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), नयी दिल्ली।
दोनों कॉलमों के मूल्यों में अंतर व्यावसायिक बैंकों द्वारा रखी गई आवधिक जमा पर आरोप्य है।

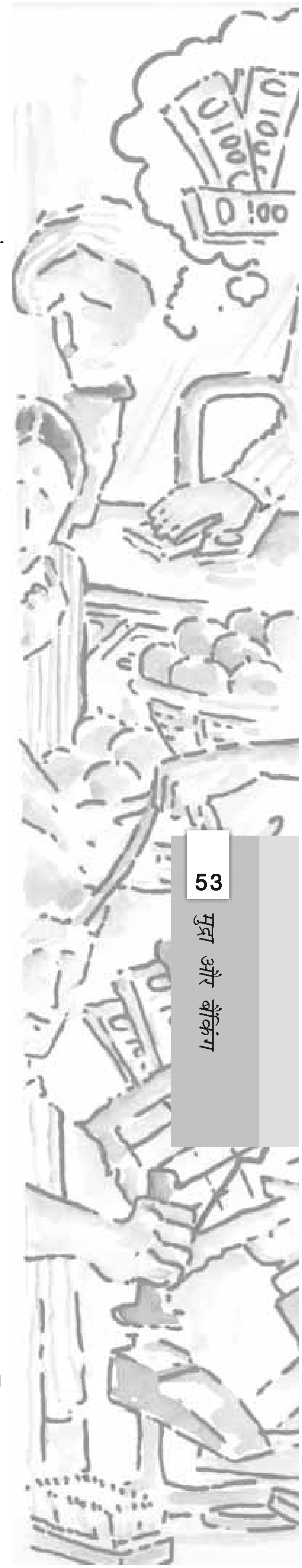

तालिका 3.6: **एक समयावधि में मौद्रिक आधार के घटकों में परिवर्तन के स्रोत**

वर्ष	*प्रतिशत में परिवर्तन*		
	भारत सरकार को ऋण	*बैंकों को ऋण*	*विदेशी परिसंपत्तियाँ*
1984–90	105.50	13.60	7.60
1991–92	44.00	–34.00	92.50
1992–93	38.80	32.72	33.30
1993–94	3.10	14.90	103.90
1994–95	7.10	26.30	76.10
1995–96	79.30	34.90	–2.50
1996–97	50.10	–275.40	366.90
1997–98	41.80	7.70	80.30
1998–99	52.40	30.80	66.60
1999–00	–20.20	31.00	131.80
2000–01	24.70	–25.50	137.50
2001–02	1.70	–27.70	193.50

स्रोत : सिकदर, एस॰ 2006. प्रिंसिपल्स ऑफ मैक्रोइकोनॉमिक्स, ओ॰यू॰पी॰ (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), नयी दिल्ली।

ध्यातव्य है कि जब कभी भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी परिसंपत्तियों के अंतर्प्रवाह में वृद्धि हुई, तो भारतीय रिज़र्व बैंक ने स्थिरीकरण के हिस्से के रूप में भारत सरकार और व्यावसायिक बैंकों के घरेलू साख को सख्त कर दिया है।

अध्याय 4

आय निर्धारण

अब तक हमने राष्ट्रीय आय, कीमत स्तर, ब्याज की दर इत्यादि के मूल्यों को नियंत्रित करने वाली शक्तियों का अन्वेषण किये बिना ही एक तदर्थ रूप से इनके संबंध में चर्चा की है। समष्टि अर्थशास्त्र का मौलिक उद्देश्य इन परिवर्तों के मूल्यों को निर्धारित करने के प्रक्रमों का वर्णन करने में सक्षम सैद्धांतिक उपकरणों अर्थात मॉडलों का विकास करना है। विशेष तौर पर मॉडलों के माध्यम से कुछ प्रश्नों की सैद्धांतिक व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है, जैसे–अर्थव्यवस्था में धीमी संवृद्धि की अवधि अथवा मंदी अथवा कीमत स्तर में वृद्धि या बेरोजगारी में वृद्धि आदि के क्या कारण हैं। एक ही समय इन सभी परिवर्तों के संबंध में बताना कठिन है। अत: जब हम किसी परिवर्त विशेष के निर्धारण पर ध्यान केंद्रित करें, तो हमें अन्य सभी परिवर्तों के मूल्यों को स्थिर रखना चाहिए। यह प्राय: किसी भी सैद्धांतिक अभ्यास का प्ररूपी रूढ़ीकरण है, जिसे *सेटेरिस पारिबस (Ceteris Paribus)* की मान्यता कहते हैं, जिसका शब्दिक अर्थ है 'यदि अन्य बातें समान रहें'। आप निम्नलिखित प्रकार से इस प्रक्रिया पर विचार कर सकते हैं: दो समीकरणों से दो परिवर्तों x और y का मूल्य निकालने के लिए, हम प्रथम समीकरण में x का मूल्य y के पदों में लिखते हैं और इस मूल्य को दूसरे समीकरण में प्रतिस्थापित कर पूर्ण हल प्राप्त करते हैं। इसी विधि का प्रयोग हम समष्टि अर्थशास्त्र में भी करते हैं। इस अध्याय में हम अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु की निर्धारित कीमत तथा नियत ब्याज दर के बिना राष्ट्रीय आय के निर्धारण का अध्ययन करेंगे।

4.1 प्रत्याशित और यथार्थ

राष्ट्रीय आय लेखांकन वाले अध्याय में हम उपभोग, निवेश अथवा किसी अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तुओं व सेवाओं का कुल निर्गत (सकल घरेलू उत्पाद) के संबंध में अध्ययन कर चुके हैं। इन पदों के दो अर्थ होते हैं। *अध्याय-2* में इनका प्रयोग लेखांकन के अर्थ में हुआ है–जिससे किसी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत एक दिए हुए वर्ष में उत्पादन गतिविधियों की माप करने से इन मदों का वास्तविक मूल्य प्राप्त होता है। इन वास्तविक अथवा लेखांकन मूल्यों को, हम इन मदों का यथार्थ माप कहते हैं।

तथापि इन पदों का प्रयोग भिन्न अर्थों में किया जा सकता है। उपभोग से यह

पता नहीं चल सकता कि वास्तव में किसी निश्चित वर्ष में लोगों ने कितना उपभोग किया, बल्कि उस अवधि में उन्होंने उपभोग की कितनी मात्रा की योजना बनायी। इसी तरह, निवेश का अर्थ हो सकता है कि उत्पादक ने अपनी माल-सूची में कितनी मात्रा में वृद्धि की योजना बनायी है। यह मात्रा उस मात्रा से भिन्न भी हो सकती है, जितना कि उत्पादन वह अंतिम रूप से कर पाती है। मान लीजिए कि उत्पादक वर्ष के अंत तक अपने भंडार में 100 रु० मूल्य की वस्तु जोड़ने की योजना बनाता है। अतः उस वर्ष में उसका नियोजित निवेश 100 रु० है। किंतु बाज़ार में उसकी वस्तुओं की माँग में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण उसकी विक्रय मात्रा में उस परिमाण से अधिक वृद्धि होती है, जितना कि उसने बेचने की योजना बनाई थी। इस अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिए उसे अपने भंडार से 30 रु० मूल्य की वस्तु बेचनी पड़ती है। अतः वर्ष के अंत में उसकी माल-सूची में केवल (100 – 30) रु० = 70 रु० की वृद्धि होती है। उसका नियोजित निवेश 100 रु० है, जबकि उसका यथार्थ निवेश केवल 70 रु० है। इन परिवर्तो-उपभोग, निवेश अथवा अंतिम वस्तुओं के निर्गत के नियोजित मूल्य को हम उनकी **प्रत्याशित** माप कहते हैं।

अर्थव्यवस्था के सैद्धांतिक मॉडल में इन परिवर्तों के प्रत्याशित मूल्य से हमारा प्राथमिक सरोकार होना चाहिए। "यदि कोई यह पूर्वानुमान करना चाहता है कि अंतिम वस्तु, निर्गत अथवा सकल घरेलू उत्पाद का संतुलन मूल्य क्या होगा, तो उसके लिए यह जानना महत्त्वपूर्ण होगा कि अंतिम वस्तुओं की कितनी मात्रा की लोगों ने माँग अथवा पूर्ति करने की योजना बनायी है।" अतः हमें उपभोग, निवेश अथवा अर्थव्यवस्था के समस्त निर्गत के प्रत्याशित मूल्यों के निर्धारकों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

प्रत्याशित उपभोग: नियोजित उपभोग किस पर निर्भर करता है? लोग अपनी आय का एक भाग उपभोग पर व्यय करते हैं तथा शेष की बचत करते हैं। मान लीजिए, आपकी आय 100 रु० बढ़ जाती है। आप इस पूरी अतिरिक्त आय को खर्च नहीं करेंगे बल्कि इसके कुछ भाग, को मान लीजिए 20% आप बचा कर रखेंगे। जिसे आप बचत के रूप में उस अवधि के लिए रखते हैं, जब आपकी आय बंद हो जाती है अथवा भविष्य में अधिक व्यय का सामना करना पड़ता है। भिन्न-भिन्न लोग अपनी अतिरिक्त आय के भिन्न-भिन्न भाग की बचत करने की योजना बनाते हैं (धनी लोग गरीबों की तुलना में अपनी आय के अधिक अनुपात की बचत करते हैं) और यदि इनका औसत निकालें तो हमें एक ऐसा अंश प्राप्त होगा, जिससे यह ज्ञात होगा कि लोग संपूर्ण रूप से अर्थव्यवस्था की कुल अतिरिक्त आय का कितना अनुपात बचाना चाहते हैं। इस अंश को हम *सीमांत बचत प्रवृत्ति* कहते हैं। इससे किसी अर्थव्यवस्था की कुल अतिरिक्त आय में उस अर्थव्यवस्था की कुल अतिरिक्त नियोजित बचतों का अनुपात प्राप्त होता है। चूँकि उपभोग बचतों का पूरक होता है (अर्थव्यवस्था की अतिरिक्त आय या तो अतिरिक्त बचत होती है अथवा लोगों द्वारा अतिरिक्त उपभोग के रूप में प्रयोग होती है)। यदि हम सीमांत बचत प्रवृत्ति को 1 में से घटा दें, तो हमें *सीमांत उपभोग प्रवृत्ति* प्राप्त होती है। यह कुल अतिरिक्त आय का वह अंश है, जो कि लोग उपभोग में प्रयोग करते हैं। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था की *सीमांत उपभोग प्रवृत्ति* c है, जहाँ $0 < c < 1$ है। यदि अर्थव्यवस्था की कुल आय में 0 से Y तक वृद्धि हो जाती है, तो अर्थव्यवस्था का कुल उपभोग होगा–

$$C = c\,(Y - 0) = c.Y$$

किंतु स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं होता। हमने यहाँ कुछ भूल की है। यदि अर्थव्यवस्था की आय किसी नियत वर्ष में शून्य हो, तो उपर्युक्त समीकरण बताता है कि अर्थव्यवस्था पूरे वर्ष कंगाल

बनी रहेगी, जो कि निःसंदेह एक अच्छा विचार नहीं है। यदि आपकी आय किसी नियत अवधि में शून्य है, तो आप जीवनयापन के एक निश्चित उपभोग पर अपनी पूर्व बचत को खर्च करते हैं। अतः हमें उपर्युक्त समीकरण में अर्थव्यवस्था के उपभोग के न्यूनतम अथवा जीवन निर्वाह स्तर को अवश्य जोड़ना चाहिए। जो होगा–

$$C = \bar{C} + c.Y \qquad (4.1)$$

जहाँ $\bar{C} > 0$ न्यूनतम उपभोग स्तर है और हमारे मॉडल में दिया हुआ या बहिर्जात मद है, जिसे स्थिर माना जाता है। समीकरण बताता है कि जब अर्थव्यवस्था की आय शून्य से अधिक होती है, तो अर्थव्यवस्था इस अतिरिक्त आय का c अनुपात का प्रयोग अपने उपभोग में न्यूनतम स्तर से वृद्धि करने में करती है।

प्रत्याशित निवेशः निवेश को भौतिक पूँजी स्टॉक (जैसे कि मशीन, भवन, सड़क इत्यादि, अर्थात् ऐसी कोई भी चीज़ जिनसे भविष्य में अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता में वृद्धि हो) में वृद्धि और उत्पादक की माल-सूची (तैयार माल का स्टॉक) में परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है। ध्यान दें कि निवेश वस्तुएँ (जैसे-मशीन) भी अंतिम वस्तुओं का भाग हैं। ये कच्चे माल की तरह मध्यवर्ती वस्तुएँ नहीं हैं। किसी दिए हुए वर्ष में मशीनों का जो उत्पादन होता है, उनका प्रयोग उसी वर्ष अन्य वस्तुओं के उत्पादन में नहीं होता है बल्कि कई वर्षों तक उनकी सेवाएँ ली जाती हैं।

उत्पादकों का निवेश संबंधी निर्णय, जैसे कि नयी मशीनों की खरीद, अधिकांशतः ब्याज की बाज़ार दर पर निर्भर करता है। किंतु सरलता की दृष्टि से हम यह मान लेते हैं कि फर्म हर वर्ष उसी मात्रा में निवेश करने की योजना बनाती है। प्रत्याशित निवेश माँग को हम इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$I = \bar{I} \qquad (4.2)$$

जहाँ, $\bar{I}$ धनात्मक स्थिरांक है। $\bar{I}$ दिए हुए वर्ष में अर्थव्यवस्था में स्वायत्त (दिया हुआ अथवा बहिर्जात) निवेश को प्रदर्शित करता है।

अंतिम वस्तुओं के लिए प्रत्याशित समस्त माँगः सरकार रहित अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु की प्रत्याशित समस्त माँग ऐसी वस्तुओं पर किये गए कुल प्रत्याशित उपभोग व्यय और प्रत्याशित निवेश व्यय का योग होती है, अर्थात् $AD = C + I$ । समीकरण 4.1 और 4.2 में C और I के मूल्यों को प्रतिस्थापित करने पर अंतिम वस्तुओं की समस्त माँग को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$AD = \bar{C} + \bar{I} + c.Y$$

यदि अंतिम वस्तु बाज़ार संतुलन में हो, तो इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{C} + \bar{I} + c.Y$$

जहाँ Y अंतिम वस्तु की प्रत्याशित अथवा नियोजित निर्गत है। इस समीकरण को दो स्वायत्त पदों $\bar{C}$ और $\bar{I}$ को जोड़कर पुनः इस प्रकार सरल किया जा सकता है:

$$Y = \bar{A} + c.Y \qquad (4.3)$$

जहाँ $\bar{A} = \bar{C} + \bar{I}$ अर्थव्यवस्था का कुल स्वायत्त व्यय है। वास्तव में स्वायत्त व्यय के ये दोनों घटक भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं और अर्थव्यवस्था के जीवन निर्वाह उपभोग स्तर को प्रदर्शित करने वाला $\bar{C}$, प्रायः स्थिर ही रहता है। किंतु $\bar{I}$ में समय-समय पर उतार-चढ़ाव देखा जाता है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है, समीकरण 4.3 की बायीं ओर Y पद अंतिम वस्तुओं की प्रत्याशित निर्गत अथवा नियोजित पूर्ति को प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर, दायीं ओर की अभिव्यक्ति से अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु की प्रत्याशित अथवा नियोजित समस्त माँग प्रदर्शित होती है। जब अंतिम वस्तु बाज़ार और अर्थव्यवस्था संतुलन की स्थिति में होती हैं, तभी प्रत्याशित पूर्ति प्रत्याशित माँग के बराबर होती है। अतः समीकरण 4.3 को अध्याय 2 के तादात्म्य का लेखांकन से भ्रमित नहीं करना चाहिए, जो कि यह बतलाता है कि कुल निर्गत का यथार्थ मूल्य *हमेशा* अर्थव्यवस्था के यथार्थ उपभोग और यथार्थ निवेश के कुल योग के बराबर होता है। यदि अंतिम वस्तु के निर्गत से, जो कि उत्पादक किसी नियत वर्ष में उत्पादन करने का नियोजन करता है अंतिम वस्तु की प्रत्याशित माँग कम हो, तो समीकरण 4.3 सही नहीं होगा। गोदाम में स्टॉक का अंबार लगा रहेगा, जिसे *माल-सूची* का *अनभिप्रेत संचय* कहा जाएगा। यह नियोजित अथवा प्रत्याशित निवेश का अंश नहीं है, किंतु निश्चित रूप से यह वर्ष के अंत में माल-सूची में हुई वास्तविक वृद्धि का अंश है अथवा दूसरे शब्दों में, एक यथार्थ निवेश होगा। **अतः यद्यपि नियोजित Y नियोजित $C + I$ से अधिक है, फिर भी वास्तविक Y वास्तविक $C + I$ के बराबर होगी। लेखांकन तादात्म्य की दायीं ओर यथार्थ निवेश में मालों का अनभिप्रेत संचय के रूप में अतिरिक्त निर्गत को दर्शाता है।**

यहाँ अब हम अर्थव्यवस्था में सरकार को शामिल करेंगे। अंतिम वस्तुओं और सेवाओं की समस्त माँग को प्रभावित करने वाले सरकार के मुख्य कार्यकलाप का संक्षिप्त विवरण *राजकोषीय* परिवर्त कर (T) और सरकारी व्यय (G) जो दोनों हमारे विश्लेषण में स्वायत्त हैं, के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। अन्य फर्मों तथा परिवारों की तरह सरकार अपने व्यय (G) के माध्यम से समस्त माँग में वृद्धि करती है। दूसरी ओर, सरकार कर लगाकर परिवारों की आय का एक अंश ले लेती है। अतः उसकी प्रयोज्य आय $Y_d = Y - T$ हो जाती है। परिवार इस प्रयोज्य आय के केवल एक अंश का ही व्यय उपभोग के लिए करते हैं। अतः सरकार को शामिल करने के लिए समीकरण 4.3 में निम्न प्रकार से परिवर्तन करना होगा:

$$Y = \bar{C} + \bar{I} + G + c(Y - T)$$

ध्यान दीजिए कि $\bar{C}$ और $\bar{I}$ की तरह $G - c.T$ स्वायत्त पद $\bar{A}$ में शामिल हो जाता है। इससे विश्लेषण में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं होता है। सरलता की दृष्टि से, हमने इस अध्याय के शेष भाग में सरकारी क्षेत्र की ओर ध्यान नहीं दिया है। यह भी द्रष्टव्य है कि सरकार द्वारा आरोपित अप्रत्यक्ष कर और दिए गए उपदान के बिना अर्थव्यवस्था में उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य, अर्थात सकल घरेलू उत्पाद तादात्म्य रूप से राष्ट्रीय आय के समान होते हैं। यहाँ से आगे, इस अध्याय के पूरे शेष भाग में हम Y को सकल घरेलू उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय के रूप में सूचित करेंगे।

4.2 एक वक्र पर संचलन बनाम एक वक्र का शिफ्ट

अर्थव्यवस्था के मॉडल का विश्लेषण करने के लिए हम आलेखीय तकनीकों का प्रयोग करेंगे। अतः किसी ग्राफ को पढ़ना हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। $b = ma + \varepsilon$ के रूप में सरल रेखीय समीकरण को दर्शाने वाले आलेख पर क्षैतिज और उर्ध्वाधर अक्षों पर a और b दो परिवर्तों को नीचे दर्शाया गया है। यहाँ $m > 0$ को सरल रेखा की प्रवणता कहते हैं और $\varepsilon > 0$ उर्ध्वाधर (अर्थात b) अक्ष पर अंतःखंड है। जब a में 1 इकाई की वृद्धि होती है, तो b के मूल्य में m इकाइयों से वृद्धि हो जाती है। इसे *आलेख पर परिवर्तों* का संचलन कहते हैं।

2 के बराबर ε के स्थिर मूल्य पर विचार कीजिए। मान लीजिए कि m के दो मूल्य क्रमशः $m = 0.5$ और $m = 1$ हैं। m के इन मूल्यों के संगत हम दो सरल रेखाएँ लेते हैं, जिनमें एक-दूसरे की अपेक्षा अधिक खड़े ढाल वाला है। सत्ताएँ ε और m को आलेख का पैरामीटर कहते हैं। ये अक्षों पर दर्शाए परिवर्तों की तरह प्रकट नहीं होते, लेकिन आलेख की स्थिति को नियमित करने के लिए पृष्ठभूमि में कार्य करते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में जैसे-जैसे m बढ़ता है, सरल रेखा ऊपर की ओर बढ़ती है। इसे आलेख (4.1) का **पैरामेट्रिक शिफ्ट** कहते हैं।

चूँकि उपर्युक्त आकृति की सरल रेखा का दूसरा पैरामीटर ε है, हम इस रेखा पर पैरामेट्रिक शिफ्ट के दूसरे प्रकार का प्रक्षेण कर सकते हैं। इसे देखने के लिए हमें 0.5 पर m के मूल्य को स्थिर मानकर ε के अंत:खंड 2 से 3 तक वृद्धि करना चाहिए। अब सरल रेखा ऊपर की ओर समांतर रूप से शिफ्ट होगी, जैसाकि रेखाचित्र 4.2 में दर्शाया गया है।

अब क्रमशः नीचे की ओर और ऊपर की ओर ढाल वाली सरल रेखा को प्रदर्शित करने वाले समीकरणों पर विचार कीजिए:

$y = z - x$, और $y = 1 + x$, $z >= 0$

प्रथम समीकरण में z एक अंत:खंड पैरामीटर के रूप में प्रकट हुआ है। अतः z के मूल्य को बढ़ाने के लिए शून्य से प्रारंभ कर प्रथम सरल रेखा ऊपर की ओर समांतर शिफ्ट होगी, जैसाकि रेखाचित्र 4.3 में दर्शाया गया है। परिणामतः दूसरी सरल रेखा के साथ इसके प्रतिच्छेदन बिंदु, पीछे दर्शाये गए की भाँति, दूसरी रेखा पर ऊपर की ओर जायेंगे:

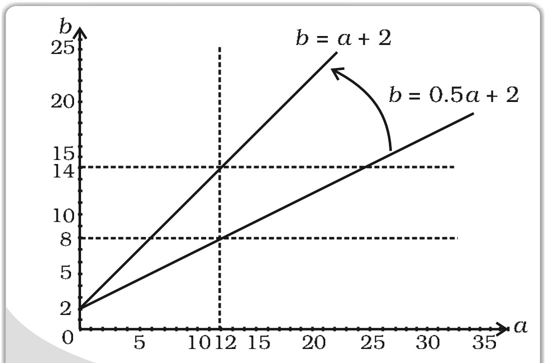

रेखाचित्र 4.1

एक धनात्मक ढाल सरल रेखा का रेखाचित्र उर्ध्व शिफ्ट ढाल के दुगुना होने पर

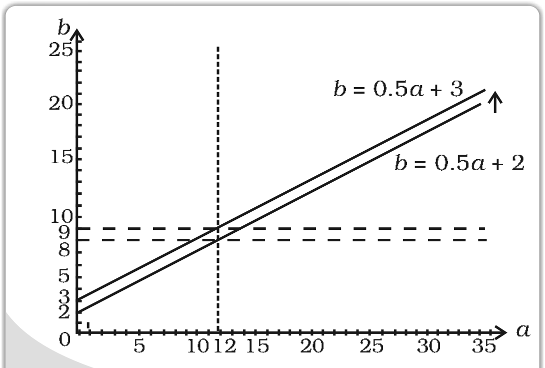

रेखाचित्र 4.2

एक धनात्मक ढाल सरल रेखा का रेखाचित्र उर्ध्व समानांतर शिफ्ट, अंत:खंड के बढ़ने पर

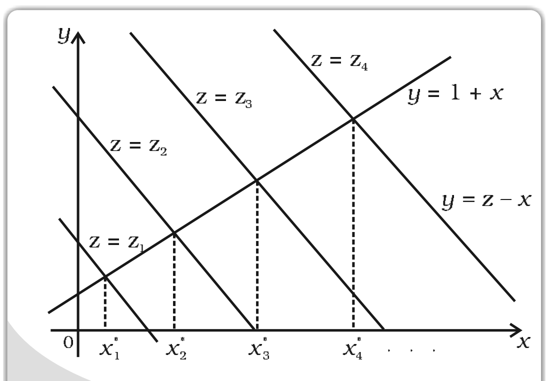

रेखाचित्र 4.3

Z का पैरामेट्रिक शिफ्ट और x के मूल्यों का संतुलन परिवर्तन

मान लीजिए, कि हम z और x के संतुलन मूल्य के मध्य संबंध प्राप्त करना चाहते हैं,

इसे निम्नांकित क्षैतिज और उर्ध्वाधर अक्षों पर क्रमशः x और z परिवर्तो का चित्रांकन करके एक चित्र पर $(x^*_1\ z_1)$, $(x^*_2\ z_2)$, $(x^*_3\ z_3)$ इत्यादि बिंदुएँ अंकित कर प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान दें (x, y) में समतल z को एक पैरामीटर के रूप में माना गया था, लेकिन (x, z) में z स्वयं एक परिवर्त है। अब तक हमने जो कुछ भी किया है, उसे इस प्रकार देखा जा सकता है: दूसरे समीकरण में x और y पर विचार करते समय हमने z के मूल्य को स्थिर रखा है और y को x के पदों के रूप में हल किया है। उसके बाद x और z के मध्य संबंध व्युत्पन्न करने के लिए प्रथम समीकरण में इस हल को रख दिया है। अब, हम इस तकनीक का प्रयोग पूरे अध्याय में करेंगे।

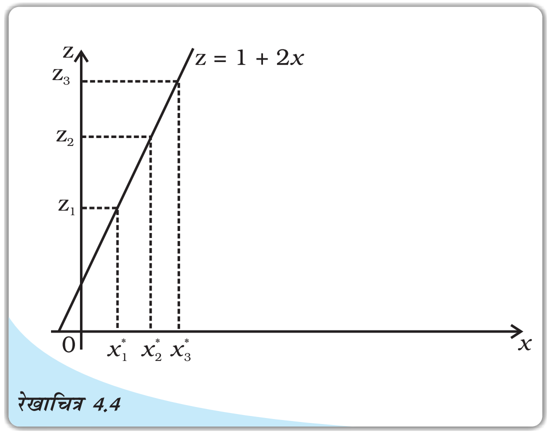

रेखाचित्र 4.4

x और z के बीच संबंध

4.3 उत्पाद बाज़ार का अल्पकालिक स्थिर कीमत विश्लेषण

अब हम अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तुओं की स्थिर कीमत और स्थिर ब्याज दर के अंतर्गत समस्त माँग की व्युत्पत्ति पर विचार करें। किंतु कीमत को किसी विशेष स्तर पर स्थिर रखने के क्रम में यह कल्पना करनी होगी कि उस कीमत पर उपभोक्ता की माँग की जितनी मात्रा होगी, पूर्तिकर्ता उतनी मात्रा की पूर्ति करेंगे। इस कीमत पर माँग की मात्रा से पूर्ति की मात्रा अधिक होने या कम होने से, अधिपूर्ति अथवा अधिमाँग के कारण कीमत में परिवर्तन होगा। इस समस्या से बचने के लिए हम कल्पना करते हैं कि पूर्ति की लोच अनंत है अर्थात् स्थिर कीमत पर पूर्ति अनुसूची क्षैतिज है। ऐसी परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था में इस कीमत पर केवल माँग की समस्त मात्रा से ही संतुलन निर्गत का निर्धारण होगा। इसे हम *प्रभावी माँग का सिद्धांत* कहते हैं।

अधिपूर्ति या अधिमाँग को टालने के क्रम में उत्पादक किस प्रकार उत्पादन योजना का नवीनीकरण करने की कोशिश करते हैं? इस पर कक्षा में परिचर्चा करें।

'अल्पकालिक शब्द' पर भी ध्यान दीजिए। हम कल्पना करते हैं कि अर्थव्यवस्था में कीमत को अधिमाँग या अधिपूर्ति की शक्तियों के प्रति अनुक्रिया करने में कुछ समय लगता है। इस बीच, उत्पादक अधिमाँग या अधिपूर्ति की स्थिति को दूर करने के लिए अपनी उत्पादन योजना को अद्यतन करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि चालू उत्पादन चक्र में उत्पादक, अधिपूर्ति का सामना करते हैं, तो वे अगले चक्र में कम उत्पादन करेंगे जिससे उनके गोदामों में माल का संचय न हो पाए। यह भी ध्यान रखें कि एक व्यक्तिगत उत्पादक राष्ट्रीय बाज़ार के आकार की तुलना में बहुत छोटा होता है और इसलिए वह बाज़ार कीमत को स्वयं प्रभावित नहीं कर सकता। प्रत्येक उत्पादक को प्रचलित बाज़ार कीमत को स्वीकार करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था के समस्त कीमत स्तर में तभी परिवर्तन होता है, जब अधिमाँग या अधिपूर्ति को दूर करने के लिए

अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ार में समंजन में असफल हो जाते हैं। अत: यह कल्पना की जाती है कि कीमतों में परिवर्तन केवल दीर्घकाल में ही होता है।

4.3.1 **समस्त माँग वक्र पर एक बिंदु**

स्थिर कीमत पर अंतिम वस्तु की प्रत्याशित समस्त माँग का मूल्य AD प्रत्याशित उपभोग व्यय और प्रत्याशित निवेश व्यय के कुल योग के बराबर होता है। प्रभावी माँग सिद्धान्त के अंतर्गत अंतिम वस्तुओं का संतुलन निर्गत प्रत्याशित समस्त माँग के बराबर होता है, जिसे समीकरण 4.3 द्वारा प्रदर्शित किया गया है:

$$Y = \bar{A} + c.Y$$

जहाँ $\bar{A}$ अर्थव्यवस्था में स्वायत्त व्यय का कुल मूल्य है। अब हम समस्त माँग के मूल्य को व्युत्पन्न करने के लिए एक संख्यात्मक उदाहरण पर विचार करते हैं और इस प्रकार स्थिर दर पर अर्थव्यवस्था का संतुलन निर्गत प्राप्त करेंगे। मान लीजिए कि स्वायत्त व्यय के मूल्य हैं, $\bar{C} = 40$, $\bar{I} = 10$ और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (mpc) का मूल्य है $c = 0.8$ हैं, तो Y का संतुलन मूल्य क्या होगा?

परीक्षण हल के लिए हम $Y = 200$ लेते हैं। निर्गत की इस मात्रा पर प्रत्याशित उपभोग व्यय का मूल्य है, $C = \bar{C} + 0.8\, Y = 40 + (0.8)\, 200 = 200$ है। प्रत्याशित निवेश व्यय $I = \bar{I} = 10$, है और प्रत्याशित समस्त माँग, $AD = C + I = 200 + 10 = 210$ है। निर्गत स्तर $y = 200$ पर प्रत्याशित समस्त माँग का मूल्य 210 है, जो अधिमाँग की स्थिति को बताता है। स्पष्टत: $Y = 200$, अर्थव्यवस्था में निर्गत का संतुलन स्तर नहीं है।

अब निर्गत स्तर $Y = 300$ पर विचार करते हैं। उपर्युक्त स्थिति जैसी गणना से पता चलता है कि प्रत्याशित समस्त माँग का मूल्य

$$\bar{A} + cY = \bar{C} + 1 + cY = 50 + (0.8)\, 300 = 290$$

प्रत्याशित समस्त माँग निर्गत से नीचे गिर जाती है और अधिपूर्ति की स्थिति उत्पन्न होती है। अत: $Y = 300$ भी अर्थव्यवस्था में निर्गत का संतुलन स्तर नहीं है।

अंत में $Y = 250$ पर विचार करते हैं। इस निर्गत पर, $AD = 50 + (0.8)\, 250 = 250$। अत: हमने Y का सही मूल्य ज्ञात कर लिया है, जिस पर समस्त माँग, समस्त निर्गत के बराबर होती है। अत: स्थिर कीमत पर अर्थव्यवस्था का संतुलन निर्गत $Y = 250$ है।

4.3.2 **उत्पाद बाज़ार में संतुलन माँग पर स्वायत्त परिवर्तन का प्रभाव**

स्थिर कीमत पर समस्त माँग के संतुलन मूल्य के क्या निर्धारक हैं? दूसरे शब्दों में, यह कौन निर्धारित करता है कि उपर्युक्त उदाहरण में संतुलन समस्त माँग 250 होगी या 210 अथवा 290? स्थिर कीमत–ब्याज दर पर संतुलन निर्गत और समस्त माँग समीकरण $Y = AD = \bar{A} + cY$ को हल करके प्राप्त किया जाता है। यह सिर्फ एक परिवर्त–Y वाला समीकरण है। समीकरण का हल है:

$$Y = \frac{\bar{A}}{1-c} \qquad (4.4)$$

अत: Y का मूल्य दायीं ओर के पैरामीटर के मूल्यों पर निर्भर करेगा, जो कि इस उदाहरण में $\bar{A}$ और c है। उपर्युक्त उदाहरण में समस्त माँग का संतुलन मूल्य 250 है और इसलिए समस्त माँग अनुसूची में एकल बिंदु की स्थिति जो हमें अब तक प्राप्त हुई है, इन पैरामीटरों के मूल्यों पर निर्भर करेंगी। समीकरण $AD = \bar{A} + cY$ की मानक रूप वाली सरल रेखीय समीकरण: $b = \varepsilon + ma$ से

तुलना कीजिए, जैसाकि खंड 4.2 में उल्लेख किया गया है। इस समीकरण में $\bar{A}$ अंत:खंड पैरामीटर है और c पैरामीटर की प्रवणता है। जब c में वृद्धि होगी तो समस्त माँग के समीकरण को निरूपित करने वाली सरल रेखा ऊपर की ओर उठेगी। दूसरी ओर, जब $\bar{A}$ बढ़ेगा तो सरल रेखा ऊपर की ओर समानांतर रूप से शिफ्ट होगी। किंतु, केवल $\bar{A}$ संयुक्त पद है, जो $\bar{C}$ और $\bar{I}$ के योग को निरूपित करता है। अत: यह AD रेखा का वास्तविक शिफ्ट पैरामीटर है।

मान लीजिए, $\bar{I}$ में 10 से 20 तक वृद्धि हो जाती है, तो संतुलन निर्गत और समस्त माँग का क्या होगा? रेखाचित्र 4.5 में इस स्थिति को दर्शाया गया है। रेखाएँ AD_1 और AD_2, $\bar{A}$ के दो मूल्य अर्थात् $\bar{A}_1$ और $\bar{A}_2$ क्रमश: के संगत हैं। इन मूल्यों में $\Delta \bar{I} = 10$ का अंतर है, जो कि स्वायत्त निवेश में वृद्धि है। रेखाएँ AD की प्रवणता $0 < c < 1$ है और उर्ध्वाधर अक्ष पर उनके अंत:खंड क्रमश: $\bar{A}_1$ और $\bar{A}_2$ है। ध्यान दें कि AD रेखा 45° रेखा से कम प्रवणतावाली है क्योंकि 45° रेखा की ढाल 1 (रूप 45° = 1) के बराबर है। 45° रेखा उन बिंदुओं को निरूपित करती हैं, जिन पर समस्त माँग और निर्गत बराबर है। अत: अर्थव्यवस्था में जब स्वायत्त व्यय का स्तर $\bar{A}_1$ है तो रेखा AD_1 45° रेखा को E_1 पर प्रतिच्छेद करती है, जो कि संतुलन बिंदु है। निर्गत और समस्त माँग के संतुलन मूल्य क्रमश: Y^*_1 और AD^*_1 (= 250) हैं।

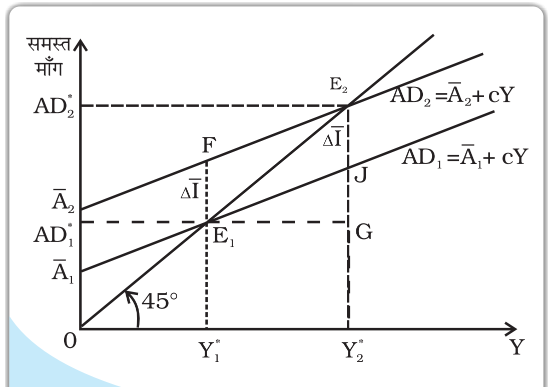

रेखाचित्र 4.5

स्थिर कीमत मॉडल (प्रतिरूप) में संतुलन निर्गत और समस्त माँग

जब स्वायत्त निवेश में वृद्धि होती है, तो रेखा AD_1 ऊपर की ओर समानांतर शिफ्ट होती है और AD_2 की स्थिति को प्राप्त करती है। निर्गत Y^*_1 पर समस्त माँग का मूल्य Y^*_1F है, जो निर्गत $OY^*_1 = Y^*_1E_1$ के मूल्य से E_1F के परिमाण के बराबर अधिक है। E_1F से अधिमाँग के परिणाम की माप होती है, जो अर्थव्यवस्था में स्वायत्त व्यय में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। अत: E_1 संतुलन को निरूपित नहीं करता। अंतिम वस्तु बाज़ार में नये संतुलन की प्राप्ति के लिए हमें उस बिंदु की खोज करनी होगी, जहाँ नयी समस्त माँग रेखा AD_2 , 45° रेखा को प्रतिच्छेद करेगी। यह बिंदु E_2 पर होता है, जो नया संतुलन बिंदु है। निर्गत और समस्त माँग के नये मूल्य क्रमश: Y^*_2 और AD^*_2 है।

ध्यान रखें कि नये संतुलन निर्गत तथा समस्त माँग में $E_1G = E_2G$ के परिमाण में वृद्धि होती है, जो स्वायत्त व्यय $\Delta\bar{I} = E_1F = E_2J$ में प्रारंभिक वृद्धि से अधिक है। अत: स्वायत्त व्यय में प्रारंभिक वृद्धि से प्रतीत होता है कि समस्त माँग और निर्गत के संतुलन मूल्यों पर अधिप्लावन प्रभाव पड़ता है। किस कारण से समस्त माँग और निर्गत के स्वायत्त व्यय में प्रारंभिक वृद्धि के आकार से अधिक बड़े परिमाण में वृद्धि होती है? इसकी चर्चा हम खंड 4.3.3 में करेंगे।

4.3.3 गुणक यांत्रिकता

स्पष्ट रूप से निर्गत अथवा समस्त माँग का संतुलन मूल्य 250 नहीं है। $\bar{I} = 20$ के साथ अर्थव्यवस्था में समस्त माँग समीकरण (4.4) से $40 + 20 + (0.8)\,250 = 260$ होगा, जो निर्गत $Y = 250$ से स्वायत्त निवेश ($\Delta\bar{I} = 10$) में वृद्धि परिमाण के बराबर अधिक है। अर्थव्यवस्था में

अधिमाँग की स्थिति होगी और उत्पादक इस अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिए अपनी माल-सूची में कमी लाएँगे। अत: अगले उत्पादन चक्र में वे पुन: अपनी उत्पादन योजना को ऊपर की ओर संशोधित करेंगे अर्थात वे अंतिम वस्तु बाज़ार में संतुलन की पुन: प्राप्ति के लिए अपने निर्गत की नियोजित पूर्ति में 10 की वृद्धि करेंगे।

सरकार के द्वारा अप्रत्यक्ष कर नहीं लगाने अथवा उपदान नहीं देने की स्थिति में, अंतिम वस्तुओं के कुल निर्गत का मूल्य अथवा सकल घरेलू उत्पाद राष्ट्रीय आय के बराबर होगा। अंतिम वस्तुओं के उत्पादन में श्रम, पूँजी, भूमि और उद्यम जैसे कारकों को लगाया जाता है। अप्रत्यक्ष कर अथवा उपदान की अनुपस्थिति में अंतिम वस्तुओं के निर्गत के कुल मूल्य को उत्पादन के विभिन्न कारकों में वितरित कर दिया जाता है, जो क्रमश: श्रम की मज़दूरी, पूँजी का ब्याज, भूमि का लगान आदि होते हैं। शेष बचा हुआ उद्यमी के पास रहता है, जिसे लाभ कहा जाता है। अत: अर्थव्यवस्था में समस्त कारक अदायगी का योग, राष्ट्रीय आय, अंतिम वस्तुओं के निर्गत के समस्त मूल्य, सकल घरेलू उत्पाद के बराबर होता है। उपर्युक्त उदाहरण में, अतिरिक्त निर्गत का मूल्य 10 को, विभिन्न कारकों में कारक अदायगी के रूप में वितरित कर दिया जाता है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था की आय में 10 की वृद्धि होती है। जब आय में 10 की वृद्धि होती है, तब उपभोग व्यय में भी (0.8)10 की वृद्धि होती है, क्योंकि लोग उपभोग पर अपनी अतिरिक्त आय का 0.8 (सीमांत उपभोग प्रवृत्ति) व्यय करते हैं। अत: अगले दौर में अर्थव्यवस्था में समस्त माँग में (0.8)10 की वृद्धि होती है और पुन: (0.8)10 के बराबर अधिमाँग उत्पन्न होती है। इसीलिए अगले उत्पादन चक्र में पुन: संतुलन स्थापित करने के लिए, उत्पादक अपने नियोजित निर्गत में (0.8)10 की वृद्धि करता है। जब इस अतिरिक्त निर्गत को उत्पादन के कारकों के मध्य वितरित कर दिया जाता है, तो अर्थव्यवस्था की आय में (0.8)10 की वृद्धि होती है और उपभोग माँग बढ़कर $(0.8)^2$ 10 हो जाती है। पुन: उसी परिमाण में अधिमाँग की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया एक चक्र के बाद दूसरे चक्र में निरंतर जारी रहती है। प्रत्येक चक्र में उत्पादक अधिमाँग को दूर करने के लिए अपने निर्गत में वृद्धि करता है और उपभोक्ता इस अतिरिक्त उत्पादन से अपनी अतिरिक्त आय का एक अंश उपभोग मदों पर व्यय करता है और इससे अगले दौर में पुन: अधिमाँग का सृजन होता है।

अब निम्नलिखित तालिका (4.1) में प्रत्येक दौर में समस्त माँग और निर्गत के मूल्यों में परिवर्तन को दर्शाया जाएगा।

तालिका 4.1: **अंतिम वस्तु बाज़ार में गुणक यांत्रिकता**

	उपभोग	*समस्त माँग*	*निर्गत/आय*
दौर 1	0	10 (स्वत: बढ़ोतरी)	10
दौर 2	(0.8)10	(0.8)10	(0.8)10
दौर 3	(0.8)10	$(0.8)^2 10$	$(0.8)^2 10$
दौर 4	(0.8)10	$(0.8)^3 10$	$(0.8)^3 10$
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	इत्यादि

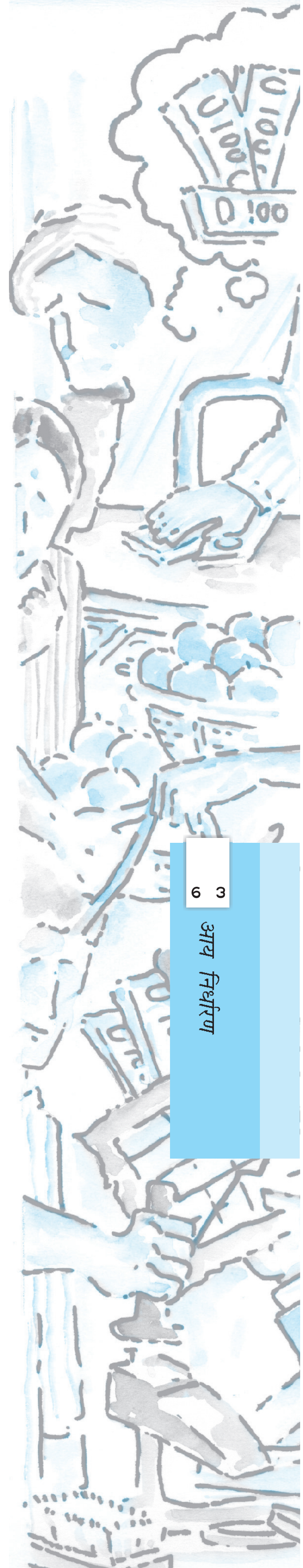

प्रत्येक दौर में अंतिम वस्तुओं के निर्गत के मूल्य (अर्थव्यवस्था की आय) में वृद्धि की माप अंतिम कॉलम में की गई है। दूसरे और तीसरे कॉलम में अर्थव्यवस्था में कुल उपभोग व्यय में वृद्धि और इस तरह समस्त माँग के मूल्य में वृद्धि की माप की गई है। ध्यान रखें कि क्रमिक चक्रों में अंतिम वस्तुओं के निर्गत में वृद्धि धीरे-धीरे घट रही है। अतः कई चक्रों के बाद वृद्धि वास्तव में शून्य हो जाएगी और क्रमिक चक्रों से निर्गत के कुल परिमाण में कोई योगदान नहीं होगा। हम कहते हैं कि अंतिम वस्तुओं के निर्गत को प्रभावित करने वाले चक्र, *अभिसारी प्रक्रिया* को प्रदर्शित करती हैं। अंतिम वस्तुओं के निर्गत में कुल वृद्धि को प्राप्त करने के लिय हमें, अंतिम कॉलम में अनंत ज्यामितीयशृंखला का योग प्राप्त करना चाहिए।

अर्थात्–

$$10 + (0.8)10 + (0.8)^2\, 10 + \cdots\cdots \infty$$

$$10\,\{1 + (0.8) + (0.8)^2 + \cdots\cdots \infty\} = \frac{10}{1-0.8} = 50$$

अतः स्वायत्त व्यय में प्रारंभिक वृद्धि से कुल निर्गत के संतुलन मूल्य में अधिक वृद्धि होती है। अंतिम वस्तुओं के निर्गत के संतुलन मूल्य में कुल वृद्धि और स्वायत्त व्यय में आरंभिक वृद्धि के अनुपात को अर्थव्यवस्था का *निर्गत गुणक* कहते हैं। स्मरण रहे कि 10 और 0.8 क्रमशः $\Delta\bar{I} = \Delta\bar{A}$ तथा *mpc* मूल्य को प्रदर्शित करते हैं। अतः गुणक की अभिव्यक्ति को इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$\text{निर्गत गुणक} = \frac{\Delta Y}{\Delta\bar{A}} = \frac{1}{1-c} \qquad (4.5)$$

जहाँ ΔY अंतिम वस्तु निर्गत की कुल वृद्धि तथा c =mpc (सीमांत उपभोग प्रवृत्ति) है। देखें कि गुणक का आकार c के मूल्य पर निर्भर करता है। जैसे-जैसे c बढ़ता है, गुणक में वृद्धि होती जाती है।

पिछले उदाहरण में, स्वायत्त व्यय में 10 की वृद्धि से अर्थव्यवस्था में कुल निर्गत और समस्त माँग में 50 की वृद्धि होती है। इस प्रकार गुणक का मूल्य 5 है। गणना का प्रति परीक्षण करने के लिए नये संतुलन $\bar{I} = 20$ पर समस्त माँग और निर्गत के मूल्य की गणना करते हैं। समीकरण (4.4) से नये संतुलन में निर्गत का मूल्य निम्न के बराबर होगा–

$$Y_2^* = \frac{40+20}{1-0.8} = 300$$

इससे सिद्ध होता है कि गुणक की हमारी गणना वास्तव में सही है।

इस रोचक प्रति अनुमानिक तथ्य अथवा 'विरोधाभास' के साथ, हम अंतिम वस्तु बाज़ार के स्थिर कीमत-ब्याज दर विश्लेषण का निष्कर्ष निकालेंगे। यदि अर्थव्यवस्था के सभी लोग अपनी आय से बचत के अनुपात को बढ़ा दें (अर्थात यदि अर्थव्यवस्था की बचत की सीमांत प्रवृत्ति बढ़ जाती है) तो अर्थव्यवस्था में बचत के कुल मूल्य में वृद्धि नहीं होगी अर्थात् इससे या तो बचत में कमी आएगी या वह अपरिवर्तित रहेगी। इस परिणाम को **मितव्ययिता का विरोधाभास** कहते हैं जो यह बतलाता है कि जब लोग अधिक मितव्ययी हो जाते हैं, तो वे कमोवेश पूर्ववत ही बचत करते हैं। यह परिणाम, यद्यपि असंभव प्रतीत होता है, किंतु वास्तव में हमारे द्वारा पढ़े गए मॉडल का अनुप्रयोग है।

इस उदाहरण पर और विचार करते हैं। मान लीजिए, कि Y का प्रारंभिक संतुलन = 250 और लोगों के व्यय के स्वरूप में बहिर्जात अथवा स्वायत्त शिफ्ट होता है। अकस्मात वे अधिक

मितव्ययी बन जाते हैं। ऐसा किसी बड़े युद्ध अथवा किसी अन्य आसन्न खतरे के संबंध में नई सूचना के कारण हो सकता है। इसके फलस्वरूप लोग अपने खर्च में अधिक परिनिरीक्षण और अनुदारिता बरतने लगते हैं। अत: अर्थव्यवस्था की सीमांत बचत प्रवृत्ति (mps) में वृद्धि होती है अथवा विकल्पत: सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (mpc) 0.8 से घटकर 0.5 रह जाती है। प्रारंभिक आय-स्तर $AD^*_1 = Y^*_1 = 250$ पर, सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में आकस्मिक ह्रास समस्त उपभोग व्यय में ह्रास का द्योतक होगा, जो समस्त माँग, $AD = \bar{A} + cY$ (0.8 – 0.5) 250 = 75 के परिमाण के बराबर होगा। इसे उपभोग व्यय में स्वायत्त कटौती कहा जा सकता है। यह कटौती उस सीमा तक हो सकती है कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में किसी बाह्य कारण से परिवर्तन हो रहा हो और यह मॉडल के परिवर्तों में परिवर्तन के फलस्वरूप नहीं होता है। लेकिन जब समस्त माँग में 75 तक ह्रास होता है, तो निर्गत $Y^*_1 = 250$ में गिरावट आती है और अर्थव्यवस्था में इससे 75 के बराबर तक अधिपूर्ति उत्पन्न होती है। गोदामों में माल भरा पड़ा रहता है और उत्पादक बाज़ार में संतुलन की पुनर्स्थापना के लिए अगले चक्र में 75 की कमी करने का निर्णय लेता है। किंतु इसका अर्थ है कि अगले चक्र में कारक भुगतान और आय में 75 की कमी होगी। जैसे-जैसे आय में ह्रास होता है, लोग आनुपातिक रूप से उपभोग में कटौती करते हैं। किंतु इस बार सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के नये मूल्य के अनुसार, जो कि 0.5 है, कटौती होती है। उपभोग व्यय और समस्त माँग में इस प्रकार (0.5) 75 की कमी होती है, जिससे बाज़ार में पुन: अधिपूर्ति का सृजन होता है। अत: अगले दौर में, उत्पादक पुन: निर्गत में (0.5) 75 की कटौती करते हैं। लोगों की आय इसी के अनुसार घटती है और उपभोग व्यय और समस्त माँग में पुन: $(0.5)^2 75$ का ह्रास होता है। यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। किंतु जैसाकि क्रमिक चक्र के प्रभावों के मूल्यह्रास से अनुमान किया जा सकता है कि प्रक्रिया में अभिसरण होता है। निर्गत और समस्त माँग के मूल्य में कुल कितना ह्रास है? यदि अनंत शृंखलाएँ 75 + (0.5) 75 + $(0\text{-}5)^2$ 75 + · · · ∞ को जोड़ दें, तो निर्गत में कुल कटौती,

$$\frac{75}{1-0.5} = 150$$

लेकिन इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था में नया संतुलन निर्गत केवल $Y^*_2 = 100$ है। अब लोग $S^*_2 = Y^*_2 - C^*_2 = Y^*_2 - (\bar{C} + c_2 Y^*_2) = 100 - (40 + 0.5 \times 100)$ = समस्त 10 की बचत कर रहे हैं। जबकि पूर्व संतुलन के अंतर्गत उनकी बचत $S^*_1 = Y^*_1 - C^*_1 = Y^*_1 - (\bar{C} + c_1 Y^*_1) = 250 - (40 + 0.8 \times 250) = 10$, पहले सीमांत उपभोग प्रवृत्ति पर। $c_1 = 0.8$ अत: अर्थव्यवस्था में बचत का कुल मूल्य अपरिवर्तित रहता है। संक्षिप्त में यह उदाहरण समष्टि अर्थशास्त्र से जुड़े तार्किक बिंदुओं का विश्लेषण करती है, जैसा कि –– ''अलग-अलग भागों का

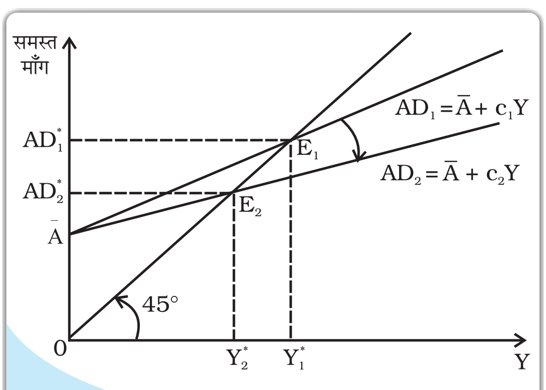

रेखाचित्र 4.6

मितव्ययिता का विरोधाभास–समस्त माँग रेखा का नीचे की ओर झुकाव

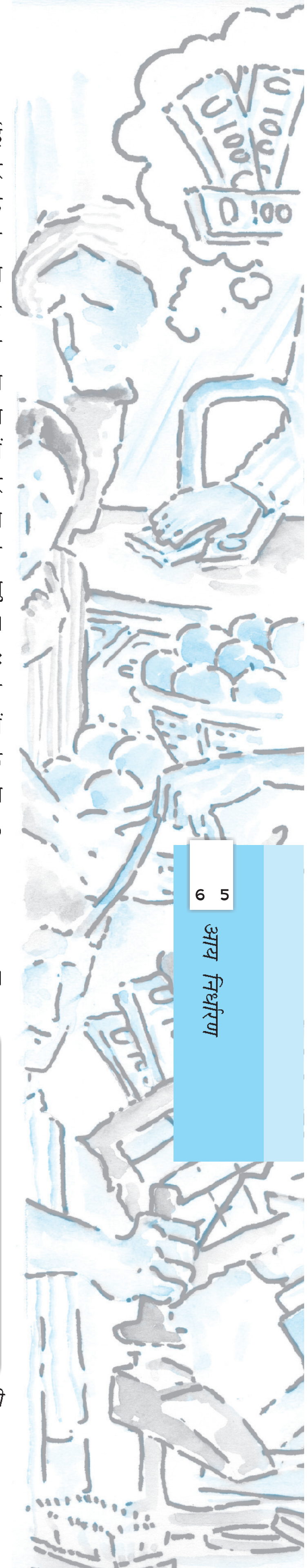

योगफल संपूर्ण के बराबर नहीं है।'' यहाँ तक कि यदि हम व्यक्तिगत रूप से निर्णय लेने वाली प्रक्रिया के संदर्भ में अध्ययन करें कि कितना बचत किया जाये – व्यष्टि अर्थशास्त्र के विश्लेषण का प्राथमिक विषय-वस्तु क्या हो – तो हम यह सिद्धांत बनाने में असमर्थ होंगे कि अर्थव्यवस्था में कुल बचत का क्या होगा? दूसरी ओर, कुल बचत के सभी घटकों का परिणाम व्यक्तिगत बचत निर्णय के सभी कारकों के योग के ठीक बराबर नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक है।

खंड 4.3.2 में हमने रेखा AD की स्थिति में दो प्रकार के पैरामेट्रिक परिवर्तनों के बारे में चर्चा की। जब $\bar{A}$ में परिवर्तन हो, तो रेखा में समांतर रूप से ऊपर की ओर अथवा नीचे की ओर शिफ्ट होती है। किंतु जब c में परिवर्तन होता है, तो रेखा ऊपर या नीचे को झुकती है। सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि अथवा सीमांत बचत प्रवृत्ति में कमी से, रेखा AD की प्रवणता में कमी आती है और यह नीचे की ओर झुकती है। इस स्थिति का चित्रांकन रेखाचित्र 4.6 में किया गया है।

पैरामीटरों के प्रारंभिक मूल्य $\bar{A}$ =50 और c = 0.8 पर निर्गत का संतुलन मूल्य और समस्त माँग समीकरण (4.4) में –

$$Y_1^* = \frac{50}{1-0.8} = 250$$

पैरामीटर के परिवर्तित मूल्य c = 0.5 के अंतर्गत निर्गत और समस्त माँग का नया संतुलन मूल्य है।

$$Y_2^* = \frac{50}{1-0.5} = 100$$

संतुलन निर्गत और समस्त माँग में 150 की कमी हुई है। जैसाकि ऊपर बताया गया है, इससे यह सिद्ध होता है कि बचत के कुल मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं है।

सारांश

जब किसी विशेष कीमत स्तर पर अंतिम वस्तु की समस्त माँग, समस्त पूर्ति के बराबर होती है, तो अंतिम वस्तु अथवा उत्पाद बाज़ार संतुलन की स्थिति में होता है। अंतिम वस्तु की समस्त माँग में प्रत्याशित उपभोग, प्रत्याशित निवेश, सरकारी व्यय आदि आते हैं। आय में इकाई वृद्धि के कारण प्रत्याशित उपभोग में वृद्धि की दर को सीमांत उपभोग प्रवृत्ति कहते हैं। सरलता की दृष्टि से, अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु के स्तर के निर्धारण के लिए अल्पकाल में हम समस्त माँग एक नियत अंतिम वस्तु कीमत और नियत ब्याज की दर को मान लेते हैं। अल्पकाल में हम यह भी मान लेते हैं कि इस कीमत पर समस्त पूर्ति पूर्णत: लोचदार है। इन परिस्थितियों में समस्त निर्गत का निर्धारण केवल समस्त माँग के स्तर पर ही निर्धारित होता है। इसे *प्रभावी माँग का सिद्धांत* कहते हैं। स्वायत्त व्यय में वृद्धि (ह्रास) के कारण गुणक प्रक्रिया के द्वारा अंतिम वस्तु के समस्त निर्गत में बड़ी मात्रा में वृद्धि (ह्रास) होती है।

मूल संकल्पनाएँ

समस्त माँग	समस्त पूर्ति
संतुलन	प्रत्याशित
यथार्थ	प्रत्याशित उपभोग
सीमांत उपभोग प्रवृत्ति	प्रत्याशित निवेश
माल-सूची में अनभिप्रेत परिवर्तन	स्वायत्त परिवर्तन
पैरामेट्रिक शिफ्ट	प्रभावी माँग का सिद्धांत
मितव्ययिता का विरोधाभास	स्वायत्त व्यय गुणक

अभ्यास

1. सीमांत उपभोग प्रवृत्ति किसे कहते हैं? यह किस प्रकार सीमांत बचत प्रवृत्ति से संबंधित है?
2. प्रत्याशित निवेश और यथार्थ निवेश में क्या अंतर है?
3. "किसी रेखा में पैरामेट्रिक शिफ्ट" से आप क्या समझते हैं? रेखा में किस प्रकार शिफ्ट होता है जब इसकी (i) ढाल घटती है और (ii) इसके अंत:खंड में वृद्धि होती है।
4. 'प्रभावी माँग' क्या है? जब अंतिम वस्तुओं की कीमत और ब्याज की दर दी हुई हो, तब आप स्वायत्त व्यय गुणक कैसे प्राप्त करेंगे?
5. जब स्वायत्त निवेश और उपभोग व्यय (*A*) 50 करोड़ रु॰ हो और सीमांत बचत प्रवृत्ति (*MPS*) 0.2 तथा आय (*Y*) का स्तर 4,000.00 करोड़ रु॰ हो, तो प्रत्याशित समस्त माँग ज्ञात करें। यह भी बताएँ कि अर्थव्यवस्था संतुलन में है या नहीं (कारण भी बताएँ)।
6. मितव्ययिता के विरोधाभास की व्याख्या कीजिए।

सुझावात्मक पठन

डोर्नबुश, आर. और फिशर, एस. 1990, *मैक्रोइकोनॉमिक्स* (पाँचवा संस्करण) पृ॰ 63–105, मैक्ग्रॉहिल, पेरिस।

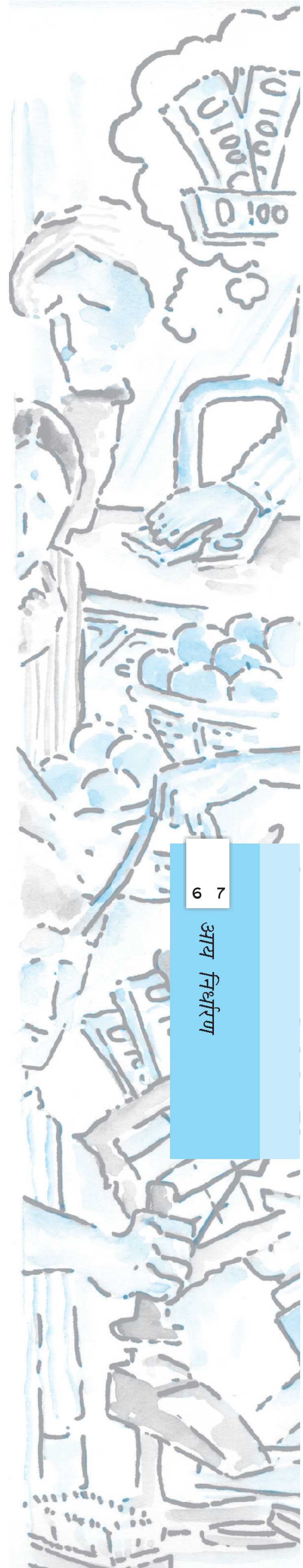

अध्याय 5

सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था

मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के अतिरिक्त सरकार भी होती है, जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस अध्याय में हम उन विविध पहलुओं पर चर्चा नहीं करेंगे जिनके माध्यम से सरकार **आर्थिक जीवन** पर अपना प्रभाव छोड़ती है, बल्कि सरकार के उन तीन विशिष्ट कार्यों तक ही अपने अध्ययन को सीमित रखेंगे जिनका संचालन सरकार का राजस्व और व्यय संबंधी बजटीय उपायों के द्वारा इन कार्यों का संचालन होता है।

प्रथम, कुछ वस्तुएँ, जिसे **सार्वजनिक वस्तुएँ** कहते हैं, (जैसे–राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, सड़क, लोक प्रशासन) *निजी वस्तुओं* (जैसे- कपड़े, कार, खाद्य पदार्थ) से भिन्न होती है और इनकी प्राप्ति बाज़ार तंत्र से नहीं हो सकती है अर्थात वैयक्तिक उपभोक्ताओं और उत्पादकों के बीच संव्यवहार से नहीं हो सकता है। *इसके लिए सरकार की आवश्यकता होती* है। इसे ही *नियतन फलन* कहते हैं।

द्वितीय, सरकार अपनी कर व व्यय नीति के द्वारा आय को इस प्रकार से वितरण करने का प्रयास करती है जो कि समाज के द्वारा "उचित" माना जाता है। सरकार अंतरण अदायगी करके और कर संकलन करके परिवार के वैयक्तिक प्रयोज्य आय पर प्रभाव डालती है। अतः सरकार आय के वितरण को बदल सकती है। इसे *वितरण फलन* कहते हैं।

तृतीय, अर्थव्यवस्था में उच्चावचन की भारी प्रवृत्ति पायी जाती है और बेरोज़गारी अथवा मुद्रास्फीति की स्थिति भी दीर्घकाल तक रह सकती है। अर्थव्यवस्था में रोज़गार और कीमतों का कुल स्तर समस्त माँग के स्तर पर निर्भर करता है, जो कि लाखों निजी आर्थिक एजेंटों के सरकार से पृथक, व्यय निर्णयों का फलन होता है। ये सभी निर्णय अपने आप में कई कारकों जैसे–आय और साख की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। किसी भी समयावधि में व्यय का स्तर अर्थव्यवस्था के श्रम और अन्य संसाधनों के पूर्ण उपयोग के लिए पर्याप्त नहीं भी हो सकते हैं। चूँकि मज़दूरी और कीमतें नीचे आकर नम्य हो जाती हैं (एक स्तर के नीचे नहीं गिरती हैं) इसीलिए रोज़गार की स्वतः पुनर्स्थापना नहीं हो पाती है। अतः समस्त माँग में वृद्धि करने के लिए नीतिगत उपायों की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, ऐसा समय भी हो सकता है, जब उच्च रोज़गार की दशाओं में उपलब्ध निर्गत से व्यय की मात्रा में वृद्धि हो और इसके कारण मुद्रास्फीति उत्पन्न हो। ऐसी स्थिति में, माँग में कमी करने के लिए प्रतिबंधात्मक शर्तों की आवश्यकता होती है। इनसे घरेलू अर्थव्यवस्था के ***स्थिरीकरण*** की आवश्यकताओं की रचना होती है।

सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में सरकारी प्रावधानों की आवश्यकता को जानने के लिए हमें उन बातों पर विचार करना चाहिए, जो उन्हें निजी वस्तुओं से भिन्न बनाती है। सार्वजनिक और निजी वस्तुओं में दो मुख्य अंतर हैं। प्रथम, सार्वजनिक वस्तुओं का लाभ किसी उपभोक्ता विशेष तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि इसका लाभ सबको मिलता है, किंतु किसी निजी वस्तुओं के मामले में ऐसा नहीं होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति एक चॉकलेट का उपभोग करता है अथवा एक कमीज़ पहनता है तो ये वस्तुएँ किसी दूसरे व्यक्ति को उपलब्ध नहीं होती है। इस व्यक्ति के उपभोग और दूसरों के उपभोग में प्रतिस्पर्धात्मक संबंध होता है। किंतु, यदि हम एक सार्वजनिक उद्यान अथवा वायु प्रदूषण को कम करने के उपायों पर विचार करें, तो इसका लाभ सबको मिलता है। ऐसे उत्पादों का उपभोग कई व्यक्तियों के द्वारा होता है और ये "प्रतिस्पर्धी" नहीं होते हैं, क्योंकि एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के उपभोग को कम किये बगैर इनका भरपूर उपयोग कर सकता है। द्वितीय, निजी वस्तुओं के मामले में जो कोई वस्तु के लिए भुगतान नहीं करता है, वह उसके लाभों से वंचित रहता है। यदि आप किसी स्थानीय थियेटर का टिकट नहीं खरीदें, तो आप उस फिल्म को देखने से वंचित रहते हैं। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के मामले में किसी को वस्तु के लाभ से वंचित करना संभव नहीं है (वे अवर्ज्य हैं)। चूँकि भुगतान नहीं करने वाले उपयोगकर्ताओं को वंचित नहीं किया जा सकता है, इसीलिए सार्वजनिक वस्तुओं पर शुल्क लगाना कठिन अथवा असंभव होता है। इसके कारण "मुफ़्तखोरी" की समस्या उत्पन्न होती है। उपभोक्ता उन वस्तुओं के लिए अपनी इच्छा से किसी भी कीमत का भुगतान नहीं करेंगे जो कि उन्हें नि:शुल्क प्राप्त होती हैं तथा जो उपभोग की जाने वाली संपत्ति किसी व्यक्ति-विशेष के स्वामित्व में नहीं होती। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कड़ी टूट जाती है और सरकार को इस प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए निश्चित रूप से पहल करनी पड़ती है। यद्यपि सार्वजनिक प्रावधान वैसा नहीं होता है जैसाकि सार्वजनिक उत्पादन। *सार्वजनिक प्रावधान* का तात्पर्य है कि इनका वित्त प्रबंधन बजट के माध्यम से होता है तथा बिना किसी प्रत्यक्ष भुगतान के मुफ़्त में उपलब्ध होता है। इन वस्तुओं का *उत्पादन* पूर्णत: सरकारी प्रबंधन के अंतर्गत हो सकता है अथवा निजी क्षेत्र के द्वारा।

इस अध्याय का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत है। खंड 5.1 में सरकार के राजस्व के स्रोत और सरकारी व्यय के क्षेत्र को प्रदर्शित करने के लिए सरकारी बजट के घटकों को प्रस्तुत किया गया है। खंड 5.2 में राजस्व से व्यय अधिक होने की दशा में सरकारी घाटा के मुद्दों पर चर्चा की गयी है। खंड 5.3 पूर्ववर्णित आय-व्यय दृष्टिकोण के तहत राजकोषीय नीति और गुणक प्रक्रम का उल्लेख किया गया है। घाटे की पूर्ति के लिए सरकारी ऋण-ग्रहण से ऋण संचय होता है, जिस ऋण को सरकार धारण करती है। इस अध्याय के अंत में ऋण के मुद्दों का विश्लेषण किया गया है।

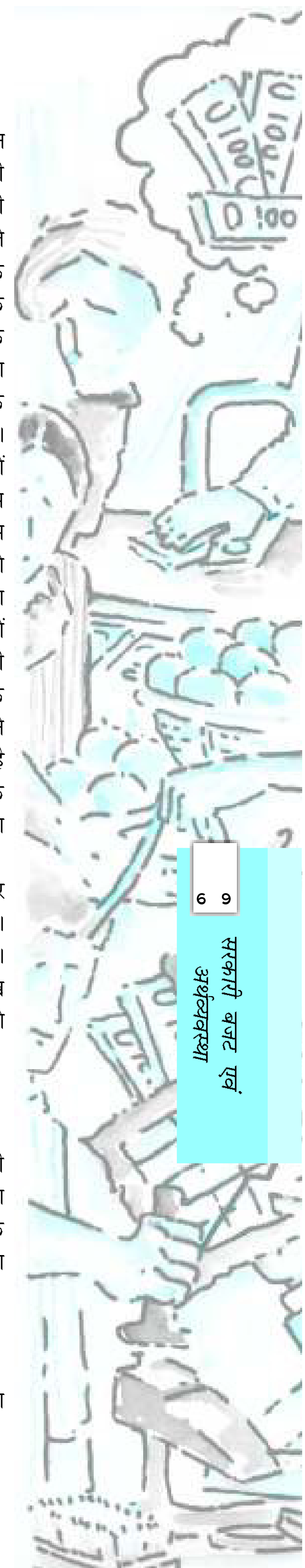

5.1 सरकारी बजट के घटक

भारत में प्रत्येक वित्तीय वर्ष, जो 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है, के संबंध में सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्ययों का विवरण संसद के समक्ष प्रस्तुत करना एक संवैधानिक अनिवार्यता (अनुच्छेद 112) है। इस 'वार्षिक वित्तीय विवरण' से मुख्य बजट दस्तावेज़ बनता है। इसके अतिरिक्त बजट में राजस्व लेखा पर व्यय और अन्य प्रकार के व्यय में अवश्य ही अंतर होना चाहिए। अत: बजट दो प्रकार के होते हैं: (i) राजस्व बजट (ii) पूँजीगत बजट।

5.1.1 **राजस्व लेखा**

राजस्व बजट में सरकार की चालू प्राप्तियाँ और उन प्राप्तियों से किये जाने वाले व्यय के विवरण को दर्शाया जाता है।

(a) राजस्व प्राप्तियाँ: राजस्व प्राप्तियाँ सरकार की वह प्राप्तियाँ हैं जो गैर-प्रतिदेय हैं अर्थात् इसे पाने के लिए सरकार से पुन: दावा नहीं किया जा सकता है। इसे कर और गैर-कर राजस्व में विभक्त किया जाता है। तालिका 5.1 वित्तीय वर्ष 2008-09 के लिए केन्द्र सरकार की प्राप्तियाँ और व्यय को प्रस्तुत करती है। राजस्व प्राप्तियों को कर और गैर-कर राजस्व में विभक्त किया जाता है। कर राजस्व में कर की प्राप्तियाँ और केंद्र सरकार द्वारा लगाए गए अन्य शुल्क शामिल होते हैं। कर राजस्व जो कि राजस्व प्राप्तियों का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, में मुख्य रूप से प्रत्यक्ष कर जिसका बोझ प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति (व्यक्तिगत आय कर) और फर्म (निगम कर) पर पड़ता है तथा अप्रत्यक्ष कर जैसे–उत्पाद शुल्क (देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं पर लगाए गए शुल्क), सीमा शुल्क (भारत में आयात किये जाने वाली अथवा भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर लगाए गए कर) और सेवा शुल्क[1] शामिल होते हैं। अन्य प्रत्यक्ष करों जैसे, संपत्ति कर, उपहार कर और संपदा शुल्क (अब निरस्त) आदि का राजस्व से होने वाली आय में कभी बहुत महत्त्व नहीं रहा है। इसीलिए इसे बहुधा "कागज़ी कर" ही कहा जाता है। वर्ष 2006-07 में राजस्व प्राप्ति में निगम कर का योगदान सबसे अधिक (30.6 प्रतिशत) रहा है जबकि उत्पाद शुल्क का योगदान (24.9 प्रतिशत) दूसरे स्थान पर रहा है। सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष कर का अंश 1990-91 में 19.1 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 48.8 प्रतिशत हो गया।

पुनर्वितरण के उद्देश्य की प्राप्ति आय पर प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से किया जाता है। इसके अंतर्गत जैसे-जैसे आय बढ़ती है, वैसे-वैसे कर की दर ऊँची होती जाती है। फर्मों पर आनुपातिक आधार पर कर लगाए जाते हैं। कर की दर लाभयुक्त आय का एक विशेष अनुपात होती है। जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुओं को उत्पाद कर से मुक्त रखा जाता है अथवा उन पर कर की दर निम्न होती है। सुख और अर्ध-विलासिता की वस्तुओं पर सामान्य दर से कर लगाया जाता है, जबकि पूर्ण-विलासिता संबंधी वस्तुओं, तंबाकू और पेट्रोलियम उत्पादों पर कर की दर काफी ऊँची होती है।

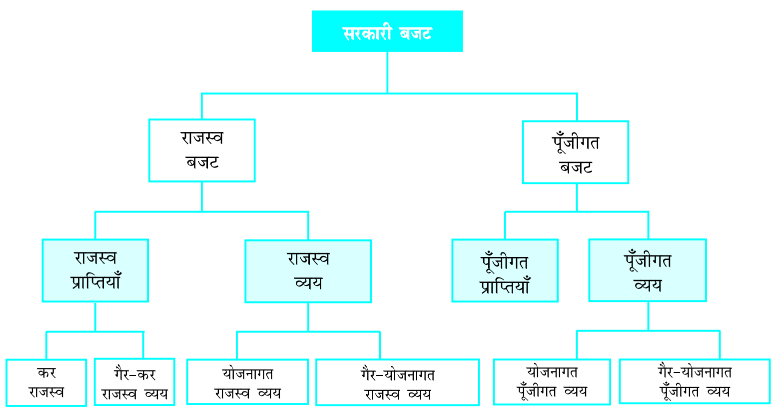

चार्ट 1: सरकारी बजट के घटक

[1] सेवा शुल्क (व्यवस्था कर), दूरभाष सेवा, शेयर दलाल, स्वास्थ्य क्लब, ब्यूटी पार्लर, निर्जल धुलाई सेवा आदि जैसी सेवाओं को सेवा शुल्क के दायरे में वर्ष 1994-95 में लाया गया जो वस्तुओं और सेवाओं के अंतर को कम करता है। हाल के वर्षों में यह राजस्व प्राप्ति का बहुत बड़ा स्रोत है। सेवा शुल्क के दायरे में आने वाली सेवाओं की संख्या 1994-95 में 3 थी, जो बढ़कर 2007-08 में 100 हो गई है।

केंद्र सरकार के गैर-कर राजस्व में मुख्य रूप से, केंद्र सरकार द्वारा जारी ऋण से ब्याज प्राप्तियाँ, सरकार के निवेश से प्राप्त लाभांश और लाभ तथा सरकार द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं से प्राप्त शुल्क और अन्य प्राप्तियाँ आदि शामिल हैं। इसके अंतर्गत विदेशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रदान किये जाने वाले नकद सहायता अनुदान भी शामिल किए जाते हैं।

राजस्व प्राप्ति के आकलन में वित्त विधेयक[2] में किये गए कर प्रस्ताव के प्रभावों पर विचार किया जाता है।

(b) राजस्व व्यय: राजस्व व्यय केन्द्र सरकार का भौतिक या वित्तीय परिसंपत्तियों के सृजन के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों के लिए किया गया व्यय है। राजस्व व्यय का संबंध सरकारी विभागों के सामान्य कार्यों तथा विविध सेवाओं, सरकार द्वारा उपगत ऋण ब्याज अदायगी, राज्य सरकारों और अन्य दलों को प्रदत्त अनुदानों (यद्यपि कुछ अनुदानों से परिसंपत्तियों का सृजन भी हो सकता है) आदि पर किये गए व्यय से होता है।

बजटीय दस्तावेज में कुल राजस्व व्यय को **योजनागत** और **गैर-योजनागत व्यय** मदों में बाँटा जाता है। योजनागत राजस्वगत व्यय का संबंध केंद्रीय योजनाओं (पंचवर्षीय योजनाओं) और राज्यों तथा संघ-शासित प्रदेशों की योजना के लिए केंद्रीय सहायता से है। गैर-योजनागत व्यय राजस्व व्यय का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसमें सरकार द्वारा प्रदत्त सामान्य, आर्थिक और सामाजिक सेवाओं पर व्यापक व्यय शामिल होते हैं। गैर-योजनागत व्यय के प्रमुख मदों में ब्याज अदायगी, प्रतिरक्षा सेवाएँ, उपदान, वेतन और पेंशन आते हैं।

बाज़ार ऋणों, बाह्य ऋणों और विविध आरक्षित निधियों पर ब्याज अदायगी गैर-योजनागत राजस्व व्यय का एक सबसे बड़ा घटक होता है। प्रतिरक्षा व्यय गैर-योजनागत व्यय का दूसरा सबसे बड़ा घटक है और इस अर्थ में यह प्रतिबद्ध व्यय है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित इस मद में अधिक कटौती का क्षेत्र अत्यल्प है। उपदान एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत उपकरण है, जिसका उद्देश्य कल्याण में वृद्धि करना है। सार्वजनिक वस्तुओं और शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी सेवाओं का अल्पमूल्यन के माध्यम से अव्यक्त उपदान प्रदान करने के अतिरिक्त सरकार निर्यात, ऋण पर ब्याज, खाद्य पदार्थ और उर्वरकों जैसे मदों पर व्यक्त रूप से भी उपदान प्रदान करती है। सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में उपदानों की मात्रा 1990-91 में 1.7 प्रतिशत से घटकर 2004-05 में 1.45 प्रतिशत तथा 2006-07 में 1.3 प्रतिशत हो गयी।

5.1.2 पूँजीगत लेखा

पूँजीगत बजट केंद्रीय सरकार की परिसंपत्तियों के साथ-साथ दायित्वों से संबंधित राशियों का वह लेखा है, जो पूँजी में होने वाले परिवर्तनों का ध्यान रखता है। इसके अंतर्गत सरकार की पूँजीगत प्राप्तियाँ एवं पूँजीगत व्यय शामिल होती हैं। यह सरकार की *वित्तीय आवश्यकताओं* तथा उनके *वित्तीय प्रबंधन* को दर्शाते हैं।

(a) पूँजीगत प्राप्तियाँ: सरकार की वे सभी प्राप्तियाँ जो दायित्वों का सृजन या वित्तीय परिसंपत्तियों को कम करती हैं पूँजीगत प्राप्तियाँ कहलाती हैं। पूँजीगत प्राप्तियों की मुख्य मदें सार्वजनिक कर्ज़ है, जिसे सरकार द्वारा जनता से लिया जाता है। इसे बाज़ार ऋण-ग्रहण कहते हैं। इसमें ट्रेज़री बिल की

[2] वित्त विधेयक जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ ही प्रस्तुत किया जाता है, के अंतर्गत बजट में किए गए कर प्रस्तावों को लागू करने, निरस्त करने, छूट देने, बदलने अथवा विनियमन संबंधी विषयों का विस्तार से वर्णन होता है।

बिक्री के द्वारा रिज़र्व बैंक और व्यावसायिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से सरकार द्वारा ऋण-ग्रहण, विदेशी सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से प्राप्त कर्ज़ और केंद्र सरकार द्वारा प्रदत्त ऋणों की वसूली आदि शामिल हैं। अन्य मदों में लघु बचतें (डाकघर बचत खाता, राष्ट्रीय बचत प्रमाण-पत्र इत्यादि), भविष्य निधि और सार्वजनिक उपक्रम (पी.एस.यू.) के शेयरों की बिक्री से प्राप्त निवल प्राप्तियाँ हैं। इसे सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रम का विनिवेश कहा जाता है।

(b) पूँजीगत व्यय: ये सरकार के वे व्यय हैं जिसके परिणामस्वरूप भौतिक या वित्तीय परिसंपत्तियों का सृजन या वित्तीय दायित्वों में कमी होती है। पूँजीगत व्यय के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण, भवन निर्माण, मशीनरी, उपकरण, शेयरों में निवेश और केंद्र सरकार के द्वारा राज्य सरकारों एवं संघ-शासित प्रदेशों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा अन्य पक्षों को प्रदान किये गए ऋण और अग्रिम संबंधी व्ययों को शामिल किया जाता है। पूँजीगत व्यय को भी बजट दस्तावेज में **योजना** और **गैर-योजनागत व्यय**[3] के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसे तालिका 5.1 में क्रम संख्या 6 में दिखाया गया है। वित्त व्यय के अंतर्गत योजना एवं गैर-योजना में अंतर स्थापित किया गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार, योजनागत पूँजीगत व्यय का संबंध राजस्व-व्यय के समान, केंद्रीय योजना और राज्य तथा संघ-शासित प्रदेशों की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता से होता है। गैर-योजनागत पूँजीगत व्यय में सरकार द्वारा प्रदत्त विविध सामान्य, सामाजिक और आर्थिक सेवाओं पर व्यय शामिल होते हैं।

बजट प्राप्तियों और व्ययों का एक विवरण मात्र नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत के कारण बजट एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नीति का विवरण बन गया है। बजट के संबंध में तर्क दिया जाता है कि यह देश की अर्थव्यवस्था के स्वरूप का प्रतिबिंब है तथा इससे देश के आर्थिक जीवन का स्वरूप निर्धारित होता है। वित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003[4] के द्वारा बजट के साथ तीन नीतिगत विवरणों का होना अनिवार्य है। मध्यावधि वित्तीय नीति विवरण में विशिष्ट वित्तीय सूचकों के लिए तीन वर्षीय चल लक्ष्य रहता है, जो इस बात का परीक्षण करता है कि क्या धारणीय आधार पर राजस्व प्राप्तियों के माध्यम से राजस्व व्यय किया जा सकता है और बाज़ार ऋण-ग्रहण सहित पूँजीगत प्राप्तियों का उपयोग कितनी उत्पादकता के रूप में किया जा रहा है। राजकोषीय नीति संबंधी विवरण वर्तमान नीतियों का परीक्षण और महत्त्वपूर्ण वित्तीय उपायों में किसी प्रकार के विचलन के औचित्य का निर्धारण करते हुए वित्तीय क्षेत्र में सरकार के प्राथमिकताओं को तय करता है। समष्टि अर्थशास्त्रीय रूपरेखा संबंधी विवरण में सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर, केंद्र सरकार के वित्तीय संतुलन और बाह्य संतुलन[5] के संबंध में अर्थव्यवस्था के भविष्य का आकलन किया जाता है।

---

[3] इस प्रकार के वर्गीकरण को पेश करने के विरुद्ध एक स्थिति यह है कि नई योजना/परियोजना की शुरुआत करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति वर्तमान क्षमता एवं सेवा स्तरों के रख-रखाव का अनदेखा करती है। गैर-योजना व्यय में निहित अपव्यय के कारण यह जानकारी अप्रत्यक्ष हो जाती है जो शिक्षा और स्वास्थ्य (जहाँ वेतन की समाविष्टि एक महत्वपूर्ण तत्त्व है) जैसे सामाजिक क्षेत्रकों के बीच संसाधन के बँटवारे पर विपरीत प्रभाव डालती है।

[4] बॉक्स 5.1 सरकारी वित्त के लिए विधि निर्माण और उसके तात्पर्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है।

[5] वर्ष 2005-06 के भारतीय बजट में बजटीय विनिधान की लिंग संवेदनशीलता को विशेष महत्त्व देते हुए एक विवरण प्रस्तुत किया गया है। लिंगगत बजट सरकार की लिंग संबंधी वचनबद्धताओं को बजटीय वचनबद्धता में रूपांतरित करने का एक ओर सार्थक प्रयास है, जिसमें स्त्री सशक्तिकरण के लिए विशेष पहल और स्त्रियों के लिए विभाजित संसाधनों के उपयोग का परीक्षण और सार्वजनिक व्यय के प्रभाव तथा महिलाओं के लिए सरकार की नीतियाँ शामिल हैं। वर्ष 2006-07 के बजट में पूर्व बजट विवरण को विस्तार प्रदान किया गया है।

तालिका 5.1: **केंद्रीय सरकार की प्राप्तियाँ और व्यय, 2008-09**

	(सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)
1. राजस्व प्राप्तियाँ (a + b)	10.6
(a) कर राजस्व (राज्यों के निवल अंश)	8.8
(b) गैर-कर राजस्व	1.8
2. राजस्व खर्च	15.1
जिसका	
(a) ब्याज अदायगियाँ	3.6
(b) प्रमुख उपदान	2.3
(c) रक्षा व्यय	1.4
3. राजस्व घाटा (2 – 1)	4.5
4. पूँजीगत प्राप्तियाँ	6.4
जिसका	
(a) ऋण वसूली	0.2
(b) अन्य प्राप्तियाँ (मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश)	0.0
(c) ऋण ग्रहण एवं अन्य दायित्व	6.1
5. पूँजीगत खर्च	1.8
6. कुल खर्च [2 + 5 = 6(a) + 6(b)]	16.9
(a) योजनागत व्यय	5.3
(b) गैर-योजनागत व्यय	11.6
7. राजकोषीय घाटा	6.1
8. प्राथमिक घाटा [7 – 2 = (a)]	2.5

स्रोत: *आर्थिक सर्वेक्षण 2008-09*

5.1.3 सरकारी घाटे की माप

जब सरकार राजस्व प्राप्ति से अधिक व्यय करती है, तो इस स्थिति को बजटीय घाटा[6] कहते हैं। इस घाटे की पूर्ति के लिए कई उपाय किए जाते हैं, जिनका किसी अर्थव्यवस्था पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

(a) राजस्व घाटा: राजस्व घाटा सरकार की राजस्व प्राप्तियों के ऊपर राजस्व व्यय के अधिशेष को बताता है।

राजस्व घाटा = राजस्व व्यय – राजस्व प्राप्तियाँ

तालिका 5.1 में क्रम संख्या 3 में यह दिखाया गया है कि वर्ष 2008-09 में राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 4.5 प्रतिशत था। (15.1-10.6) राजस्व घाटे में केवल उन्हीं लेन-देनों को शामिल किया जाता है, जिनसे सरकार के वर्तमान आय और व्यय पर प्रभाव पड़ता है। जब

[6] औपचारिक रूप से यह कुल प्राप्तियों (राजस्व और पूँजीगत दोनों) के ऊपर कुल व्यय (राजस्व और पूँजीगत दोनों) के अधिशेष को बताता है। वर्ष 1997-98 के बजट से भारत में बजटीय घाटा को प्रदर्शित करने की परंपरा को छोड़ दिया गया है।

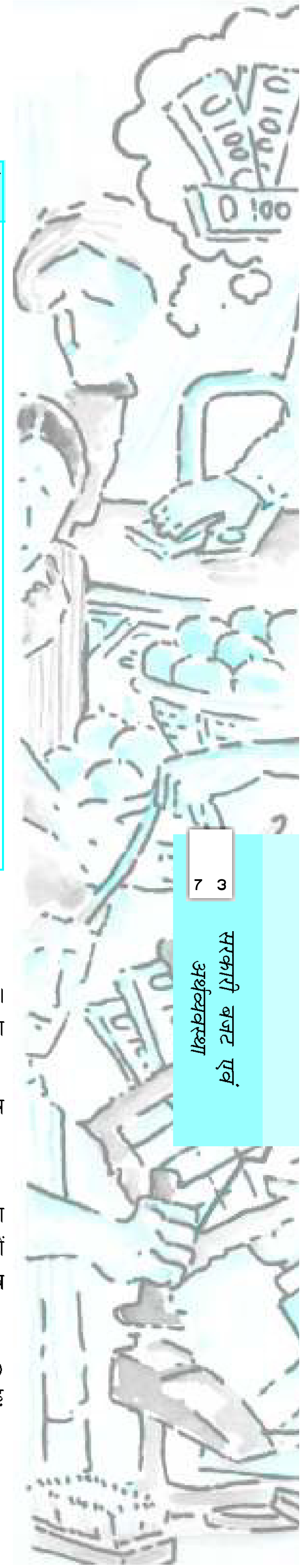

सरकार को राजस्व घाटा प्राप्त होता है, तो इससे संकेत मिलता है कि सरकार निर्बचत कर रही है और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की बचतों का उपयोग अपने उपभोग संबंधी व्यय के कुछ हिस्सो को पूरा करने के लिए कर रही है। इस स्थिति में, सरकार को न केवल अपने निवेश के लिए अपितु अपने उपभोग संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी ऋण-ग्रहण करना पड़ेगा। इससे ऋणों और ब्याज दायित्वों का निर्माण होगा और सरकार को अंततोगत्वा अपने व्यय में भी कटौती करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। चूँकि राजस्व व्यय का एक बड़ा भाग व्यय के लिए प्रतिबद्ध होता है, इसीलिए इसमें कटौती नहीं की जाएगी। बहुधा सरकार उत्पादक पूँजीगत व्यय अथवा कल्याण संबंधी व्यय में कटौती करती है। इसके परिणामस्वरूप विकास की गति धीमी होती है और कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(b) राजकोषीय घाटा: राजकोषीय घाटा सरकार के कुल व्यय और ऋण-ग्रहण को छोड़कर कुल प्राप्तियों का अंतर है।

सकल राजकोषीय घाटा = कुल व्यय – (राजस्व प्राप्तियाँ + गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ)

गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ ऐसी प्राप्तियाँ हैं, जो ऋण-ग्रहण के अंतर्गत नहीं आती हैं, इसीलिए इससे ऋण में वृद्धि नहीं होती है। इसके उदाहरण हैं–ऋणों की वसूली और सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री से प्राप्त राशि। तालिका 5.1 में हम देखते हैं कि गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ सकल घरेलू उत्पाद के 0.3 प्रतिशत के बराबर है। यह कुल पूँजीगत प्राप्तियों में से उधार और अन्य दायित्वों को घटाकर (6.4-6.1) प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार, राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 6.1 प्रतिशत प्रतीत होता है। राजकोषीय घाटे का वित्त पोषण ऋण-ग्रहण के द्वारा ही किया जायेगा। अत: इससे सभी स्रोतों से सरकार के ऋण-ग्रहण संबंधी आवश्यकताओं का पता चलता है। वित्तीय पक्ष से,

सकल राजकोषीय घाटा = निवल घरेलू ऋण-ग्रहण + भारतीय रिज़र्व बैंक से ऋण-ग्रहण + विदेशों से ऋण-ग्रहण।

निवल घरेलू ऋण-ग्रहण के अंतर्गत ऋण उपकरणों (उदाहरणार्थ, विविध लघु बचत योजनाएँ) के माध्यम से सीधे जनता से प्राप्त ऋण और वैधानिक तरलता अनुपात (एस.एल.आर.) के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक बैंकों से प्राप्त ऋण आते हैं। सकल राजकोषीय घाटा अर्थव्यवस्था के स्थायित्व और सार्वजनिक क्षेत्र की सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था के लिए एक निर्णायक चर है। इस प्रकार सकल राजकोषीय घाटा को मापा जा सकता है। जैसा कि ऊपर देखा गया है राजस्व घाटा राजकोषीय घाटा का एक भाग है (राजकोषीय घाटा = राजस्व घाटा + पूँजीगत व्यय – गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ)। राजकोषीय घाटे में राजस्व घाटे का एक बड़ा अंश यह दर्शाता है कि उधार का एक बड़ा हिस्सा उपभोग व्यय के लिए उपयोग किया जाता है न कि निवेश के लिए।

(c) प्राथमिक घाटा: ध्यातव्य है कि सरकार की ऋण-ग्रहण आवश्यकताओं में संचित ऋण पर दायित्व शामिल होते हैं। प्राथमिक घाटे के माप का लक्ष्य वर्तमान राजकोषीय असंतुलन पर प्रकाश डालना है। वर्तमान व्यय के राजस्व से अधिक होने के कारण होने वाले ऋण-ग्रहण के आकलन के लिए हम प्राथमिक घाटे की परिकलन करते हैं। सरल भाषा में यह वह शेष है, जो राजकोषीय घाटे में से ब्याज अदायगी को घटाने पर प्राप्त होता है।

सकल प्राथमिक घाटा = सकल राजकोषीय घाटा – निवल ब्याज दायित्व

निवल ब्याज दायित्वों में निवल घरेलू परिदाय पर सरकार द्वारा प्राप्त ब्याज प्राप्तियों से ब्याज अदायगी करने पर शेष राशि आती है।

5.2 राजकोषीय नीति

कीन्ज़ की पुस्तक द *जेनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लॉयमेंट इंटरेस्ट एंड मनी* में प्रतिपादित विचारों में मुख्य रूप से यह भी है कि सरकार की राजकोषीय नीति का प्रयोग निर्गत और रोजगार के स्तर को स्थिर करने के लिए किया जाना चाहिए। व्यय और करों में परिवर्तनों के माध्यम से सरकार निर्गत और आय में वृद्धि करने का प्रयास करती है, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के उच्चावचन को स्थिर करना होता है। इस प्रक्रिया में राजकोषीय नीति से एक *आधिक्य* (जब कुल प्राप्तियाँ व्यय से अधिक होती हैं) अथवा एक *संतुलित बजट* (जब व्यय और प्राप्तियाँ बराबर हों) के बजाय एक घाटे के बजट का सृजन होता है। आय निर्धारण के पूर्व विश्लेषण में सरकारी क्षेत्र को शामिल करने से उत्पन्न प्रभावों का अध्ययन हम आगे करेंगे।

राजकोषीय नीति अपने तीन मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने की कैसे कोशिश करती है?

सरकार दो विशिष्ट विधियों से प्रत्यक्ष रूप से संतुलित आय के स्तर पर प्रभाव डालती है: सरकार द्वारा क्रय की गयी वस्तुओं और सेवाओं (G) से समस्त माँग में वृद्धि होती है और करों तथा अंतरणों से आय (Y) और प्रयोज्य आय (YD)–परिवार के उपभोग और बचत के लिए उपलब्ध आय (D)–का संबंध प्रभावित होता है।

सर्वप्रथम हम करों को लें। हम कल्पना करते हैं कि सरकार जो कर लगाती है, वह आय पर निर्भर नहीं करता है। इसे *इकमुश्त* कर कहते हैं, जो T के बराबर होता है।

हम कल्पना करते हैं कि पूरे विश्लेषण में सरकार एक नियत मात्रा में अंतरण $\bar{TR}$ करती है। अब उपभोग फलन इस प्रकार है,

$$C = \bar{C} + cYD = \bar{C} + c(Y - T + \bar{TR}) \text{ यहाँ } YD = \text{प्रयोज्य आय} \quad (5.1)$$

हम जानते हैं कि करों से प्रयोज्य आय और उपभोग में कमी आती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति 1 लाख रुपये अर्जित करता है और उसे 10,000 रुपये कर अदा करना पड़ता है, तो उसकी प्रयोज्य आय और उस व्यक्ति की आय जो 90,000 रुपये अर्जित करता है किंतु कोई कर अदा नहीं करता है, के बराबर होगी। सरकार को शामिल करने पर समस्त माँग की परिवर्धित परिभाषा होगी:

$$AD = \bar{C} + c(Y - T + \bar{TR}) + I + G \quad (5.2)$$

ग्राफीय रूप में, हम पाते हैं कि इकमुश्त कर से उपभोग अनुसूची समानांतर रूप से नीचे की ओर शिफ्ट होती है और इस कारण समस्त माँग वक्र में भी इसी तरह का शिफ्ट होता है। उत्पाद बाज़ार में आय निर्धारण की शर्तें Y= समस्त माँग होगी, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{C} + c(Y - T + \bar{TR}) + I + G \quad (5.3)$$

आय के संतुलन स्तर का हल प्राप्त करने पर हमें प्राप्त होगा,

$$Y^* = \frac{1}{1-c}(\bar{C} - cT + c\bar{TR} + I + G) \quad (5.4)$$

5.2.1 सरकारी व्यय में परिवर्तन

अब हम करों को स्थिर रखकर सरकारी खरीद (G) में वृद्धि के प्रभावों पर विचार करें। जब T अर्थात इकमुश्त कर से G अर्थात सरकारी खरीद अधिक होती है, तो सरकार घाटे का वहन करती है। क्योंकि G समस्त व्यय का घटक है। योजनाबद्ध समस्त व्यय में वृद्धि होगी। समस्त माँग अनुसूची में ऊपर की ओर AD' तक शिफ्ट होती है। निर्गत के प्रारंभिक स्तर पर माँग, पूर्ति से अधिक होती है और फर्म उत्पादन में विस्तार करती है। नया संतुलन E' पर स्थापित होता है। गुणक युक्ति (अध्याय 4 में वर्णित) कार्य करती है। सरकारी व्यय गुणक निम्नवत होता है

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c}\Delta G \quad (5.5)$$

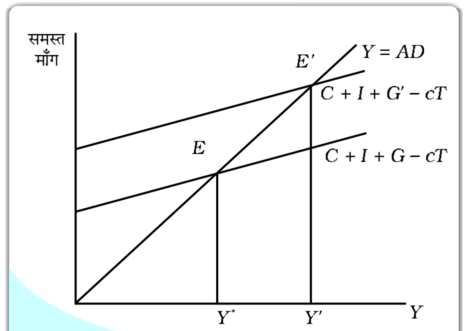

रेखाचित्र 5.1

उच्चतर सरकारी व्यय का प्रभाव

या

$$\frac{\Delta Y}{\Delta G} = \frac{1}{1-c} \quad (5.6)$$

रेखाचित्र 5.1 में सरकारी व्यय G से बढ़कर G' हो जाता है और इस कारण संतुलन आय Y से बढ़कर Y' हो जाती है।

5.2.2 करों में परिवर्तन

हम पाते हैं कि आय के प्रत्येक स्तर पर करों में कटौती से प्रयोज्य आय ($Y–T$) में वृद्धि होती है। फलस्वरूप समस्त व्यय अनुसूची में ऊपर की ओर शिफ्ट होता है जो, करों में कमी का अंश c होता है। इसे रेखाचित्र 5.2 में दर्शाया गया है।

समीकरण 5.3 से हमें प्राप्त होता है–

$$\Delta Y^{*} = \frac{1}{1-c}(-c)\,\Delta T \quad (5.7)$$

कर गुणक

$$= \frac{\Delta Y}{\Delta T} = \frac{-c}{1-c} \quad (5.8)$$

करों में कटौती (वृद्धि) से उपभोग और निर्गत में *वृद्धि (कमी)* होती है क्योंकि कर गुणक एक ऋणात्मक गुणक होता है। समीकरण 5.6 और 5.8 की तुलना करने पर हम पाते हैं कि सरकार के व्यय गुणक की तुलना में कर गुणक का निरपेक्ष मूल्य अपेक्षाकृत अल्प होता है। क्योंकि सरकारी व्यय में वृद्धि से कुल व्यय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जबकि गुणक प्रक्रिया में करों का प्रवेश प्रयोज्य

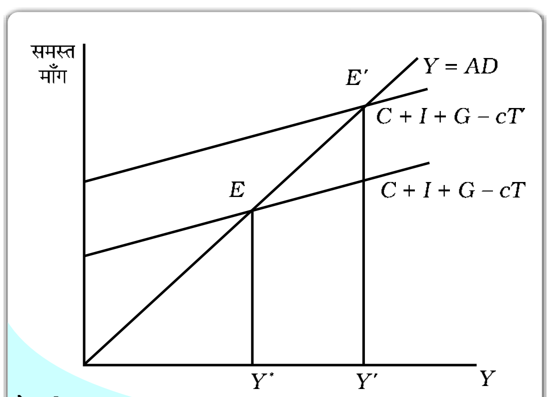

रेखाचित्र 5.2

करों में कटौती का प्रभाव

लाचार व्यक्ति क्यों रो रहा है? इसके आँसू पोंछने के कुछ उपाय बताएँ।

आय पर उनके प्रभाव के माध्यम से होता है, जिसका कि परिवार के उपभोग (जो कुल व्यय का अंश है) पर प्रभाव पड़ता है। अतः करों में ΔT की कटौती से उपभोग और इस प्रकार कुल व्यय में पहले $c\Delta T$ की वृद्धि होती है। दोनों गुणकों के अंतर को जानने के लिए निम्नलिखित उदाहरण पर विचार कीजिए।

उदाहरण 5.1

मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.8 है। तब सरकारी व्यय का गुणक $\frac{1}{1-c} = \frac{1}{1-0.8} = \frac{1}{0.2}$ = 5 होता है। सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि के लिए संतुलन आय में 500 ($\frac{1}{1-c}\Delta G = 5 \times 100$) की वृद्धि होगी। कर गुणक $\frac{-c}{1-c} = \frac{-0.8}{1-0.8} = \frac{-0.8}{0.2} = -4$ है। 100 ($\Delta T = -100$) की कर कटौती से संतुलन आय में 400 ($\frac{-c}{1-c}\Delta T = -4 \times -100$) की वृद्धि होगी। अतः इस स्थिति में संतुलन आय में वृद्धि G के अंतर्गत होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप हुई वृद्धि से कम होती है।

वर्तमान ढाँचे में यदि हम सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के भिन्न-भिन्न मूल्यों को लें और दोनों गुणकों के मूल्यों की गणना करें, तो हम पाएँगे कि सरकारी व्यय गुणक की तुलना में कर गुणक का निरपेक्ष मूल्य हमेशा इकाई कम होता है। इसके रोचक निहितार्थ हैं। यदि सरकारी व्यय में वृद्धि के बराबर ही करों में वृद्धि होती है ताकि बजट संतुलित रहे, तो निर्गत में सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा के बराबर वृद्धि होगी। दोनों नीतिगत गुणकों को जोड़ने पर प्राप्त होता है,

$$\text{संतुलित बजट गुणक} = \frac{\Delta Y^*}{\Delta G} = \frac{1}{1-c} + \frac{-c}{1-c} = \frac{1-c}{1-c} = 1 \qquad (5.9)$$

इकाई संतुलित बजट गुणक से यह संकेत मिलता है कि सरकार के वित्त में 100 की वृद्धि से करों में 100 की वृद्धि होने पर आय में भी ठीक 100 की वृद्धि होती है। इसे उदाहरण 1 में देखा जा सकता है, कि जब सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि होती है, तो निर्गत में 500 की वृद्धि होती है। कर में वृद्धि से आय में 400 की *कमी* होती है और आय में निवल वृद्धि 100 के बराबर होती है। संतुलित आय का तात्पर्य उस अंतिम आय से है, जिसे पर्याप्त लंबी अवधि में गुणक द्वारा अपने सभी चक्र पूरे करने के बाद प्राप्त करते हैं। हम पाते हैं कि निर्गत में ठीक उतनी ही वृद्धि होती है,

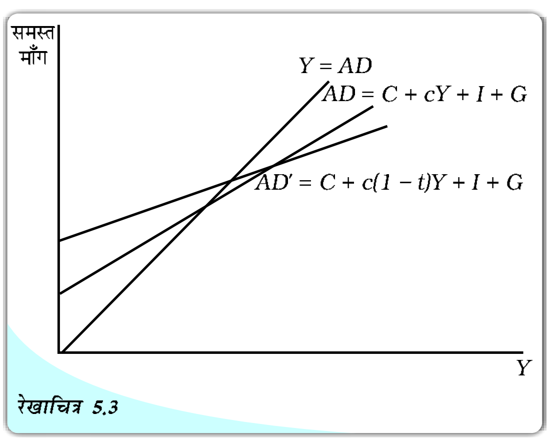

रेखाचित्र 5.3

सरकार और समस्त माँग (आनुपातिक कर समस्त माँग (AD) अनुसूची को अपेक्षाकृत सपाट बनाता है।)

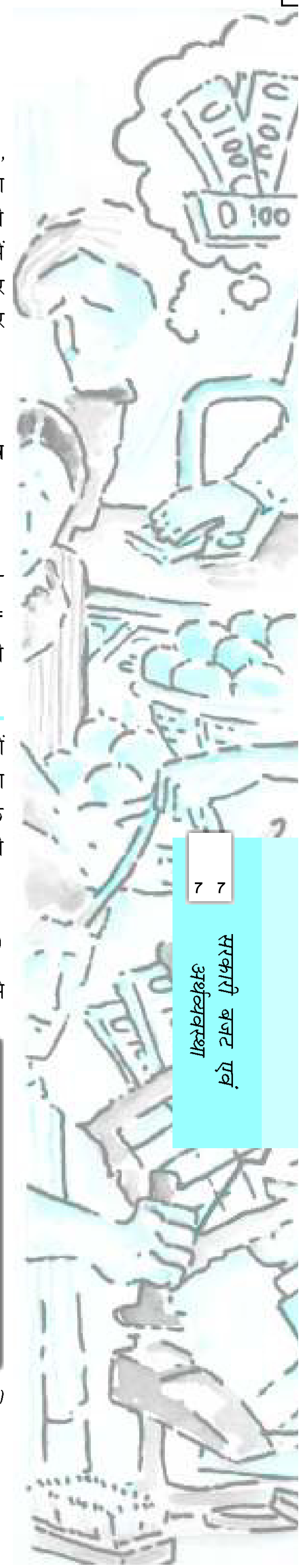

जितनी वृद्धि सरकारी व्यय में। यहाँ करों में वृद्धि के कारण कोई प्रेरित उपभोग व्यय नहीं होता है। यह देखने के लिए कि यहाँ क्या होना चाहिए, हम गुणक प्रक्रम का परीक्षण करते हैं। सरकारी व्यय में एक निश्चित मात्रा में वृद्धि से आय प्रत्यक्ष रूप से उसी मात्रा में बढ़ती है और फिर अप्रत्यक्ष रूप से गुणक शृंखला के माध्यम से आय में वृद्धि इस प्रकार होती है:

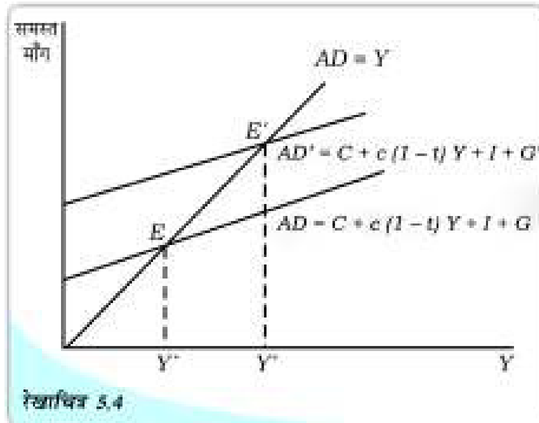

रेखाचित्र 5.4

सरकारी व्यय में वृद्धि (आनुपातिक करों से)

$$\Delta Y = \Delta G + c\Delta G + c^2\Delta G + \ldots = \Delta G\,(1 + c + c^2 + \ldots) \qquad (5.10)$$

किंतु कर वृद्धि का गुणक प्रक्रम में तभी प्रवेश होता है, जब प्रयोज्य आय में कटौती से उपभोग में कमी करों में c गुणा कटौती के बराबर होती है। अत: कर वृद्धि का आय पर प्रभाव इस प्रकार प्राप्त होता है:

$$\Delta Y = -c\Delta T - c^2\Delta T + \ldots = -\Delta T\,(c + c^2 + \ldots) \qquad (5.11)$$

दोनों के अंतर से आय पर निवल प्रभाव प्राप्त होता है। चूँकि $\Delta G = \Delta T$, (5.10) और (5.11) से हमें $\Delta Y = \Delta G$ प्राप्त होता है, अर्थात आय में उतनी ही मात्रा में वृद्धि होती है जितनी कि सरकारी व्यय में और संतुलित बजट गुणक इकाई के बराबर होता है। इस गुणक को समीकरण 5.3 से भी निम्न प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता है।

$$\Delta Y = \Delta\bar{G} + c\,(\Delta Y - \Delta T) \text{ चूँकि निवेश में परिवर्तन नहीं होता है } (\Delta I = 0) \qquad (5.12)$$

चूँकि $\Delta\bar{G} = \Delta T$ इसीलिए हम पाते हैं कि,

$$\frac{\Delta Y}{\Delta G} = \frac{1-c}{1-c} = 1 \qquad (5.13)$$

आनुपातिक करों की स्थिति: अधिक यथार्थ मान्यता यह होगी कि सरकार एक नियत भिन्न t के रूप में करों से आय संग्रह करती है ताकि $T = tY$ हो। *आनुपातिक करों* के साथ उपभोग फलन निम्नांकित है:

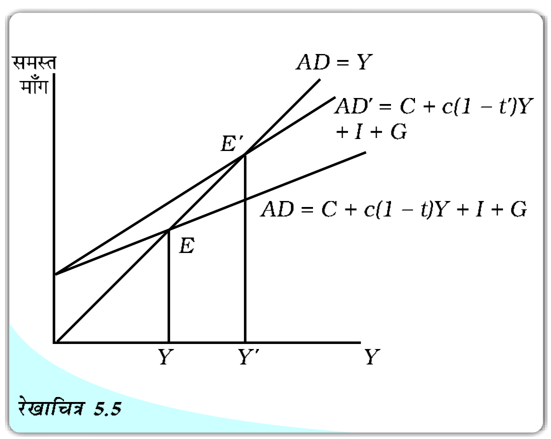

रेखाचित्र 5.5

आनुपातिक कर के दर में कटौती का प्रभाव

$$C = \bar{C} + c\,(Y - tY + \overline{TR})$$

$$= \bar{C} + c\,(1 - t)\,Y + c\overline{TR} \qquad (5.14)$$

उल्लेखनीय है कि आनुपातिक करों से आय के प्रत्येक स्तर पर न केवल उपभोग निम्न होता है, बल्कि उपभोग फलन की प्रवणता भी निम्न होती है। आय से सीमांत

उपभोग प्रवृत्ति $c\,(1-t)$ तक गिरती है। नई समस्त माँग अनुसूची AD' का अंत:खंड बड़ा किंतु सपाट होता है।

अब हमारे पास

$$AD = \bar{C} + c\,(1-t)Y + c\overline{TR} + I + G = \bar{A} + c\,(1-t)Y \qquad (5.15)$$

जहाँ $\bar{A}$ = स्वायत्त व्यय है और $\bar{C} + c\overline{TR} + I + G$ के बराबर होता है। उत्पाद बाज़ार में आय निर्धारण की शर्त $Y = AD$ होती है, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{A} + c\,(1-t)Y \qquad (5.16)$$

आय के संतुलन स्तर के लिए हल करने पर

$$Y^* = \frac{1}{1-c(1-t)}\bar{A} \qquad (5.17)$$

ताकि गुणक निम्नांकित हो

$$\frac{\Delta Y}{\Delta \bar{A}} = \frac{1}{1-c(1-t)} \qquad (5.18)$$

इकमुश्त कर की स्थिति में गुणक के मूल्य से इसकी तुलना करने पर हमें अल्प मूल्य प्राप्त होता है। इकमुश्त कर की स्थिति में सरकारी व्यय में वृद्धि के फलस्वरूप जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग में आय में वृद्धि की c गुणा वृद्धि होती है। आनुपातिक कर के साथ उपभोग में कम वृद्धि होती है, $(c - ct = c\,(1-t))$ गुणा आय में वृद्धि होती है।

G में परिवर्तन के लिए अब गुणक निम्नांकित होगा

$$\Delta Y = \Delta \bar{G} + c\,(1-t)\Delta Y \quad (5.19)$$

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c(1-t)}\Delta \bar{G} \qquad (5.20)$$

आय में Y^* से Y' की वृद्धि होती है।

परिणामस्वरूप करों में ह्रास का प्रभाव पड़ता है जिससे कि उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। AD वक्र में ऊपर की ओर AD' तक शिफ्ट होता है। आय के प्रारंभिक स्तर पर वस्तु की समस्त माँग निर्गत से अधिक होती है, क्योंकि कर में कटौती के कारण उपभोग में वृद्धि होती है। अब आय का नया उच्च स्तर Y' है।

उदाहरण 5.2

उदाहरण 5.1 में यदि हम कर की दर 0.25 लेते हैं, तो हम पाते हैं कि आय में प्रत्येक इकाई की वृद्धि के लिए उपभोग में पहले के 0.80 के स्थान पर 0.60 $(c\,(1-t) = 0.8 \times 0.75)$ की वृद्धि होगी। अत: पहले की तुलना में उपभोग में कम वृद्धि होगी। सरकारी व्यय गुणक $\frac{1}{1-c(1-t)} = \frac{1}{1-0.6} = \frac{1}{0.4} = 2.5$ होगा जो इकमुश्त करों से प्राप्त राशि की तुलना में कम है। यदि सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि हो, तो निर्गत में सरकारी व्यय में वृद्धि की गुणक गुणा वृद्धि होगी अर्थात $2.5 \times 100 = 250$। यह इकमुश्त करों की दशा में निर्गत में वृद्धि से कम है।

अत: आनुपातिक आय कर एक **स्वत:स्थिरक** अर्थात आघात अवशोषक की प्रकृति के रूप में कार्य करता है, क्योंकि इससे सकल घरेलू उत्पाद में उच्चावचन के प्रति प्रयोज्य आय और उपभोक्ता का व्यय कम संवेदनशील होता है। जब सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होती है तो प्रयोज्य

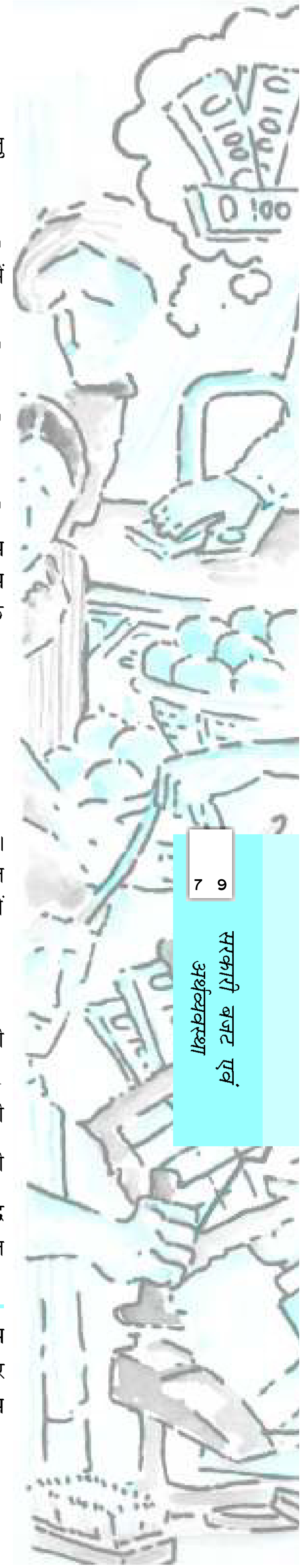

आय भी बढ़ती है किंतु सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से कम, क्योंकि इसका एक अंश करों के रूप में निकल जाता है। इससे उपभोग व्यय में उपरिमुख उच्चावचन को सीमित करने में मदद मिलती है। अमंदी के दौरान जब सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट आती है, तो प्रयोज्य आय कम तेज़ी से गिरती है और उपभोग में उतनी गिरावट नहीं आती है जितनी कर दायित्व नियत होने की स्थिति में आनी चाहिए। इससे समस्त माँग में कमी आती है और अर्थव्यवस्था स्थिरीकरण की स्थिति में आ जाती है।

उल्लेखनीय है कि निवेश माँग में अनिच्छित शिफ्ट के प्रभावों को संतुलित करने में इन राजकोषीय नीतिगत उपकरणों में भिन्नता हो सकती है। अर्थात यदि निवेश में I_0 से I_1 तक गिरावट आती है, तो सरकारी व्यय में G_0 से G_1 की वृद्धि हो, ताकि स्वायत्त खर्च ($C + I_0 + G_0 = C + I_1 + G_1$) और संतुलन आय एक समान रहेगा। राजकोषीय प्रणाली के अंतर्निहित स्वत: स्थिरक अभिलक्षणों से अलग करने के लिए इसे **स्वनिर्णयगत राजकोषीय नीति** कहा जाता है, जो कि अर्थव्यवस्था को स्थिर करने की एक सुविचारित कार्रवाई है। जैसाकि पहले चर्चा की गई है कि आनुपातिक करों से अर्थव्यवस्था को उर्ध्वगामी और अधोगामी संचलन के विरुद्ध स्थिरीकरण की स्थिति में लाने में मदद मिलती है। कल्याण अंतरणों से भी आय स्थिरीकरण में मदद मिलती है। तेज़ी के दौरान जब रोज़गार अधिक होता है, उपभोग व्यय के ऊँचे स्तर पर स्थिरीकरण दबाव बनाने वाले अंतरण अदायगी के लिए वित्त प्रबंधन हेतु संग्रहित कर प्राप्तियों में वृद्धि होती है; विलोमत: चरम मंदी के दौरान इन कल्याणगत अदायगियों से उपभोग धारित रखने में मदद मिलती है। आगे, निजी क्षेत्र में भी *आभ्यंतरिक स्थिरक* होते हैं। अल्पकाल में आय में परिवर्तन के बावजूद निगम अपने लाभांश को कायम रखते हैं और परिवार अपने पूर्व जीवन-स्तर को बनाये रखने का प्रयास करता है। ये सभी किसी निर्णयकर्ता के द्वारा किसी भी कार्रवाई करने की आवश्यकता के बगैर आघात अवशोषक के रूप में कार्य करते हैं। अर्थात ये स्वत: कार्य करते हैं। किंतु आभ्यंतरिक स्थिरक से अर्थव्यवस्था में उच्चावचन को एक अंश मात्र की ही कमी होती है, शेष के लिए सुविचारित नीतिगत पहल किया जाना चाहिए।

अंतरण: हम कल्पना करते हैं कि वस्तुओं एवं सेवाओं पर सरकारी व्यय में वृद्धि के स्थान पर सरकार अंतरण अदायगी कुल राजस्व ($\bar{TR}$) में वृद्धि करती है। स्वायत्त व्यय $\bar{A}$, में $c\Delta \bar{TR}$ की वृद्धि होगी, अत: निर्गत में वृद्धि होगी, लेकिन यह वृद्धि सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा से कम होगी क्योंकि अंतरण अदायगी में किसी भी प्रकार की वृद्धि के एक अंश की बचत कर ली जाती है। अंतरण में परिवर्तन के लिए संतुलन आय में परिवर्तन निम्नवत् होगा:

$$\Delta Y = \frac{c}{1-c}\Delta TR \qquad (5.21)$$

अथवा

$$\frac{\Delta Y}{\Delta TR} = \frac{c}{1-c} \qquad (5.22)$$

उदाहरण 5.3

मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.75 है और कर इकमुश्त है। जब सरकारी खरीद में 20 की वृद्धि होती है, तो संतुलन आय में परिवर्तन $\Delta Y = \frac{1}{1-0.75}\Delta G = 4 \times 20 = 80$ के बराबर

होगा। जब करों में 30 की वृद्धि होगी, तो संतुलन आय में 90 के बराबर ह्रास होगा क्योंकि $\Delta Y = \frac{-0.75}{1-0.75}\Delta T = -3 \times 30 = -90$ अंतरण में 20 की वृद्धि से संतुलन आय में $\Delta Y = \frac{0.75}{1-0.75}\Delta TR = 3 \times 20 = 60$ वृद्धि होगी। इस प्रकार हम पाते हैं कि आय में वृद्धि सरकारी खरीद में वृद्धि की तुलना में कम होती है।

5.2.3 ऋण

बजटीय घाटे के लिए वित्त पोषण या तो करारोपण या ऋण अथवा नोट छापकर किया जाना चाहिए। सरकार प्राय: ऋण-ग्रहण पर आश्रित रहती है, जिसे सरकारी ऋण कहते हैं। घाटे और ऋण की संकल्पनाओं में निकट संबंध होता है। घाटे को एक *प्रवाह* के रूप में समझा जा सकता है, जिससे ऋण के *स्टॉक* में वृद्धि होती है। यदि सरकार का ऋण-ग्रहण एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष भी जारी रहता है, तो इससे ऋण का संचय होता है और सरकार को ब्याज के रूप में अधिक-से-अधिक भुगतान करना पड़ता है। इस ब्याज अदायगी से ऋण की मात्रा में स्वयं का योगदान होता है।

सरकारी ऋण की समुचित मात्रा का प्ररिप्रेक्ष्य: इस विषय के दो अंतर्संबंधित पहलू हैं। प्रथम, क्या सरकारी ऋण एक बोझ होता है और द्वितीय, ऋण के लिए वित्तीयन संबंधी विचार। ऋण बोझ की चर्चा करते समय यह ध्यान रहे कि सरकारी ऋण छोटे व्यापारी के ऋण के जैसा नहीं होता। अत: हमें समस्त रूप से विचार करना चाहिए न कि 'आंशिक' रूप से। किसी व्यापारी के विपरीत सरकार करारोपण के द्वारा और नोट छापकर संसाधनों में वृद्धि कर सकती है।

ऋण-ग्रहण कर सरकार उपभोग का बोझ कम करने के लिए अगली पीढ़ी को हस्तांतरित कर देती है, क्योंकि सरकार आज बंधपत्र जारी कर जनता से जो ऋण-ग्रहण करती है और उसका भुगतान लगभग 20 वर्ष बाद कर में वृद्धि करके कर सकती है। ये कर उन युवा आबादी पर लगाए जा सकते हैं, जिसने अभी काम करना आरंभ ही किया है। उनकी प्रयोज्य आय में ह्रास होगा और इस प्रकार उपभोग में भी कमी आयेगी। अत: ऐसा तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय बचत में गिरावट आयेगी। इसके अतिरिक्त, जनता से सरकार द्वारा ऋण-ग्रहण करने से निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध बचत में भी कमी आयेगी। इससे कुछ हद तक पूँजी निर्माण और वृद्धि में भी कमी आयेगी, क्योंकि ऋण को अगली पीढ़ी पर 'बोझ' के रूप में देखा जाता है। परंपरागत तौर पर यह तर्क दिया जाता है कि जब सरकार कर में कटौती करती है और घाटे का बजट बनाती है, तो उपभोक्ता अधिक व्यय करके कर से बचने वाली आय का इस्तेमाल करता है। संभव है कि लोग अल्पद्रष्टा हों और बजटीय घाटे के निहितार्थ को नहीं समझते हों। वे नहीं समझ सकते हैं कि भविष्य में किसी समय सरकार को ऋण और संचित ब्याज का भुगतान करने के लिए करों में वृद्धि करनी पड़ेगी। इस बात की समझ होने के बाद भी वे भविष्य में करों का बोझ अपने ऊपर पड़ने की आशा नहीं करते बल्कि उम्मीद करते हैं कि यह अगली पीढ़ियों पर पड़ेगा।

इसके विरुद्ध तर्क यह है कि उपभोक्ता अग्रदर्शी होते हैं और उनका व्यय न केवल वर्तमान आय पर निर्भर करता है बल्कि वे भविष्य में होने वाली आय की आशा से भी व्यय करते हैं। वे समझेंगे कि आज ऋण लेने से भविष्य में कर उच्च होगा। पुन: उपभोक्ता आने वाली पीढ़ी के बारे में भी चिंतित रहते हैं, क्योंकि आने वाली पीढ़ियाँ वर्तमान पीढ़ी के ही बच्चे या नाती-पोते होते हैं और परिवार जो इस संबंध में निर्णय लेने वाली एक इकाई है, हमेशा विद्यमान रहता है। वे अब अपनी बचत में वृद्धि करेंगे, जिससे सरकार की निर्बचत में वृद्धि पूर्ण रूप से प्रति संतुलित

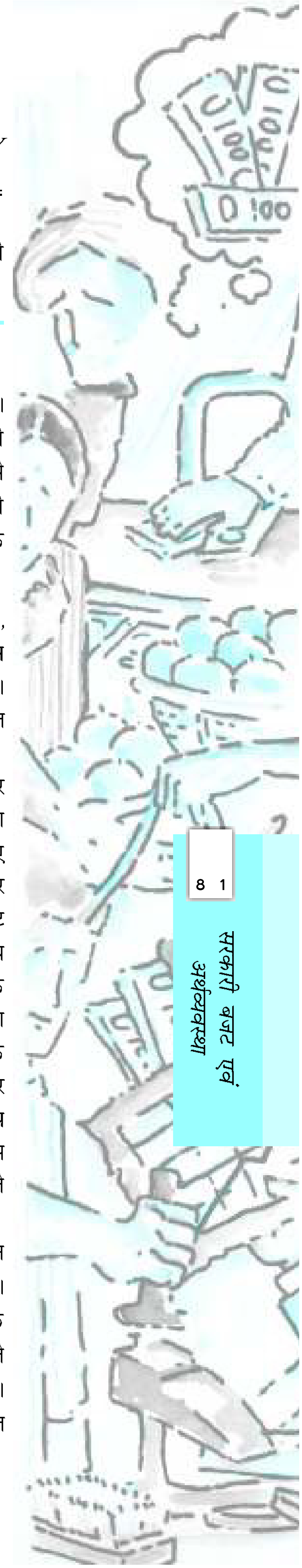

हो जाएगी और इससे राष्ट्रीय बचत में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस मत को **रिकार्डो समतुल्यता** कहते हैं। डेबिड रिकार्डो 19वीं शताब्दी के महान अर्थशास्त्रियों में से एक थे, जिन्होंने सबसे पहले कहा था कि उच्च घाटे की स्थिति में लोग अधिक बचत करते हैं। इसे 'समतुल्यता' कहते हैं, क्योंकि यह कहा जाता है कि करारोपण और ऋण-ग्रहण व्यय के लिए समतुल्य वित्त साधन हैं। आज जब सरकार ऋण लेकर व्यय में वृद्धि करती है जिस ऋण का भुगतान भविष्य में करों के द्वारा किया जाएगा, तो अर्थव्यवस्था पर इसका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा जैसाकि आज कर में वृद्धि के द्वारा वित्त की व्यवस्था करके सरकारी व्यय में वृद्धि करने से पड़ता है।

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि "ऋण से कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि हम अपने लिए ऋण-ग्रहण करते हैं।" यही कारण है कि यद्यपि दो पीढ़ियों के बीच संसाधनों का हस्तांतरण होता है, फिर भी क्रय-शक्ति राष्ट्र के अधीन ही रहती है। किंतु विदेशियों से लिया गया कोई भी ऋण एक बोझ होता है, क्योंकि हमें ब्याज अदायगी के अनुरूप वस्तुएँ विदेश भेजनी पड़ती हैं।

घाटे और ऋण के अन्य परिप्रेक्ष्य: घाटे की मुख्य आलोचनाओं में एक यह भी है कि घाटे सदैव स्फीतिकारी होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब सरकार व्यय में वृद्धि अथवा करों में कटौती करती है, तो समस्त माँग में वृद्धि होती है। फर्म अधिक मात्रा में, जितनी कि वर्तमान कीमत पर माँग की जाती है, उतने का उत्पादन करने में असमर्थ हो सकते हैं। इससे कीमत में वृद्धि हो जायेगी। किंतु यदि संसाधनों का उचित उपयोग न किया गया हो, तो माँग में कमी के कारण निर्गत को रोक लिया जाता है। उच्च राजकोषीय घाटे के साथ माँग ऊँची और निर्गत अत्यधिक होते हैं। इसीलिए इसके स्फीतिकारी होने की आवश्यकता नहीं होती है।

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि निवेश में कमी से निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध बचत की मात्रा में कमी होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि सरकार अपने घाटे की पूर्ति के लिए बंधपत्र जारी कर निजी लोगों से ऋण–ग्रहण करने का निर्णय लेती है, तो ये बंधपत्र निगम बंधपत्र और निधि की पूर्ति के लिए उपलब्ध अन्य वित्तीय उपकरणों से स्पर्धा करेंगे। यदि कुछ निजी बचतकर्ता बंधपत्र खरीदने का निर्णय करते हैं तो निजी क्षेत्र में निवेश करने के लिए शेष निधि की मात्रा अल्प होगी। इस प्रकार, जब सरकार अर्थव्यवस्था की कुल बचत के शेयर में वृद्धि का दावा करेगी तो कुछ निजी ऋण-ग्रहणकर्ता वित्तीय बाज़ारों के 'जनसमूह में घिर जाएँगे'। किंतु यह ध्यातव्य है कि अर्थव्यवस्था की बचत का प्रवाह तब तक निश्चित नहीं होगा, जब तक हम यह न मान लें कि आय में वृद्धि नहीं हो सकती है। यदि राजकीय घाटे से उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त होगा, तो आय अधिक होगी और बचत में भी वृद्धि होगी। इस स्थिति में सरकार और उद्योग दोनों अधिक-से-अधिक ऋण-ग्रहण कर सकते हैं।

यदि सरकार आधारभूत संरचना के निर्माण में निवेश कर रही है, तो आने वाली पीढ़ियाँ बेहतर स्थिति में होंगी। किंतु इस प्रकार के निवेशों का प्रतिफल ब्याज की दर से निश्चित रूप से अधिक होगा। निर्गत में बढ़ोतरी से ही वास्तविक ऋण का भुगतान किया जा सकता है। तब ऋण को बोझ के रूप में नहीं देखा जाएगा। संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास में ऋण वृद्धि को उचित ही माना जाएगा।

घाटे में कटौती: करों में वृद्धि अथवा व्यय में कटौती से सरकारी घाटे में कमी की जा सकती है। भारत में सरकार कर राजस्व में वृद्धि करने के लिए प्रत्यक्ष करों पर ज्यादा भरोसा करती है (अप्रत्यक्ष कर अपनी प्रकृति में प्रतिगामी होता है और इनका प्रभाव सभी आय समूह के लोगों पर समान रूप से पड़ता है)। सार्वजनिक उपक्रमों के शेयरों की बिक्री के माध्यम से प्राप्तियों में बढ़ोतरी करने का भी एक प्रयास किया गया है। किंतु सरकारी व्यय में कटौती पर विशेष बल दिया

गया है। सरकार के कार्यकलापों को सुनियोजित कार्यक्रमों और सुशासनों के माध्यम से संचालित करने से ही सरकारी व्यय में कटौती की जा सकती है। योजना आयोग के द्वारा हाल में किए गए एक अध्ययन[7] में यह आकलन किया गया है कि गरीबों तक 1 रु० का लाभ पहुँचाने के लिए सरकार खाद्य उपदान के रूप में 3.65 रु० व्यय करती है। यह व्यय सरकार इस उद्देश्य से करती है कि नकद राशि के अंतरण से लोगों के कल्याण में वृद्धि होगी। सरकार के *कार्यक्षेत्र* को बदलने का दूसरा तरीका यह है कि सरकार जिन क्षेत्रों में कार्य करती रही है, उनमें से कुछ क्षेत्र निकाल दिए जाएँ। कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्धनता निवारण जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार के कार्यक्रमों को रोकने से अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। अनेक देशों में सरकार अत्यधिक घाटे का वहन करती है। पूर्व निर्धारित स्तरों पर व्यय में वृद्धि नहीं करने के लिए सरकार स्वयं पर प्रतिबंधों का आरोपण करती है। (बॉक्स 5.1 में भारत में एफ.आर.बी.एम.ए. की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन है)। उपरोक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए इनका परीक्षण करना होगा। हमें यह ध्यान रखना होगा कि वृहत्तर घाटा हमेशा अधिक विस्तारित राजकोषीय नीति का परिणाम नहीं होता है। समान राजकोषीय नीतियाँ बड़े अथवा छोटे दोनों ही प्रकार के घाटों को जन्म दे सकती हैं, जो अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी अर्थव्यवस्था में अमंदी और सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट देखने को मिलती है, तो इसका कारण है कि फर्म और परिवार की जब आय कम होती है, तो वे कम कर अदा करते हैं। तात्पर्य यह है कि अमंदी की स्थिति में घाटे में बढ़ोतरी होती है तथा तेज़ी की स्थिति में कमी, जबकि राजकोषीय नीति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

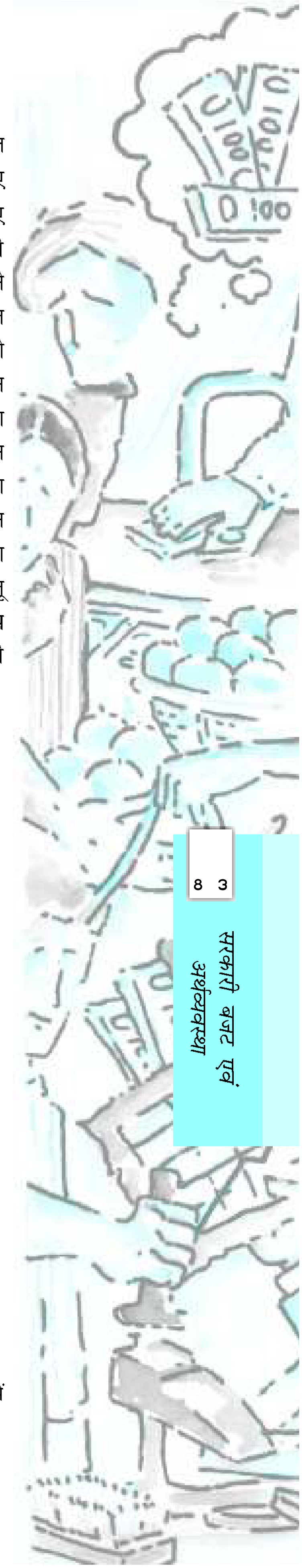

[7] इसे पुन: एक वर्ष 2009-10 के लिए सूचीबद्ध किया गया है, तीव्र राजस्व व्यय कार्यक्रम और आयोजन के पक्ष में योजना की प्राथमिकता के आधार पर मुख्य रूप से शिफ्ट होता है।

सारांश

1. सार्वजनिक वस्तुओं का निजी वस्तुओं से अलग सामूहिक उपभोग होता है। सार्वजनिक वस्तुओं की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं–ये अप्रतिस्पर्धी होती हैं अर्थात एक व्यक्ति दूसरे की संतुष्टि में कमी किए बगैर अपनी संतुष्टि में वृद्धि कर सकता है तथा वे सार्वजनिक वस्तुएँ अवर्ज्य होती हैं अर्थात किसी को इन वस्तुओं का लाभ उठाने से वर्जित करने का कोई संभव तरीका नहीं है। इससे इनके उपयोग का शुल्क संग्रह करना कठिन होता है तथा निजी उद्यम आमतौर पर ऐसी वस्तुओं को मुहैया नहीं कराते हैं। अतः सरकार ही सार्वजनिक वस्तुएँ प्रदान करती है।
2. ये तीन फलन आवंटन, पुनर्वितरण और स्थिरीकरण इन तीनों के कार्यों का संचालन सरकार के व्यय एवं प्राप्तियों के माध्यम से होता है।
3. बजट में सरकार की प्राप्तियों एवं व्यय का विवरण होता है। वर्तमान वित्तीय आवश्यकताओं और देश के पूँजीगत स्टॉक में निवेश के बीच भेद करने की दृष्टि से बजट को दो भागों में विभक्त किया जाता है–(i) राजस्व बजट (ii) पूँजीगत बजट।
4. राजकोषीय घाटे के प्रतिशत में राजस्व घाटे की वृद्धि से निम्न पूँजी निर्माण सहित सरकारी व्यय की प्रकृति में गिरावट प्रदर्शित होती है।
5. आनुपातिक करों से स्वायत्त व्यय गुणक कम होता है क्योंकि करों के बाद शेष आय में से सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में कमी आ जाती है।
6. यदि सार्वजनिक ऋण से भविष्य में निर्गत में वृद्धि प्रभावित होती है, तो यह एक प्रकार का बोझ है।

मूल संकल्पनाएँ

सार्वजनिक वस्तुएँ
आभ्यंतरिक स्थिरक
स्वनिर्णयगत राजकोषीय नीति
रिकार्डों की समतुल्यता

बॉक्स 5.1 ***राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजटीय प्रबंधन अधिनियम, 2003*** **(एफ.आर.बी.एम.ए.)**

बहुदलीय संसदीय प्रणाली में व्यय संबंधी नीतियों के निर्धारण में निर्वाचकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह तर्क दिया जाता है कि विधायी प्रावधान जो सरकार के वर्तमान और भविष्य सब पर लागू होता है, घाटों को नियंत्रित करने में प्रभावकारी होता है। अगस्त, 2003 में एफ.आर.बी.एम.ए. का अधिनियमन वित्तीय सुधार और विवेकपूर्ण वित्तीय नीति का अनुसरण करने के लिए संस्थागत ढाँचे के माध्यम से सरकार को बाधित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम साबित हुआ। केंद्र सरकार को यह निश्चय करना चाहिए कि अंतर्पीढ़ीय समता हो और पर्याप्त राजस्व की प्राप्ति से दीर्घकालिक समष्टि-अर्थशास्त्रीय स्थायित्व प्राप्त हो। मौद्रिक नीति के राजकोषीय बाधा को दूर करते हुए और घाटे तथा ऋण-ग्रहण को सीमित करते हुए प्रभावकारी ऋण प्रबंध हो। इस अधिनियम के नियमों को जुलाई, 2004 के प्रभाव से अधिसूचित किया गया।

मुख्य विशेषताएँ

1. यह अधिनियम केंद्र सरकार को राजकोषीय घाटा में सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत तक और कमी करने के समुचित उपाय करने का आदेश देता है, जिससे 31 मार्च 2009 तक का राजस्व घाटे को दूर किया जाए और उसके बाद पर्याप्त राजस्व आधिक्य का निर्माण हो।
2. इसमें प्रत्येक वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का 0.3 प्रतिशत राजकोषीय घाटा में कटौती और 0.5 प्रतिशत राजस्व घाटे में कटौती की आवश्यकता बतलाई गई है। इसकी प्राप्ति यदि कर राजस्व से नहीं होती है, तो व्यय में कटौती से आवश्यक समंजन होना चाहिए।
3. निर्धारित लक्ष्य से अधिक वास्तविक घाटे में बढ़ोतरी केवल राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा प्राकृतिक आपदा के आधार पर अथवा अन्य ऐसी आपवादिक स्थितियों, जिसे केंद्र सरकार निर्दिष्ट करती है, के आधार पर ही हो सकती है।
4. केंद्र सरकार भारतीय रिज़र्व बैंक से नकद प्राप्तियों के ऊपर नकद प्रतिपूर्तियों के अस्थायी आधिक्य की पूर्ति के लिए अग्रिम के अलावे अन्य किसी भी प्रकार का ऋण-ग्रहण नहीं करेगी।
5. भारतीय रिज़र्व बैंक वर्ष 2006-07 से केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के प्राथमिक प्रतिभूतियों को नहीं खरीदेगा।
6. वित्तीय संचालन में अत्यधिक पारदर्शिता लाने के लिए उपाय किया जाना चाहिए।
7. केंद्र सरकार को संसद से दोनों सदनों के सामने वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ तीन विवरण– मध्यवर्ती राजकोषीय नीति विवरण, राजकोषीय कार्यनीति संबंधी विवरण और समष्टि अर्थशास्त्रीय ढाँचागत विवरण प्रस्तुत करना होगा।
8. बजट के संबंध में प्राप्तियों और व्यय प्रवृत्तियों की त्रैमासिक समीक्षा संसद के दोनों सदनों के सामने प्रस्तुत करना होगा।

यह अधिनियम केन्द्र सरकार पर लागू होता है। यद्यपि, 26 राज्यों में पहले से राजकोषीय विधि निर्माण की जवाबदेही है जो सरकार के अधिक विस्तृत नियम आधारित राजकोषीय सुधार कार्यक्रम को बनाती है। यद्यपि सरकार इस पर जोर देती है कि एफ.आर.बी.एम.ए. एक महत्त्वपूर्ण संस्थानिक उपाय है जो राजकोषीय समझदारी और समष्टि अर्थशास्त्रीय संतुलन को सहारा प्रदान करती है, इस अधिनियम के द्वारा वांछित लक्ष्य की पूर्ति के लिए कल्याणगत व्यय में कटौती की आशंका व्याप्त रहती है।

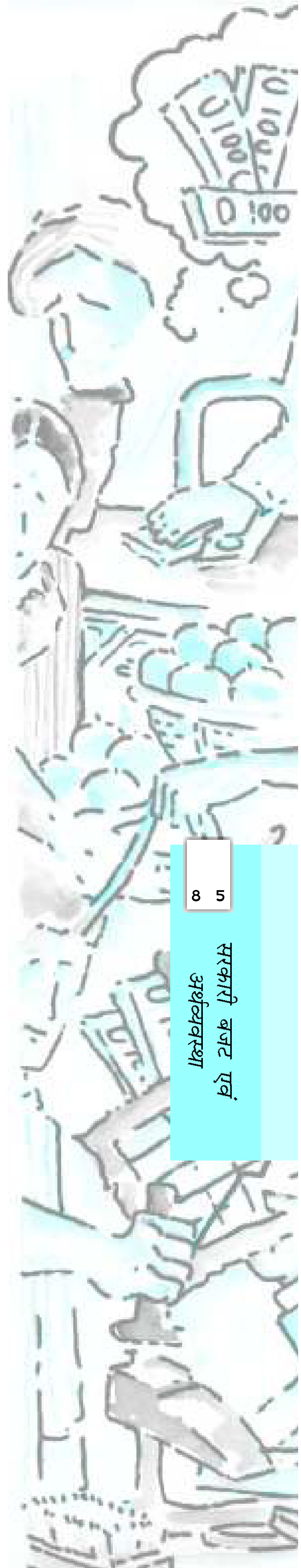

सुझावात्मक पठन

डोर्नबुश आर. और एस. फिशर, 1994 *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* छठा संस्करण, मैक्ग्राहिल।

मानकिव एन. जी., 2000, *मैक्रोइकोनॉमिक्स*, चौथा संस्करण, मैकमिलन।

आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, विभिन्न मुद्दे।

अध्याय 6

खुली अर्थव्यवस्था समष्टि अर्थशास्त्र

अभी तक हमने माना है कि हमारी अर्थव्यवस्था एक बंद अर्थव्यवस्था है जो विश्व के अन्य भाग से अन्योन्याश्रित नहीं है। यह इसलिए किया गया ताकि प्रारूप और समष्टि अर्थशास्त्र के आधारिक तंत्र की व्याख्या सरल हो। विश्व की दूसरी अर्थव्यवस्थाओं के संपर्क में आने से प्राय: तीन प्रकार से हमारे चयन का विस्तार हुआ है:

(i) उपभोक्ताओं और फर्मों को घरेलू एवं विदेशी वस्तुओं के बीच चयन का अवसर मिलता है। यह उत्पाद बाज़ार में सहलग्नता है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न होती है।

(ii) निवेशकों को भी घरेलू और विदेशी परिसंपत्तियों के बीच चयन का अवसर प्राप्त होता है। इससे वित्तीय बाज़ार सहलग्नता का निर्माण होता है।

(iii) फर्मों को उत्पादन के स्थान का चयन करने तथा श्रमिकों को कहाँ काम करें, यह चयन करने की स्वतंत्रता होती है। इसे कारक बाज़ार सहलग्नता कहते हैं। अप्रवासन कानूनों के माध्यम से लोगों के आवागमन पर बहुत-से प्रतिबंधों के कारण श्रम बाज़ार सहलग्नता अपेक्षाकृत कम होती है। वस्तुओं का संचलन परंपरागत रूप से श्रम के संचलन के स्थानापन्न के रूप में देखा गया है। हम यहाँ प्रथम दो सहलग्नताओं पर प्रकाश डालते हैं।

खुली अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्य.वस्था है, जिसमें अन्य राष्ट्रों के साथ वस्तुओं और सेवाओं तथा बहुधा वित्तीय परिसंपत्तियों का भी व्यापार किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारतीय विश्व के अन्य देशों में उत्पादित वस्तुओं का उपभोग करते हैं तथा हमारे उत्पादन का कुछ भाग विदेशों को निर्यात किया जाता है। अत: विदेशी व्यापार भारतीय समस्त माँग को दो प्रकार से प्रभावित करता है। पहला, जब कोई भारतीय विदेशी वस्तुएँ खरीदता है, तो उसके द्वारा किया गया व्यय समस्त माँग को कम करते हुए आय के वर्तुल प्रवाह से *रिसाव* के रूप में निष्कासित होता है। दूसरा, विदेशों को जो हम निर्यात करते हैं वह घरेलू उत्पादित वस्तुओं के लिए समस्त माँग में वृद्धि करते हुए वर्तुल प्रवाह में *अंत:क्षेपण* के रूप में प्रवेश करता है। कुल विदेशी व्यापार (आयात+निर्यात) सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में किसी अर्थव्यवस्था के ***खुलेपन की मात्रा*** का सामान्य माप है। वर्ष 2006-07 में भारतीय अर्थव्यवस्था में यह 34.9 प्रतिशत (सकल घरेलू उत्पाद में आयात 20.9 प्रतिशत एवं निर्यात 14 प्रतिशत है) था। यह 1985-86 के कुल 16 प्रतिशत से पर्याप्त मात्रा में अधिक है। यद्यपि अन्य देशों की तुलना में भारत में खुलापन कम है। ऐसे कई देश हैं जिनका विदेशी व्यापार अनुपात सकल घरेलू उत्पाद के 50 प्रतिशत से अधिक है।

जब वस्तुओं का संचलन राष्ट्रीय सीमा के बाहर होता है, तो *मुद्रा* का संचलन अवश्य ही विपरीत दिशा में होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई एकल करेंसी नहीं है, जिसे किसी केंद्रीय प्राधिकरण के द्वारा जारी किया गया हो। कोई विदेशी आर्थिक एजेंट तब ही किसी राष्ट्रीय करेंसी को स्वीकार करेगा, जब उसे विश्वास होगा कि उक्त करेंसी की क्रय-शक्ति स्थिर रहेगी। इस विश्वास के बिना किसी भी करेंसी का विनिमय के अंतर्राष्ट्रीय माध्यम के रूप में उपयोग नहीं होगा और न ही लेखा की इकाई के रूप में इसका उपयोग होगा, क्योंकि ऐसा कोई अंतर्राष्ट्रीय प्राधिकरण नहीं है जिसके पास यह शक्ति हो कि वह अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन में किसी विशेष करेंसी के उपयोग को लागू कर सके। भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों के द्वारा संभाव्य उपयोगकर्ताओं का विश्वास पाने के लिए यह घोषणा की गई है कि राष्ट्रीय मुद्रा निर्बाध रूप से स्थिर कीमत पर दूसरी परिसंपत्तियों में परिवर्तनीय होगी, जिसके मूल्य पर जारीकर्ता प्राधिकरण का कोई नियंत्रण नहीं होगा। यह दूसरी परिसंपत्ति बहुधा सोना या अन्य राष्ट्रीय मुद्राएँ होंगी। इस वचनबद्धता के दो पहलू होते हैं जिनसे इनकी विश्वसनीयता प्रभावित होती है– असीमित मात्रा में निर्बाध रूप से परिवर्तन की क्षमता और कीमत जिस पर परिवर्तन होता है। इन्हीं मुद्दों का निराकरण करने तथा अंतर्राष्ट्रीय संचलन में स्थिरता लाने के लिए *अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली* की स्थापना की गई है। उपर्युक्त दोनों मुद्दों के संबंध में किसी राष्ट्र की प्रतिबद्धता से विश्व के अन्य देशों के साथ उसका व्यापार और वित्तीय संपर्क प्रभावित होगा।

खंड 6.1 का आरंभ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय प्रवाहों के लेखांकन से किया गया है। अगले खंड में राष्ट्रीय करेंसियों का एक-दूसरे के साथ विनिमय की कीमत निर्धारण का परीक्षण किया गया है। खंड 6.3 में अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों को शामिल करने के लिए बंद अर्थव्यवस्था आय-व्यय मॉडल में संशोधन किया गया है। अनुभाग 6.4 व्यापार घाटा, बजट घाटा और बचत-निवेश अंतराल के बीच संलग्नता का संक्षिप्त विवरण देता है।

6.1 अदायगी-संतुलन

अदायगी-संतुलन में किसी एक देश के निवासियों और शेष विश्व के बीच वस्तुओं, सेवाओं और परिसंपत्तियों की लेन-देन का विवरण दर्ज़ होता है। किसी खास समयावधि में, खासकर एक वर्ष में तालिका 6.1 में भारतीय अर्थव्यवस्था में वर्ष 2006-07 का अदायगी संतुलन का सारांश दिया गया है। अदायगी-संतुलन के दो मुख्य खाते होते हैं– चालू खाता और पूँजी खाता।

चालू खाते में वस्तुओं के आयात-निर्यात, सेवाओं और अंतरण-अदायगियों के विवरण दर्ज़ किए जाते हैं। तालिका 6.1 के पहले दो इकाई में वस्तु के आयात और निर्यात को दर्ज किया गया है। तीसरे इकाई में व्यापार संतुलन दिया गया है, जिसे वस्तु के निर्यात को आयात में से घटाकर प्राप्त किया जाता है। जब निर्यात आयात से अधिक होता है तो **व्यापार आधिक्य** होता है और जब आयात निर्यात से अधिक होता है तो **व्यापार घाटा** होता है। वर्ष 2006-07 में, आयात निर्यात से अधिक होने के कारण भारत को 63.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर का बहुत बड़ा व्यापार घाटा हुआ है। सेवाओं का व्यापार जिसे अदृश्य व्यापार कहा जाता है (क्योंकि उसे राष्ट्रीय सीमाओं को पार करते नहीं देखा जाता है) में उपदान आय (कर्मचारियों का मुआवजा और निवल निवेश आय बाद में ब्याज के बराबर हो जाता है-निवेश आय जैसे– विदेशों में हमारी परिसंपत्तियों पर ब्याज, लाभ और लाभांश में से भारत में विदेशियों की परिसंपत्तियों से उनकी आय घटाने पर) और गैर-उपदान आय (जहाज़रानी, बैंकिंग, बीमा, पर्यटन, सॉफ्टवेयर सेवाएँ, इत्यादि) आते हैं। अंतरण-अदायगी ऐसी प्राप्तियाँ होती हैं, जो किसी देश के निवासियों को 'निःशुल्क' प्राप्त होती है और उनके बदले में उन्हें वर्तमान में या भविष्य में

कोई अदायगी नहीं करनी पड़ती है। उनमें प्रेषित धन, उपहार और अनुदान शामिल हैं। वे सरकारी अथवा निजी हो सकते हैं। वस्तुओं के निर्यात और आयात के संतुलन को ***व्यापार संतुलन*** कहते हैं। व्यापार संतुलन में सेवाओं का व्यापार और शुद्ध अंतरण का योग कर हम ***चालू खाता संतुलन*** प्राप्त करते हैं। **चालू खाता संतुलन,** तालिका 6.1 के 5वें क्रम पर दिखाया गया है। इन आँकड़ों का तात्पर्य है कि चालू खाते के घटकों से संव्यवहार के कारण आई हुई प्राप्तियों से 9.8 बिलियन डॉलर अधिक का प्रवाह अदायगी के रूप में हुआ है। इसे **चालू खाता घाटा** के रूप में जाना जाता है एवं वर्ष 2006-07 में सकल घरेलू उत्पाद का 1.1 प्रतिशत था। यदि ये आँकड़े घनात्मक संख्याओं में होते तो **चालू खाता आधिक्य** माना जाता। पूँजी खातों में परिसंपत्तियों जैसे- मुद्रा, स्टॉक, बंधपत्र आदि के सभी प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय क्रय-विक्रय का विवरण होता है। विदेशियों को जिस किसी भी प्रकार के अंतरण द्वारा अदायगी की जाती है, उसे *डेबिट* में दर्ज़ करते हैं और उसे ऋणात्मक चिह्न दिया जाता है। कोई भी अंतरण जो विदेशियों से प्राप्ति के रूप में प्रविष्ट करते हैं, उसे *क्रेडिट* में दर्ज़ करते हैं और उसे धनात्मक चिह्न दिया जाता है।

उदाहरण 6.1

क्या किसी देश में व्यापार घाटा और चालू खाता आधिक्य एक साथ हो सकता है? हाँ। यद्यपि, भारत में व्यापार घाटा प्रतिवर्ष होना एक आवर्ती विशेषता है, तीन लगातार वर्षों के लिए 2001-02 से 2003-04 तक, चालू खाते पर आधिक्य क्रमश: सकल घरेलू उत्पाद के 0.7, 1.3 और 2.3 प्रतिशत के अनुरूप था। यह इसलिए है क्योंकि सेवाओं और निजी अंतरण से अर्जन व्यापार घाटा से अधिक प्रभावशाली है।

6.1.1 अदायगी-संतुलन आधिक्य और घाटा

अंतर्राष्ट्रीय अदायगी का सार है कि जिस प्रकार अपनी आय से अधिक व्यय करने वाले को किसी व्यक्ति को परिसंपत्तियाँ बेचकर या उधार लेकर आय-व्यय के अंतर को पूरा करना पड़ता है, उसी प्रकार कोई देश, जिसके चालू खाते में घाटा होता है (जो विदेशों को विक्रय से प्राप्त धन से अधिक विदेशों को व्यय करता है) उसे अपनी परिसंपत्ति बेचकर या विदेशों से ऋण लेकर उस कमी के लिए वित्त की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार, किसी भी चालू खाता घाटा को निवल पूँजीगत प्रवाह से *वित्तपोषित* करना आवश्यक होता है।

वैकल्पिक रूप से घाटे की दशा में विदेशी विनिमय बाज़ार में विदेशी करेंसी को बेचकर तथा अपने विदेशी विनिमय को कम करके कोई देश ***अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार*** का कार्य कर सकता है। अधिकृत आरक्षित निधि में कमी (वृद्धि) को कुल **अदायगी-घाटा संतुलन (आधिक्य)** कहते हैं। यहाँ मुख्य बात यह है कि अदायगी-संतुलन (अथवा किसी आधिक्य का प्रापक) में किसी प्रकार के घाटे का प्रधान वित्तदाता मौद्रिक प्राधिकार होते हैं। अदायगी संतुलन घाटा या आधिक्य चालू और पूँजीगत खाता संतुलन के जोड़ने के बाद प्राप्त होता है। वर्ष 2006-07 में अदायगी संतुलन आधिक्य 36.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर था जो तालिका 6.1 में क्रम संख्या 12 में दिखाया गया है। यह राशि सकल घरेलू उत्पाद का 4 प्रतिशत संग्रहीत है और अधिकृत आरक्षित निधि में जुड़ जाती है। कोई देश अदायगी-संतुलन में तब होता है, जब उसके चालू खाते का योग और उसके अनारक्षित पूँजी खाते का योग शून्य के बराबर हो, ताकि चालू खाता शेष का बिना किसी आरक्षित निधि संचलन के पूर्णत: अंतर्राष्ट्रीय ऋण के द्वारा वित्त प्रबंध किया जा सके। ध्यातव्य है कि अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार अधिकीलित विनिमय दर की तुलना में अस्थायी विनिमय दर की स्थिति में अधिक प्रासंगिक होता है।

स्वायत्त और समायोजित संव्यवहार: अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संव्यवहार जब उदाहरण के लिए लाभ के उद्देश्य से अदायगी-संतुलन को छोड़कर स्वतंत्र रूप से राज्य के द्वारा किया जाता है, तो वैसे संव्यवहार को *स्वायत्त* कहते हैं। इन मदों को अदायगी-संतुलन में 'रेखा के ऊपर' की मदें कहते हैं। जब स्वायत्त प्राप्तियाँ स्वायत्त अदायगी से अधिक (कम) हो, तो अदायगी-संतुलन को आधिक्य या घाटा में कहा जाता है। इसके विपरीत *समायोजित* संव्यवहार ('रेखाओं के नीचे' की मदों) का निर्धारण स्वायत्त के निवल परिणामों के द्वारा होता है, चाहे अदायगी-संतुलन आधिक्य में हो या घाटे में हो। अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार को अदायगी-संतुलन में समायोजित मदों के रूप में देखा जाता है (अन्य सभी स्वायत्त हों)।

त्रुटि और लोप: अदायगी-संतुलन (चालू और पूँजीखाते के अतिरिक्त) में तीसरे अवयव की रचना करता है जो 'संतुलित करने वाली मद' कहलाती है। यह हमारी अंतर्राष्ट्रीय संव्यवहार को शुद्धतापूर्वक दर्ज़ नहीं करने की अयोग्यता को प्रतिबिंबित करती है।

6.2 विदेशी विनिमय बाज़ार

अंतर्राष्ट्रीय संव्यवहार पर समस्त विचार करने के बाद हम किसी एकल संव्यवहार की चर्चा करें। कल्पना कीजिए कि एक भारतीय निवासी छुट्टी बिताने के लिए लंदन की यात्रा (पर्यटन सेवा का आयात) पर जाना चाहता है। लंदन में ठहरने के लिए उसे पौंड में भुगतान करना होगा। उसे इस जानकारी की आवश्यकता होगी कि पौंड *कहाँ* से और *किस कीमत* पर प्राप्त किया जा सकता है। पौंड के लिए उसकी माँग से *विदेशी विनिमय* की माँग की रचना होती है, जिसकी पूर्ति *विदेशी विनिमय बाज़ार* में होती है– यह *विदेशी विनिमय बाज़ार* वह बाज़ार है, जहाँ राष्ट्रीय करेंसियों का एक-दूसरे के लिए व्यापार होता है। इस बाज़ार के मुख्य प्रतिभागी व्यावसायिक बैंक, विदेशी विनिमय दलाल और अन्य अधिकृत डीलर तथा मुद्रा प्राधिकारी होते हैं। यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि प्रतिभागियों के अपने व्यापार-केंद्र हो सकते हैं, फिर भी यह बाज़ार अपने-आप में विश्व-व्यापी होता है। यहाँ व्यापारिक-केंद्रों के बीच निकट और निरंतर संपर्क बना रहता है और प्रतिभागी एक से अधिक बाज़ार के साथ व्यापार करते हैं।

अपनी करेंसी का अमेरिकन डालर द्वारा विनिमय दर: दो करेंसियों को क्या हमेशा ऐसा रहना चाहिए? विचार कीजिए।

दूसरे देश की मुद्रा के रूप में प्रथम देश की मुद्रा की कीमत को *विनिमय* दर कहा जाता है। चूँकि दो करेंसियों के बीच एक प्रतिसाम्य की स्थिति होती है, इसलिए विनिमय दर को दो में से किसी भी प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। पहला, घरेलू मुद्रा के रूप में किसी विदेशी मुद्रा की एक इकाई क्रय में घरेलू मुद्रा की जितनी इकाइयों की आवश्यकता होती है, जैसे–रुपया और डॉलर की विनिमय दर 50 रु॰ है, इसका अर्थ यह है कि 1 डॉलर का क्रय करने के लिए 50 रु॰ की लागत आती है। दूसरे, घरेलू मुद्रा की एक इकाई का क्रय करने के लिए विदेशी करेंसी की लागत के रूप में। उपर्युक्त मामले में हम कहेंगे कि 1 रुपया खरीदने की लागत 2 सेंट होगी। यद्यपि अर्थशास्त्र में पहली परिभाषा ही अधिक प्रचलित व व्यावहारिक है। यह द्विपक्षीय सांकेतिक विनिमय दर है। द्वि-पक्षीय इस अर्थ में है कि यह विनिमय दर किसी एक मुद्रा के लिए दूसरी मुद्रा के रूप में कीमत होती है तथा सांकेतिक इसलिए क्योंकि ये मुद्रा के रूप में विनिमय दर अंकित करते हैं, जैसे प्रति डॉलर या प्रति पौंड कितने रुपये होते हैं?

हमारे उदाहरण में यदि कोई लंदन की यात्रा पर जाना चाहता है, तो उसे यह जानना आवश्यक है कि ब्रिटेन में वस्तुएँ अपने देश की वस्तुओं की तुलना में कितनी महँगी हैं। इसकी माप *वास्तविक विनिमय* दर से हो पाती है। देशी कीमत स्तर और विदेशी कीमत स्तर के बीच के अनुपात को वास्तविक विनिमय दर कहते हैं, जिसकी माप एक ही मुद्रा में की जाती है। इसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है :

$$\text{वास्तविक विनिमय दर} = \frac{eP_f}{P} \qquad (6.1)$$

यहाँ P देश का कीमत स्तर है और P_f विदेशी कीमत स्तर तथा e विदेशी (सांकेतिक विनिमय दर) की कीमत रुपये में है। यहाँ अंश से रुपयों में विदेशी कीमत प्रदर्शित होती है तथा हर से रुपयों में घरेलू कीमत स्तर प्रदर्शित होता है। इस प्रकार, वास्तविक विनिमय दर से वस्तुओं की घरेलू कीमत की तुलना में विदेशी वस्तुओं की कीमत का पता चलता है। यदि वास्तविक विनिमय दर एक के समान है, तो करेंसियों की *क्रय-शक्ति समता* में होती हैं। अर्थात् दोनों देशों में वस्तुओं की लागत समान मुद्रा में एक समान रहती है, *जब हम समान करेंसी से मापते हैं।* उदाहरण के लिए, यदि एक कलम की लागत संयुक्त राज्य में 4 डॉलर है और सांकेतिक विनिमय दर 50 रु० प्रति अमेरिकी डॉलर है, तो वास्तविक विनिमय दर 1 होने पर भारत में कलम की लागत 200 रु० (epf = 50 × 4) होगी। यदि वास्तविक विनिमय दर एक से अधिक है, तो अपने देश की तुलना में विदेश में वस्तुएँ अधिक महँगी होंगी। वास्तविक विनिमय दर का प्रयोग अक्सर किसी देश की *अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा* की माप के लिए किया जाता है।

चूँकि एक देश का संबंध कई देशों से होता है, इसलिए हम द्वि-पक्षीय दर नहीं बल्कि एकल दर के रूप में अन्य सभी करेंसियों की तुलना में अपने घरेलू मुद्रा के संचलन को देखना पसंद करेंगे। इसके लिए हम अन्य करेंसियों के विनिमय दर के लिए एक *सूची* रखना चाहेंगे। ठीक उसी तरह जैसे हम सामान्य रूप से वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन दर्शाने के लिए कीमत-सूची का प्रयोग करते हैं। इसकी गणना *सांकेतिक प्रभावी विनिमय* दर (एन.ई.ई.आर.) के आधार पर होती है जो एक बहु-पक्षीय दर है, जिससे विदेशी करेंसियों की प्रतिनिधि टोकरी की कीमत प्रदर्शित होती है। प्रत्येक मुद्रा की कीमत उस देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में (औसत आयात और निर्यात इसका संकेतक है) मुद्रा के महत्त्व से तय होती है। *वास्तविक प्रभावी विनिमय* दर (आर.ई.ई.आर.) की गणना उसके सभी व्यापारिक साझेदारों की वास्तविक विनिमय दरों के भारित औसत के रूप में की जाती है, जो कि विदेशी व्यापार में क्रमशः विभिन्न देशों के अंश का मान है। इसकी व्याख्या विदेशी वस्तुओं की दी हुई टोकरी की एक इकाई का क्रय करने के लिए आवश्यक घरेलू वस्तुओं की मात्रा के रूप में की जाती है।

6.2.1 विनिमय दर का निर्धारण

अब प्रश्न उठता है कि विदेशी विनिमय दरें[1] इस स्तर पर क्यों होती हैं? और किस कारण से इनमें संचालन होता है? विदेशी विनिमय दर के निर्धारण के आर्थिक सिद्धांत को समझने के लिए हमें उन प्रमुख विनिमय दर प्रणालियों[2] का अध्ययन करना होगा, जिससे अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली की विशेषता प्रदर्शित होती है। नियत-कीमत परिवर्तनीयता की प्रतिबद्धता प्रणाली से प्रतिबद्धता रहित प्रणाली की ओर चलन का दौर रहा है, जहाँ के निवासी घरेलू मुद्रा को विदेशी मुद्रा में परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र होते हैं किंतु उन्हें कीमत की गारंटी नहीं मिलती है।

[1]किन्हीं दो करेंसियों के बीच।

[2]विनिमय दर प्रणाली विनिमय दरों का निर्धारण करने वाले अंतर्राष्ट्रीय नियमों का समुच्चय।

6.2.2 नम्य विनिमय दरें

नम्य विनिमय दर *प्रणाली* (जिसे तिरती विनिमय दर भी कहते हैं) में विनिमय दर का निर्धारण बाज़ार माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। पूर्णरूपेण नम्य प्रणाली में केंद्रीय बैंक नियमों के सरल समुच्चय को अपनाते हैं। बैंक विनिमय दर स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाला कोई भी कार्य नहीं करता है। वह विदेशी विनिमय बाज़ार में *दखल* नहीं देता है (इसलिए कोई अधिकृत आरक्षित निधि संव्यवहार नहीं होता है)। हम देश के निवासियों द्वारा विदेशी वस्तुओं, सेवाओं और परिसंपत्तियों पर किये गए सभी प्रकार के व्यय और सभी प्रकार की विदेशी अंतरण-अदायगी (अदायगी-संतुलन खातों में डेबिट) जिससे विदेशी विनिमय की माँग का भी पता चलता है, का उल्लेख करने पर अदायगी-संतुलन खाता और विदेशी विनिमय बाज़ार संव्यवहार के बीच संबंध स्पष्ट होता है। एक भारतीय निवासी जापानी कार खरीदने के लिए रुपये में भुगतान करेगा, लेकिन जापानी निर्यातकर्त्ता येन में भुगतान पाने की अपेक्षा करेगा। अतः विदेशी विनिमय बाज़ार में येन के रूप में रुपये का विनिमय होगा। इसके विपरीत, देश के निवासियों द्वारा किये गए सभी प्रकार के निर्यात से विदेशी विनिमय की समान आय प्रतिबिंबित होती है। उदाहरण के लिए, भारतीय निर्यातकर्त्ता रुपयों में भुगतान की अपेक्षा करेगा और हमारी वस्तुएँ खरीदने के लिए विदेशी लोग अपनी मुद्रा बेचकर रुपये खरीदेंगे। अदायगी-संतुलन खातों की कुल क्रेडिट तब विदेशी विनिमय की पूर्ति के समान हो जाता है। विदेशी विनिमय की माँग का दूसरा कारण सट्टेबाजी का प्रयोजन भी है।

सरलता की दृष्टि से हम कल्पना करें कि विश्व में भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका दो ही देश हैं, जिससे केवल एक विनिमय दर का निर्धारण हो। माँग वक्र DD की प्रवणता नीचे की ओर है क्योंकि विदेशी विनिमय की कीमत में वृद्धि से विदेशी वस्तुएँ खरीदने की रुपये के रूप में लागत में वृद्धि होगी। इस प्रकार, आयात में कमी आएगी और विदेशी विनिमय की माँग कम होगी। विदेशी विनिमय की पूर्ति में वृद्धि करने के लिए जब भी विनिमय दर में वृद्धि होती है, तब हमारे निर्यात के लिए विदेशी माँग अवश्य ही *इकाई लोच* से अधिक होनी चाहिए अर्थात् विनिमय दर में एक प्रतिशत की वृद्धि (जिसके परिणामस्वरूप विदेशों को निर्यात की जानेवाली हमारी वस्तुओं की कीमत में 1 प्रतिशत की कमी आती है) से माँग में 1 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होनी चाहिए। यदि यह शर्त पूरी होती है, तो विनिमय में वृद्धि के अनुपात में रुपयों में हमारे निर्यात में वृद्धि होगी और विनिमय दर में वृद्धि से डॉलर के रूप में अर्जन (विदेशी विनिमय की पूर्ति) भी बढ़ेगी। किंतु उर्ध्वस्तर पूर्ति वक्र (भारतीय निर्यात के लिए विदेशी माँग की इकाई लोच) से इस विश्लेषण में कोई परिवर्तन नहीं होगा। ध्यातव्य है कि यहाँ हम विनिमय दर के अतिरिक्त सभी कीमतों को स्थिर रख रहे हैं।

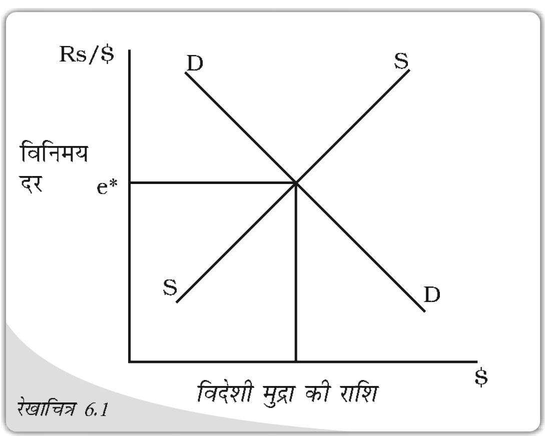

रेखाचित्र 6.1

नम्य विनिमय दर के अंतर्गत संतुलन

नम्य विनिमय दर की इस स्थिति में केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के बिना विदेशी विनिमय की

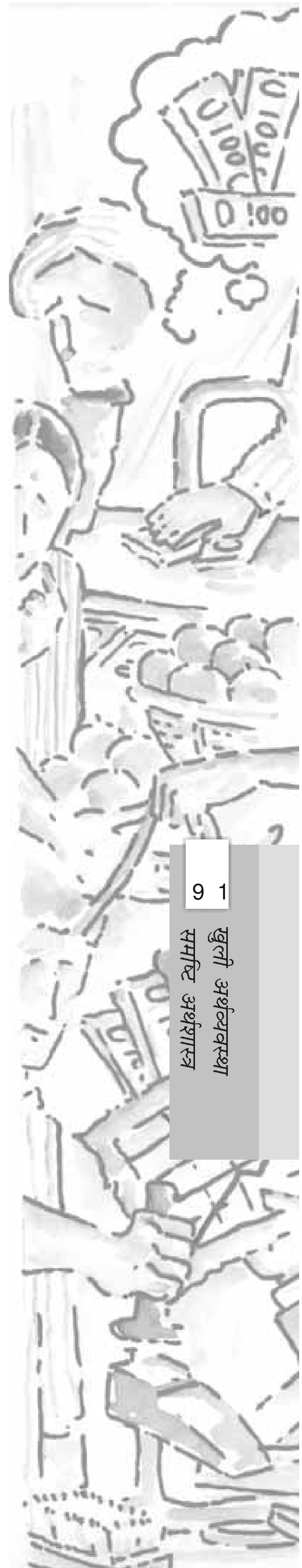

माँग और पूर्ति में साम्य स्थापित करने के लिए तथा बाज़ार रिक्त करने के लिए विनिमय दर में संचलन होता है। रेखाचित्र 6.1 संतुलन विनिमय दर e^* है।

यदि भारतीय निवासियों के अक्सर विदेशी यात्रा के कारण अथवा आयातित वस्तुओं के लिए उनके अधिमान के कारण विदेशी विनिमय में वृद्धि होगी, तो *DD* वक्र ऊपर की ओर और दायीं ओर शिफ्ट होगी। इस तरह परिणामी प्रतिच्छेदन बिंदु उच्च विनिमय दर पर रहेगा। नम्य विनिमय दर के अंतर्गत विदेशी विनिमय की कीमत में परिवर्तन मुद्रा के अवमूल्यन अथवा मूल्य वृद्धि को दर्शाती है। उपर्युक्त स्थिति में देश की घरेलू मुद्रा (रुपये) के मूल्य में *ह्रास हुआ है*, क्योंकि विदेशी मुद्रा की तुलना में इसके मूल्य में कमी आई है। उदाहरण के लिए, यदि रुपया–डॉलर विनिमय दर 45 रुपये पर साम्य की स्थिति में थी और अब वह 50 रु. प्रति डॉलर हो गई है तो डॉलर के विरुद्ध रुपये के मूल्य में ह्रास हुआ। इसके ठीक विपरीत, जब देश की घरेलू मुद्रा विदेशी मुद्रा की तुलना में अधिक व्ययशील हो, तो मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होती है।

प्रारंभिक संतुलन विनिमय दर e^* पर विदेशी विनिमय की अधिमाँग दिखाई गई है। बाज़ार को रिक्त करने के लिए विनिमय दर में संतुलन मूल्य e_1 तक वृद्धि अवश्य होगी। विनिमय दर में वृद्धि (मूल्यह्रास) से आयात की माँग में कमी आएगी, क्योंकि आयातित वस्तुओं की रुपयों में कीमत अधिक होगी। चूँकि विनिमय दर में वृद्धि से विदेशों को निर्यात पर कम व्यय होगा, इसलिए निर्यात की माँग में वृद्धि होगी। नये संतुलन e_1 पर विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति पुनः संतुलन की स्थिति में होगी।

सट्टेबाज़ी: बाज़ार में विनिमय दर केवल निर्यात और आयात की माँग एवं पूर्ति तथा परिसंपत्तियों में निवेश पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि विदेशी विनिमय के सट्टे पर भी निर्भर करती है, जहाँ विदेशी विनिमय की माँग मुद्रा की मूल्य वृद्धि से प्राप्त संभावित लाभ के लिए की जाती है। किसी भी देश की मुद्रा एक प्रकार की परिसंपत्ति है। यदि भारतीयों को यह विश्वास हो कि ब्रिटिश पौंड के मूल्य में रुपये की अपेक्षा वृद्धि होने की संभावना है, तो वे पौंड को अपने पास रखना चाहेंगे। उदाहरण के लिए, यदि चालू विनिमय दर 80 रुपये प्रति पौंड है और निवेशकर्ताओं को यह विश्वास है कि माह के अंत तक पौंड के मूल्य में वृद्धि होने की संभावना है तथा यह 85 रु॰ प्रति पौंड तक हो सकता है, तो निवेशकर्ता यह सोचेंगे कि यदि वह 80,000 रुपये लगाकर 1000 पौंड खरीदेगा तो माह के अंत में वह उसे 85,000 रु॰ में बेचकर 5,000 रु॰ का लाभ अर्जित कर लेगा। इस परिकल्पना से पौंड की माँग बढ़ेगी और इससे रुपया पौंड विनिमय दर में वर्तमान में वृद्धि होगी, जिससे उसके विश्वास की स्वतः पूर्ति हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि ब्याज की दर, आय और कीमत स्थिर रहती है। किंतु इनमें परिवर्तन हो सकता है और इससे विदेशी विनिमय के माँग और पूर्ति वक्र शिफ्ट होंगे।

ब्याज की दरें और विनिमय दर: अल्पकाल में विनिमय दर के निर्धारण में एक दूसरा कारक भी महत्त्वपूर्ण होता है, जिसे *ब्याज* दर *विभेदक* कहते हैं। अर्थात देशों के बीच ब्याज की दरों में अंतर है। बैंक, बहुराष्ट्रीय निगम और धनी व्यक्ति, विशाल निधि के स्वामी होते हैं जिसका अधिक आय प्राप्त करने के लिए ऊँची ब्याज दर की खोज में पूरे विश्व में संचलन होता है। यदि हम कल्पना करें कि एक देश A में सरकारी बंधपत्र पर ब्याज की दर 8 प्रतिशत है जबकि उसी के समान सुरक्षित बंधपत्र पर दूसरे देश B में 10 प्रतिशत की आय होती है, तो ब्याज दर विभेदक 2 प्रतिशत होगा। देश A का निवेशकर्त्ता देश B की उच्च ब्याज दर की ओर आकर्षित होंगे और अपने देश की मुद्रा को बेचकर देश B की मुद्रा का क्रय करेंगे। इस स्थिति में, देश B के निवेशकर्ता भी अपने देश में निवेश करना चाहेंगे और इस प्रकार देश A की करेंसी की कम माँग

करेंगे। इसका अर्थ यह है कि देश A की करेंसी का माँग वक्र बायीं ओर तथा पूर्ति वक्र दायीं ओर शिफ्ट होगा। इससे देश A की मुद्रा के मूल्य में ह्रास तथा देश B की मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होगी। अतः *किसी देश की आंतरिक ब्याज दर में वृद्धि से घरेलू मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होगी*। यहाँ यह मान लिया जाता है कि विदेशों की सरकारों के द्वारा बंधपत्रों के क्रय पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

आय और विनिमय दर: जब आय में वृद्धि होती है, तो उपभोक्ता के व्यय में भी वृद्धि होती है तथा आयातित वस्तुओं पर व्यय में भी वृद्धि की संभावना होती है। जब आयात बढ़ता है तो विदेशी विनिमय की माँग वक्र दायीं ओर शिफ्ट होती है। इससे घरेलू मुद्रा के मूल्य में ह्रास होता है। यदि विदेशी आय में भी वृद्धि होती है, तो घरेलू निर्यात में वृद्धि होगी जिससे विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र बाहर की ओर शिफ्ट होगा। संतुलन की स्थिति में घरेलू मुद्रा का मूल्य ह्रास हो भी सकता है और नहीं भी। यह सब इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या निर्यात आयात से अधिक तेज़ी से बढ़ रहे हैं। आमतौर पर, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर एक देश जिसकी समस्त माँग शेष विश्व की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ रही है, प्रायः उसकी मुद्रा के मूल्य में, निर्यात से आयात में अधिक वृद्धि के कारण ह्रास होता है। इसके विदेशी मुद्रा का माँग वक्र पूर्ति वक्र से अधिक तेज़ी से शिफ्ट होती है।

दीर्घकाल में विनिमय दर: दीर्घकाल में नम्य विनिमय दर प्रणाली में विनिमय दर के संबंध में पूर्वानुमान करने के लिए क्रय-शक्ति समता सिद्धांत का उपयोग किया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई व्यापारिक अवरोधक जैसे- टैरिफ (व्यापारिक कर) और कोटा (आयात की मात्रा की सीमा) नहीं होंगे, तो विनिमय दर स्वतः समायोजित हो जाएगी। इससे एक प्रकार के उत्पाद की लागत, चाहे भारत में रुपयों में या संयुक्त राज्य अमेरिका में डॉलर में अथवा जापान में येन में क्यों न हो, समान ही होगी। सिर्फ परिवहन व्यय में अंतर होगा। अतः दीर्घकाल में किन्हीं दो देशों की करेंसियों के बीच विनिमय दर के समायोजन से दोनों देशों के कीमत स्तर के अंतर का पता चलता है।

उदाहरण 6.1

यदि एक कमीज़ की लागत अमेरिका में 8 डॉलर और भारत में 400 रु॰ है, तो रुपया-डॉलर की विनिमय दर 50 रु॰ होगी। अब 50 रु॰ से अधिक किसी भी दर को देखने के लिए हम 60 रु॰ लेते हैं, इसका अर्थ यह है कि अमेरिका में एक कमीज़ की लागत 480 रु॰ और भारत में केवल 400 रु॰ है, तो ऐसी स्थिति में सभी विदेशी उपभोक्ता भारत से कमीज़ खरीदेंगे। इसी प्रकार, प्रति डॉलर 50 रु॰ से कम किसी भी विनिमय दर पर कमीज़ों का समस्त व्यापार अमेरिका के पास चला जाएगा।

अब हम कल्पना करते हैं कि भारत में कीमत में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है, जबकि अमेरिका में 50 प्रतिशत की वृद्धि होती है। अब भारत में एक कमीज़ की लागत 480 रु॰ जबकि अमेरिका में 12 डॉलर होगी। इन दोनों कीमतों में समानता तभी होगी, जब 12 डॉलर का मूल्य 480 रु॰ अथवा एक डॉलर का मूल्य 40 रु॰ होगा। अतः डॉलर के मूल्य में ह्रास हुआ। क्रय-शक्ति समता सिद्धांत के अनुसार घरेलू स्फीति और विदेशी स्फीति के बीच अंतर ही विनिमय दर के समायोजन का प्रमुख कारण है। *यदि एक देश में दूसरे देश की अपेक्षा स्फीति की दर अधिक है, तो इसकी विनिमय दर का ह्रास होगा।*

तथापि यह याद रहे कि यदि अमेरिका में कीमत भारत की अपेक्षा अधिक तेज़ी से वृद्धि हो तथा साथ ही साथ सभी देश भारतीय कमीज़ों को बाहर रखने के लिए टैरिफ अवरोधकों को बढ़ा दे, (लेकिन अमेरिकी कमीज़ों पर नहीं) तो डॉलर का मूल्यह्रास नहीं होगा। बहुत सारी ऐसी वस्तुएँ भी हैं, जिनका व्यापार नहीं किया जाता है और उनके लिए स्फीति दर का कोई प्रभाव नहीं होता। कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उत्पादन और व्यापार भिन्न-भिन्न देशों के द्वारा किया जाता है। वे

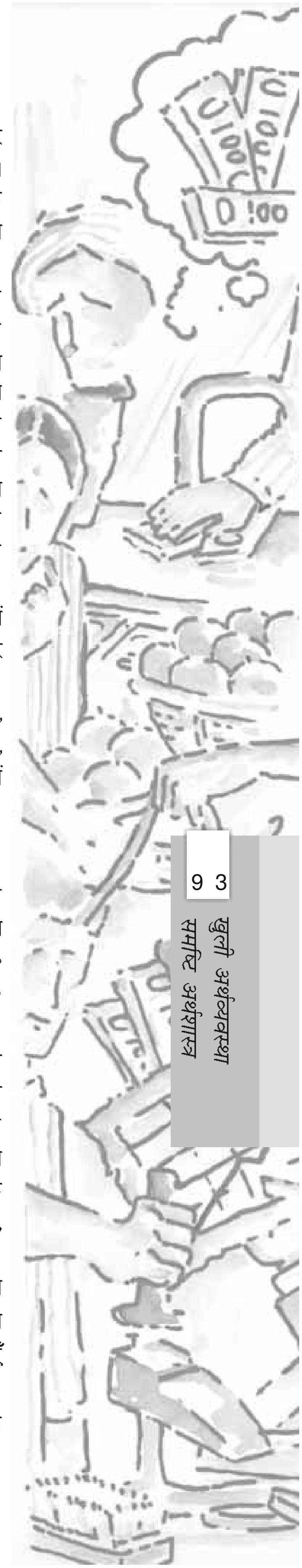

परस्पर समरूप और एक ही प्रकार की होती हैं। अधिकतर अर्थशास्त्री मानते हैं कि अल्पकाल में विनिमय दर के निर्धारण में सापेक्ष कीमतों की तुलना में अन्य कारक अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। किंतु दीर्घकाल में क्रय-शक्ति समता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

6.2.3 स्थिर विनिमय दरें

1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में ब्रेटन वुड्स प्रणाली की समाप्ति के उपरांत प्रायः सभी देशों में नम्य विनिमय दर प्रणाली ही प्रचलित थी। इसके पूर्व अधिकांश देशों में स्थिर अथवा *अधिकीलित विनिमय* दर *प्रणाली* ही थी। इस प्रणाली में एक विशेष स्तर पर विनिमय दरें अधिकीलित होती हैं। कभी-कभी स्थिर विनिमय दर और अधिकीलित विनिमय दर में भेद किया जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि स्थिर विनिमय दर *स्थिर* रहती है जबकि अधिकीलित विनिमय दर का निर्धारण व नियमन मौद्रिक प्राधिकरणों के द्वारा किया जाता है। जिस मूल्य पर विनिमय दर अधिकीलित (सममूल्य) की जाती है, उसे नीति परिवर्त कहते हैं; इसमें परिवर्तन हो सकता है। दोनों प्रणालियों में एक सामान्य तत्व है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंतर्गत, जैसे स्वर्णमान में अदायगी-संतुलन आधिक्यों अथवा घाटों में समायोजन विनिमय दर में परिवर्तन के माध्यम से नहीं हो सकता है। समायोजन या तो स्वतः आर्थिक व्यवस्था के कार्यकरण के माध्यम से होगा (ह्यूम के द्वारा यांत्रिकी व्याख्या नीचे दी गयी है) अथवा सरकार के द्वारा किया जाएगा। अधिकीलित विनिमय दर प्रणाली में भी जब तक विनिमय दर में परिवर्तन न हो अथवा न ही परिवर्तन की आशा हो, तब तक वही विशेषताएँ दिखती हैं। यद्यपि सरकार के सामने एक दूसरा विकल्प खुला होता है कि वह विनिमय दर में परिवर्तन कर सकती है। अधिकीलित विनिमय दर प्रणाली में जब सरकार के द्वारा विनिमय दर में वृद्धि की जाती है, तो इसे मुद्रा का *अवमूल्यन* कहा जाता है। अवमूल्यन का विलोम *पुनर्मूल्यन* होता है अथवा सरकार विनिमय दर को अपरिवर्तित भी रख सकती है और मौद्रिक नीति तथा वित्तीय नीति का प्रयोग करके अदायगी-संतुलन की समस्या का समाधान कर सकती है। बहुत-सी सरकारें विनिमय दर में बार-बार परिवर्तन करती है। हम अपने विश्लेषण में स्थिर और अधिकीलित विनिमय दरों का उपयोग एक विनिमय दर व्यवस्था को सूचित करने के लिए एक-दूसरे के बदले करेंगे। इस विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण सरकार के निर्णयों के द्वारा तथा इसका नियमन सरकार के कार्यों के द्वारा होता है।

हम उस पद्धति का परीक्षण करेंगे, जिसमें कोई देश अपने विनिमय दर के स्तर को "अधिकीलित" व स्थिर करता है। हम कल्पना करते हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक रुपये का सममूल्य 45 रु० प्रति डॉलर स्थिर करना चाहता है (रेखाचित्र 6.3 में e_1)। यह कल्पना करने पर कि यह अधिकृत विनिमय दर नम्य विनिमय दर प्रणाली की साम्य विनिमय दर (यहाँ है $e^* = 50$ रु०) से नीचे है, हम पाएँगे कि रुपये का अधिमूल्यन होगा और डॉलर का अवमूल्यन। इसका अर्थ यह है कि यदि विनिमय दर का बाज़ार में निर्धारण होता, तो बाज़ार को रिक्त करने के लिए रुपयों के रूप में डॉलर के मूल्य में वृद्धि होती।

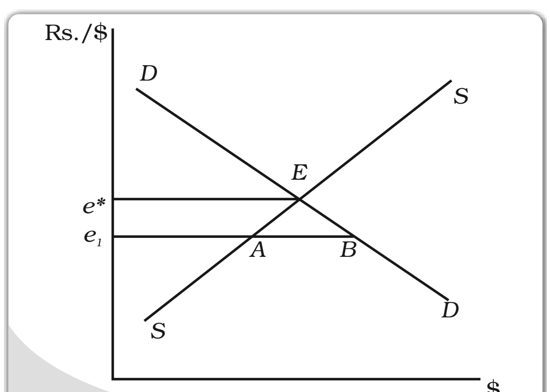

रेखाचित्र 6.3

अधिकीलित विनिमय दर के साथ विदेशी विनिमय बाज़ार

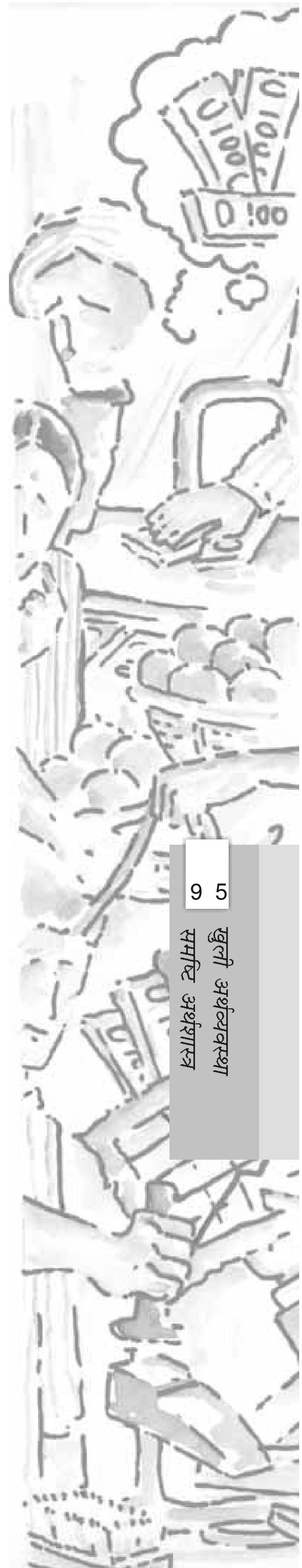

50 रुपये प्रति डॉलर की तुलना में 45 रुपये प्रति डॉलर की स्थिति में रुपया अधिक महँगा होगा (अब एक रुपये की कीमत 2 सेंट की जगह 2.22 सेंट है)। इस दर पर डॉलर की माँग उसकी पूर्ति से अधिक है। चूँकि माँग और पूर्ति अनुसूची की रचना अदायगी-संतुलन खातों (केवल स्वायत्त संव्यवहार को लेकर) से होती है, इसलिए इस अधिमाँग से अदायगी-संतुलन में घाटे का पता चलता है। घाटे की पूर्ति केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के द्वारा होती है। इस स्थिति में, भारतीय रिज़र्व बैंक इस अधिमाँग AB की पूर्ति के लिए विदेशी विनिमय बाज़ार में रुपयों के बदले डॉलर बेचता है। इस प्रकार, विनिमय दर के ऊपरी दबाव को निष्प्रभावी कर दिया जाता है। विनिमय दर में वृद्धि (जब कोई अधिक दर पर खरीदने के लिए तैयार नहीं होगा) या गिरावट (कीमत घटने पर कोई बेचना नहीं चाहेगा) को रोकने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक उस दर पर डॉलर का क्रय-विक्रय करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

अब भारतीय रिज़र्व बैंक अदायगी-संतुलन घाटे के कुछ अंश को पाटने के लिए विनिमय दर का निर्धारण ऊँचे स्तर पर 47 रु० प्रति डॉलर के रूप में कर सकता है। घरेलू मुद्रा के इस मूल्यह्रास से आयात महँगा तथा निर्यात सस्ता होगा और इससे व्यापार घाटा भी कम होगा। यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि वित्तीय घाटे की पूर्ति और विनिमय दर के निर्धारण में केंद्रीय बैंक के बार-बार हस्तक्षेप करने से तद्नुसार अधिकृत आरक्षित विदेशी मुद्रा समाप्त हो जाएगी। यह स्थिर विनिमय दर प्रणाली की सबसे बड़ी त्रुटि है। एक बार अनुमानकर्ताओं को यह विश्वास हो जाता है कि विनिमय दर दीर्घकाल तक बनी नहीं रहती, तो वे बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा (जो यहाँ डॉलर है) खरीदेंगे। डॉलर की माँग में वृद्धि से अदायगी-संतुलन घाटे में अधिक वृद्धि होगी। पर्याप्त आरक्षित विदेशी मुद्रा के अभाव में केंद्रीय बैंक विनिमय दर को अपने साम्य स्तर को प्राप्त करने देगा। इससे और अधिक अवमूल्यन हो सकता है जो कि घरेलू मुद्रा पर सट्टा आक्रमण के पूर्व आवश्यक अवमूल्यन से अधिक प्रभावी हो सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि इन्हीं त्रुटियों के कारण अनेक देशों को स्थिर विनिमय दर प्रणाली का परित्याग करना पड़ा। ऐसे ही आक्रमण के भय से अमेरिका ने 1971 में अपनी मुद्रा को तरणशील रहने दिया। यह एक बड़ी घटना थी, जिसके चलते ब्रेटन वुड्स प्रणाली का विखंडन हुआ।

6.2.4 प्रबंधित तिरती

किसी औपचारिक अंतर्राष्ट्रीय समझौते के बिना विश्व में उत्तम विनिमय प्रणाली का उदय हुआ, जिसे उत्तम रूप में प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली कहा जा सकता है। यह नम्य विनिमय दर प्रणाली (तरितभाग) और स्थिर दर प्रणाली (प्रबंधित भाग) का मिश्रण है। *त्रुटिबहुल तिरती* नाम की इस प्रणाली में केंद्रीय बैंक विनिमय दर को उदार बनाने के लिए जब कभी ऐसे कार्य को समुचित समझता है, तब विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय करके हस्तक्षेप करता है। अतः अधिकृत सुरक्षित संव्यवहार शून्य के समान नहीं होता है।

6.2.5 विनिमय दर प्रबंधः अंतर्राष्ट्रीय अनुभव

स्वर्णमानः लगभग 1870 से 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ होने तक स्वर्णमान ही प्रचलित था, जो कि स्थिर विनिमय दर प्रणाली का सार-तत्व ही था। सभी करेंसियाँ सोने के रूप में परिभाषित की जाती थी। वास्तव में, कुछ तो सोने की ही बनी थी। प्रत्येक सहभागी देश एक निश्चित कीमत पर अपनी मुद्रा को मुक्त रूप से परिवर्तनीयता की गारंटी देने के लिए प्रतिबद्ध था।

इसका अर्थ यह था कि प्रत्येक देश के निवासी अपने देश की घरेलू मुद्रा का दूसरी परिसंपत्ति (सोना) के रूप में एक निश्चित कीमत पर मुक्त रूप से परिवर्तन कर सकते थे और सोना अंतर्राष्ट्रीय अदायगी के रूप में स्वीकार्य था। इससे यह भी संभव हुआ कि एक निश्चित कीमत पर प्रत्येक देश की मुद्रा दूसरी किसी भी मुद्रा के रूप में परिवर्तन योग्य बन गई। विनिमय दरों का निर्धारण सोना के रूप में उस मुद्रा के मूल्य के द्वारा होता था (जहाँ सोने की ही मुद्रा होती थी, वहाँ उसकी वास्तविक सोने की मात्रा होती थी)। उदाहरण के लिए, मुद्रा A की एक इकाई का मूल्य एक ग्राम सोना था और मुद्रा B का मूल्य मुद्रा A के मूल्य का दुगुना होता था। आर्थिक एजेंट प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा B की एक इकाई को मुद्रा A की 2 इकाई के रूप में बदल सकता था। इसके लिए उन्हें पहले सोना खरीदने और उसे बेचने की आवश्यकता नहीं होती थी। दरों में एक ऊपरी सीमा और निचली सीमा के बीच उतार-चढ़ाव होता रहता था। इन सीमाओं का निर्धारण दोनों करेंसियों के निर्माण में आयी लागत के अंतर के द्वारा होता था जिनमें उनके द्रवण, प्रेषण और सिक्के की ढलाई की लागत शामिल थी। अधिकृत समता को बनाए रखने के लिए प्रत्येक देश[3] को सोने के पर्याप्त स्टॉक सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती थी। स्वर्णमान की स्थिति में सारे देशों की विनिमय दर स्थायी थी।

अब प्रश्न यह उठता है कि अत्यधिक आयात करने पर क्या कोई अपने सोने के सारे स्टॉक को समाप्त नहीं कर देगा (अदायगी-संतुलन में घाटा होने पर)? वणिकवादीय[4] व्याख्या इस प्रकार थी कि जब तक राज्य टैरिफ, कोटा अथवा निर्यात पर उपदान के रूप में हस्तक्षेप नहीं करेगा, तब तक वह देश अपने सोने को समाप्त कर देगा और वह अत्यंत बुरी दुर्घटना को प्राप्त होगा। डेविड ह्यूम एक ख्याति प्राप्त दार्शनिक थे, जिन्होंने 1752 में इस मत का खंडन किया और बतलाया कि यदि सोने के भंडार में कमी हुई, तो सभी प्रकार की कीमतें और लागत भी अनुपातिक रूप से गिरेंगी और इससे देश में किसी को भी बुरी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। घरेलू वस्तुएँ सस्ती हो जाने से आयात घटेगा और निर्यात बढ़ेगा (यह वास्तविक विनिमय दर है, जिससे प्रतिस्पर्धा का निर्धारण होगा)। जिस देश से हम आायात कर रहे थे और सोने में उसको भुगतान कर रहे थे, उसको कीमतों और लागतों में वृद्धि का सामना करना पड़ेगा। अतः उनका महँगा निर्यात घटेगा और पहले वाले देश से सस्ती वस्तुओं का आयात बढ़ेगा। इस धातुवाह कीमत तंत्र (अठारहवीं शताब्दी में कीमती धातुओं को सोना-चाँदी भी कहते थे) का परिणाम आमतौर पर सोने की क्षति उठाकर अदायगी-संतुलन में सुधार लाना होता है और सापेक्षिक कीमत पर जब तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में साम्य की पुनर्स्थापना नहीं होती, तब तक प्रतिकूल व्यापार संतुलन वाले देश के अदायगी-संतुलन को अनुकूल व्यापार संतुलन वाले देश के अदायगी-संतुलन को समकक्ष लाता है। इस संतुलन से आगे शुद्ध सोने का प्रवाह नहीं होता है और आयात निर्यात संतुलन बना रहता है। बिना किसी टैरिफ और राज्य की कार्रवाई की आवश्यकता के, स्थायी तथा स्वयं सुधार संतुलन बना रहता है। इस प्रकार स्वचालित साम्य तंत्र के माध्यम से स्थिर विनिमय दर को कायम रखा जाता था।

स्वर्णमान को समय-समय पर कई संकटों का सामना करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप इसका विखंडन हो गया। इसके अतिरिक्त, विश्व में कीमत का स्तर सोने की खोज के वरदान पर निर्भर करता था। इसकी व्याख्या मुद्रा के अशोधित परिमाण सिद्धांत $M = kPY$ के आधार पर की जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार, यदि उत्पादन (सकल घरेलू उत्पाद) में हर वर्ष 4 प्रतिशत की

[3]अगर दर में अंतर उन लेन-देन की लागतों से अधिक हो, तो लाभ मनमाने तरीके से हो सकता है- करेंसी को सस्ते दर पर क्रय करने तथा सहज ढंग से बेचने की प्रक्रिया में।

[4] वणिकवादी विचारधारा का जुड़ाव 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ हुआ।

दर से वृद्धि होती है, तो कीमत को स्थिर बनाए रखने के लिए हर वर्ष सोने की पूर्ति में 4 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक होगी। खादानों से इतनी मात्रा में सोने का उत्पादन नहीं होने से 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूरे विश्व में कीमत स्तर में गिरावट आयी, जिससे समाज में असंतोष की भावना बढ़ गई। एक समय सोने के अनुरूपक के रूप में चाँदी का प्रयोग शुरू हुआ। इसे 'द्विधातुमान' कहा गया। सोने के व्यय को कम करने के लिए *खंड सुरक्षित बैंकिंग* से भी मदद मिली। कागज़ी मुद्रा को सोने का पूर्णत: समर्थन नहीं था। कुछ विशिष्ट देशों में ही एक चौथाई सोना कागज़ी मुद्रा के बदले रखा जाता था। सोने की खपत को कम करने की दूसरी पद्धति *स्वर्ण विनिमय मान* को कई देशों में स्वीकार किया गया। इस पद्धति में सोने के सापेक्ष स्थिर कीमत पर मुद्रा का विनिमय किया जाता है, लेकिन उसके लिए सोने की थोड़ी मात्रा अथवा कुछ भी मात्रा नहीं रखी जाती। सोने के बदले वे किसी बड़े देश (संयुक्त राज्य अथवा ब्रिटेन) की मुद्रा रखते थे, जो स्वर्णमान पर आधारित था। इनसे और क्लोंडिक तथा दक्षिण अफ्रीका में सोने की खोज से 1929 तक अवस्फीति को दूर रखने में मदद मिली। कुछ आर्थिक इतिहासकार इस तरलता की कमी के लिए महामंदी को उत्तरदायी मानते हैं। 1914–45 के मध्य किसी भी प्रकार की सार्वभौमिक प्रणाली नहीं रही, लेकिन इस अवधि में स्वर्णमान की ओर झुकाव और नम्य विनिमय दर दोनों का चलन रहा।

ब्रेटन वुड्स प्रणाली: 1944 में ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) और विश्व बैंक की स्थापना हुई तथा स्थिर विनिमय दर प्रणाली की भी पुनर्स्थापना की गई। परिसंपत्तियों के चयन के रूप में यह अंतर्राष्ट्रीय स्वर्णमान से भिन्न था, जिसमें राष्ट्रीय करेंसी को परिवर्तनीय बनाया गया। करेंसियों की परिवर्तनीयता की द्विस्तरीय प्रणाली की स्थापना की गई, जिसके केंद्र में डॉलर को रखा गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के मौद्रिक प्राधिकरणों के द्वारा 35 डॉलर प्रति आउंस सोना की निश्चित दर पर डॉलर के सोने में परिवर्तनीयता की गारंटी प्रदान की गई। इस प्रणाली के दूसरे स्तर में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रत्येक सदस्य देशों की मुद्रा प्राधिकरण के प्रति प्रतिबद्धता थी, जिसके अंतर्गत वे अपनी मुद्रा को एक निश्चित दर पर डॉलर में परिवर्तन करना चाहते थे। इस दूसरे स्तर को अधिकृत विनिमय दर कहा गया। उदाहरण के लिए, यदि फ्रांस की मुद्रा फ्रंक का 5 फ्रंक प्रति डॉलर के रूप में विनिमय किया जा सकता था और 35 डॉलर प्रति आउंस की दर से सोने का विनिमय डॉलर के रूप में किया जा सकता था, तो इस प्रकार फ्रंक का मूल्य 175 फ्रंक प्रति आउंस सोने की दर पर निर्धारित किया जाता था (5 फ्रंक प्रति डॉलर गुणा 35 डॉलर प्रति आउंस)।

विनिमय दर में परिवर्तन की अनुमति केवल देश के अदायगी–संतुलन में आधारभूत असंतुलन की स्थिति में ही दी जाती थी, जिसका अभिप्राय अदायगी–संतुलन में पर्याप्त अनुपात में चिरकालिक घाटे से है। ऐसी विस्तृत परिवर्तनीय पद्धति की आवश्यकता थी, क्योंकि विभिन्न देशों में सोने का आरक्षित भंडार एक समान नहीं था। अधिकृत सोने के आरक्षित भंडार का 70 प्रतिशत केवल संयुक्त राज्य अमेरिका के पास था। अत: अन्य करेंसियों की विश्वसनीय परिवर्तनीयता के लिए सोने के भंडार के पुनर्वितरण की आवश्यकता होती। इसके अतिरिक्त, यह विश्वास किया जाता था कि अंतर्राष्ट्रीय तरलता की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए विद्यमान स्वर्ण भंडार अपर्याप्त था। स्वर्ण भंडार की रक्षा की एक विधि द्वि–स्तरीय परिवर्तन पद्धति थी, जिसमें प्रधान मुद्रा का परिवर्तन सोना में और अन्य करेंसियों का परिवर्तन प्रधान मुद्रा के रूप में होता था।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् युद्ध से विनष्ट देशों के पुनर्निमाण के लिए अत्यधिक संसाधन की आवश्यकता थी। आयात में वृद्धि हुई और घाटे के वित्त पोषण के लिए आरक्षित निधि का उपयोग किया गया। ऐसे देशों में उस समय संयुक्त राज्य की करेंसी डॉलर का उपयोग शेष विश्व के देशों में आरक्षित निधि के रूप में होता था। संयुक्त राज्य में लगातार अदायगी–संतुलन घाटे के

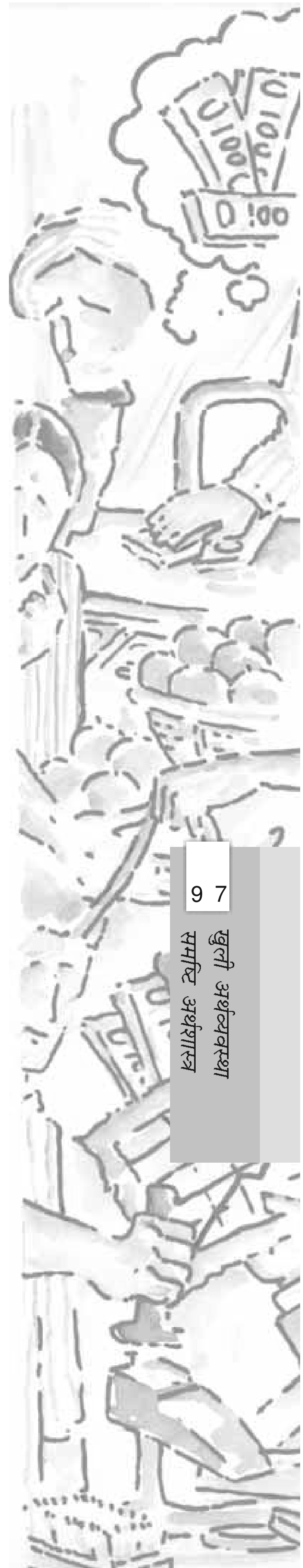

परिणामस्वरूप उस आरक्षित निधि में वृद्धि हुई (अन्य देश अपनी मुद्रा और डॉलर के बीच परिवर्तनीयता को बनाए रखने की अपनी प्रतिबद्धता के कारण आरक्षित धन के रूप में डॉलर का संग्रह करना चाहते थे)।

अब समस्या यह थी कि यदि संयुक्त राज्य की अल्पकालिक डॉलर देयता में स्वर्ण भंडार के सापेक्ष वृद्धि निरंतर जारी रहती, तो उसकी स्थिर कीमत पर डॉलर के सोने में परिवर्तन की प्रतिबद्धता की विश्वसनीयता के प्रति विश्वास नहीं रह जाता। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक के पास वर्तमान डॉलर के प्रतिधारित को सोने में परिवर्तन करने के लिए प्रचुर प्रोत्साहन होता और उससे संयुक्त राज्य को अपनी प्रतिबद्धता का परित्याग करने को बाध्य होना पड़ता। इसे ब्रेटन वुड्स पद्धति के मुख्य आलोचक राबर्ट ट्रिफिन के नाम से ट्रिफिन दुविधा कहा जाता है। ट्रिफिन ने सलाह दी कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को केंद्रीय बैंकों के 'जमा बैंकों' में बदल देना चाहिए और नई 'आरक्षित परिसंपत्ति' का सृजन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नियंत्रण में करना चाहिए। 1967 में विशेष आहरण अधिकार (SDRs) के सृजन से सोना विस्थापित हो गया। अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित स्टॉक में वृद्धि करने के आशय से विशेष आहरण अधिकार (SDRs) को अंतर्राष्ट्रीय करेंसी के रूप में, 'कागज़ी स्वर्ण' के रूप में भी जाना जाता है। सोने के रूप में परिभाषा में 35 (SDRs) को एक आउंस सोना (ब्रेटन वुड्स पद्धति की डॉलर–सोना की दर) के समान माना गया। 1974 से इसे कई बार पुनर्परिभाषित किया गया है। वर्तमान में प्रतिदिन इसकी गणना पाँच देशों (फ्रांस, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन और अमेरिका) की चार करेंसियों (यूरो, डॉलर, जापानी येन, पौंड, स्टर्लिंग) के डॉलर में मूल्य के भारित योग के रूप में होती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों के द्वारा आरक्षित मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय करेंसियों के विनिमय के लिए केंद्रीय बैंकों के मध्य भुगतान के साधन के रूप में इसका प्रयोग किए जाने से, इसे शक्ति प्राप्त होती है। विशेष आहरण अधिकार की मूल्य किस्त का वितरण सदस्य देशों के बीच निधि (कोटा का संबंध देश के आर्थिक महत्त्व से संबंधित था, जिसका संकेत उसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मूल्य से मिलता था) में उनके कोटे के अनुसार किया जाता था।

ब्रेटन वुड्स पद्धति के विखंडन के पहले अनेक घटनाएँ हुई, जैसे–1967 में पौंड का अवमूल्यन, 1968 में डॉलर से सोने की ओर पलायन से द्वि–स्तरीय स्वर्ण बाज़ार (अधिकृत दर 35 डॉलर प्रति आउंस सोना थी और निजी दर का निर्धारण बाज़ार द्वारा होता था) का सृजन और अंत में अगस्त 1971 में ब्रिटेन ने माँग की कि अमेरिका अपने डॉलर की धारित निधि के स्वर्ण मूल्य की गारंटी दे। इससे अमेरिका ने डॉलर और सोने के बीच के संबंध का परित्याग करने का निर्णय लिया।

1971 में 'स्मिथसोनियन समझौते' से विनिमय दर में नई केंद्रीय दर से 2.5 प्रतिशत ऊपर या नीचे तक के संचलन की अनुमेय बैंड को विस्तार मिला। इससे यह आशा की गई कि घाटे वाले देशों पर दबाव कम होगा। यह केवल 14 वर्षों तक चला। विकसित बाज़ार अर्थव्यवस्था जिसका नेतृत्व यूनाइटेड किंगडम और बाद में स्विटजरलैंड और फिर जापान ने किया, में तिरती विनिमय दरों को 1970 के दशक में स्वीकार करना आरंभ हुआ। 1976 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुच्छेदों की पुनरावृत्ति से देशों को अपने करेंसियों की तिरती रखने अथवा उन्हें अधिकीलित करने की अनुमति मिली (एकल करेंसियों का समूह अथवा SDR अधिकीलित दर)। अधिकीलित दरों के लिए कोई नियम नहीं है और वस्तुतः तिरती दर और विनिमय दरों के पर्यवेक्षण के लिए भी कोई नियम नहीं है।

वर्तमान परिदृश्य: वर्तमान में अनेक देशों में स्थिर विनिमय दर हैं। कुछ देश अपनी करेंसियों को डॉलर में अधिकीलित करते हैं। जनवरी, 1999 में यूरोपीय मौद्रिक संघ के सृजन से संघ के सदस्यों की करेंसियों के बीच विनिमय दर स्थायी रूप से निर्धारित हुई और एक नई समान मुद्रा यूरो को जारी किया गया। इसे यूरोपीय केंद्रीय बैंक के प्रबंध में जारी किया गया। जनवरी, 2002 से

वास्तविक नोट और सिक्के चलाये गये। अब तक 25 में 12 यूरोपीय संघ के सदस्यों ने यूरो को अपनाया है। कुछ देशों ने अपनी मुद्रा को फ्रांस के फ्रंक में अधिकीलित किया है, इनमें प्रायः अफ्रीका की फ्रांसीसी कॉलोनियाँ हैं। अन्य देशों ने करेंसियों के समूह में अधिकीलित किया है, जिसमें उनके व्यापार की रचना प्रतिबिंबित होती है। प्रायः छोटे देश भी एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक सहभागी के सापेक्ष अपनी विनिमय दर निर्धारित करने का निर्णय लेते हैं। उदाहरण के लिए–अर्जेंटीना ने 1991 में मुद्रा बोर्ड प्रणाली अपनायी। इसके तहत स्थानीय मुद्रा (पेसो) और डॉलर के बीच कानून द्वारा विनिमय दर तय किया गया। केंद्रीय बैंक अपनी जारी सारी घरेलू मुद्रा और आरक्षित निधि के बदले पर्याप्त विदेशी मुद्रा अपने पास रखता है। ऐसी व्यवस्था में कोई देश अपनी इच्छा से मुद्रा की पूर्ति में विस्तार नहीं कर सकता है। यदि कोई घरेलू बैंकिग संकट (जब बैंक को घरेलू मुद्रा ग्रहण करने की ज़रूरत होती है) होता है, तो केंद्रीय बैंक अंतिम ऋण दाता नहीं बना रह सकता। किंतु, संकट के बाद अर्जेंटीना ने मुद्रा बोर्ड का परित्याग कर दिया और जनवरी, 2002 में अपनी मुद्रा को तिरती रहने दिया।

2000 में इक्वेडोर ने *डॉलरीकरण* की नयी व्यवस्था अपनायी और घरेलू मुद्रा को छोड़कर संयुक्त राज्य के डॉलर को स्वीकार किया। सारी कीमतें डॉलर में रखी गई और स्थानीय मुद्रा में लेन-देन बंद हो गया। यद्यपि अनिश्चितता और जोखिम से बचा जा सकता है, किंतु इक्वेडोर ने अपनी मुद्रा पूर्ति का नियंत्रण संयुक्त राज्य के केंद्रीय बैंक-फेंडरल रिज़र्व को दे दिया है और इस तरह वह संयुक्त राज्य की आर्थिक दशाओं पर आधारित होगा।

समस्त रूप से अब अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बहु-प्रणाली के रूप में चित्रित किया जा सकता है। अधिकांश विनिमय दरों में दिन-प्रतिदिन के आधार पर थोड़ा परिवर्तन होता है और बाज़ार की शक्तियाँ आमतौर पर मूल प्रवृत्ति को निर्धारित करती है। यहाँ तक कि जो भी विनिमय दर में अधिक स्थिरता की वकालत करते थे, वे भी यह प्रस्ताव रखा कि सामान्यतः सरकार को एक निश्चित परास के अंतर्गत दर निर्धारित करनी चाहिए, बजाय इसके शाब्दिक निर्धारण के। सोने की भूमिका का भी विलोपन हो गया है। इसके स्थान पर एक ऐसा निर्बाध बाज़ार, जिसमें सोने की कीमत का निर्धारण सोने की माँग तथा पूर्ति जो मुख्यतः ज्वेलरियों, औद्योगिक उपयोगकर्ताओं, दंत चिकित्सकों, सट्टोरिया तथा साधारण नागरिकों से होती है, जो कि ये मानते हैं कि स्वर्ण एक अच्छा मूल्य संग्रह हैं।

6.3 खुली अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण

उपभोक्ता एवं फर्मों को घरेलू उत्पादित वस्तुओं और विदेशी वस्तुओं का क्रय करने का विकल्प होता है, इसीलिए देशी वस्तुओं की घरेलू माँग और घरेलू वस्तुओं की माँग के बीच अंतर की आवश्यकता होती है।

6.3.1 खुली अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय का तादात्म्य

बंद अर्थव्यवस्था में **घरेलू वस्तुओं की माँग** के तीन स्रोत हैं–उपभोग (C), सरकारी खर्च (G), घरेलू निवेश (I)। इसे इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$Y = C + I + G \qquad (6.2)$$

खुली अर्थव्यवस्था में निर्यात *(X)* से घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की माँग के अतिरिक्त स्रोत की रचना होती है, जो विदेशों से आता है और इसलिए इसे समस्त माँग में जोड़ा जाना चाहिए। घरेलू बाज़ारों में आयात से पूरक पूर्ति होती है और इससे घरेलू माँग के उस भाग की रचना होती है, जिससे विदेशी वस्तुओं और सेवाओं की माँग पर असर होता है। अतः राष्ट्रीय आय, एक खुली अर्थव्यवस्था में तादात्म्य है:

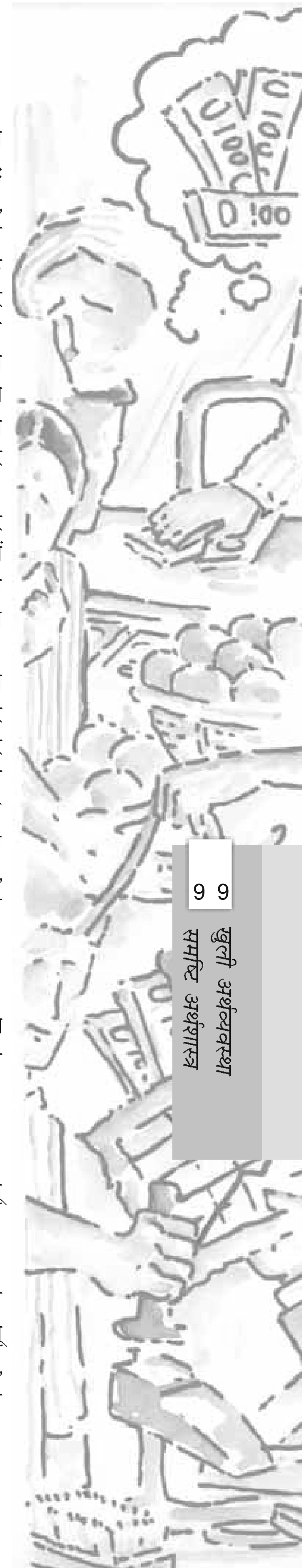

$$Y + M = C + I + G + X \qquad (6.3)$$

पुनर्गठन करने पर

$$Y = C + I + G + X - M \qquad (6.4)$$

या,

$$Y = C + I + G + NX \qquad (6.5)$$

जहाँ NX **निवल निर्यात** (निर्यात–आयात) है। एक धनात्मक निवल निर्यात (निर्यात, आयात से ज़्यादा) से व्यापार अधिशेष और ऋणात्मक निवल निर्यात (आयात, निर्यात से ज़्यादा) से व्यापार घाटा सूचित होता है।

किसी खुली अर्थव्यवस्था में साम्य आय के निर्धारण में आयात और निर्यात की भूमिका की जाँच करने के लिए हम उसी प्रक्रिया को अपनाते हैं, जिस प्रक्रिया का प्रयोग हमने बंद अर्थव्यवस्था के मामले में किया। अर्थात् हम निवेश और सरकार के स्वायत्त व्यय को लेते हैं। इसके अतिरिक्त हमें आयात और निर्यात के निर्धारकों को भी स्पष्ट करने की आवश्कता होती है। आयात की माँग घरेलू आय (Y) और वास्तविक विनिमय दर (R) पर निर्भर करती है। उच्च आय होने पर अधिक आयात किया जाता है। वास्तविक विनिमय दर को घरेलू वस्तु के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत के रूप में परिभाषित किया जाता है। उच्च विनिमय दर से विदेशी वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक महँगी हो जाती हैं और इस प्रकार आयात की मात्रा में कमी आती है। अतः आय (Y) का आयात पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है और वास्तविक विनिमय दर (R) का ऋणात्मक। परिभाषा से एक देश का निर्यात दूसरे देश का आयात होता है। इस प्रकार, हमारे निर्यात से विदेशी आयात की रचना होती है। यह विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर पर निर्भर करेगा। विदेशी आय में वृद्धि से हमारी वस्तुओं की विदेशी माँग में वृद्धि होगी, जिससे अधिक निर्यात होगा। विनिमय दर (R) में वृद्धि से घरेलू वस्तु सस्ती होगी और हमारे निर्यात में वद्धि होगी। विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर का निर्यात पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, निर्यात और आयात घरेलू आय, विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर पर निर्भर करते हैं। हम कल्पना करते हैं कि कीमत स्तर और मौद्रिक विनिमय दर स्थिर है, तो वास्तविक विनिमय दर भी स्थिर होगी। हमारे देश के मामले में विदेशी आय और इसलिए निर्यात को बहिर्जात ($X = \bar{X}$) समझा जाता है। इस प्रकार आयात की माँग आय पर निर्भर मानी जाती है और इसका एक स्वायत्त घटक होता है।

$$M = \bar{M} + mY \text{ जहाँ } \bar{M} > 0 \text{ स्वायत्त घटक है } 0 < m < 1\text{।} \qquad (6.6)$$

यहाँ m आयात की सीमांत प्रवृत्ति है। आय का एक अतिरिक्त रुपया आयात पर खर्च करने से प्राप्त अनुपात है। यह सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के सादृश्य होता है।

साम्य आय इस प्रकार होगा–

$$Y = \bar{C} + c(Y - T) + \bar{I} + \bar{G} + \bar{X} - \bar{M} - mY \qquad (6.7)$$

स्वायत्त घटकों को $\bar{A}$ के रूप में एक साथ लेने पर प्राप्त होता है,

$$Y = \bar{A} + cY - mY \qquad (6.8)$$

या,

$$(1 - c + m)Y = \bar{A} \qquad (6.9)$$

या,

$$Y^* = \frac{1}{1 - c + m}\bar{A} \qquad (6.10)$$

आय व्यय ढाँचे में विदेशी व्यापार की अनुमति के प्रभाव की परीक्षा करने के क्रम में हमें बंद

अर्थव्यवस्था के मॉडल में साम्य आय के लिए समतुल्य अभिव्यक्ति के समीकरण (6.10) की तुलना करनी होगी। दोनों समीकरणों में साम्य आय को दो पदों, स्वायत्त व्यय गुणक और स्वायत्त व्यय स्तरों के गुणनफल के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। हम यह विचार करें कि खुली अर्थव्यवस्था के संदर्भ में इनमें से प्रत्येक में कैसे परिवर्तन होता है।

क्योंकि आयात की सीमांत प्रवृत्ति शून्य से अधिक होती है, इसलिए खुली अर्थव्यवस्था में हमें छोटा गुणक प्राप्त होता है। इसे निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है:

$$\text{खुली अर्थव्यवस्था गुणक} = \frac{\Delta Y}{\Delta \bar{A}} = \frac{1}{1-c+m} \qquad (6.11)$$

उदाहरण 6.2

यदि $c = 0.8$ और $m = 0.3$, तो बंद और खुली अर्थव्यवस्था गुणक क्रमशः इस प्रकार प्राप्त होगा,

$$\frac{1}{1-c} = \frac{1}{1-0.8} = \frac{1}{0.2} = 5 \qquad (6.12)$$

और

$$\frac{1}{1-c+m} = \frac{1}{1-0.8+0.3} = \frac{1}{0.5} = 2 \qquad (6.13)$$

घरेलू स्वायत्त माँग में यदि 100 की वृद्धि हो, तो बंद अर्थव्यवस्था में निर्गत में 500 की वृद्धि होगी जबकि खुली अर्थव्यवस्था में केवल 200 की।

अर्थव्यवस्था को खोलने से स्वायत्त व्यय गुणक के मूल्य में गिरावट की व्याख्या हम गुणक प्रक्रम के अपनी पूर्व चर्चा के आधार पर कर सकते हैं (अध्याय-4)। उदाहरण के लिए, स्वायत्त व्यय में परिवर्तन और सरकारी व्यय में परिवर्तन का आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव और उपभोग पर प्रेरित प्रभाव पड़ेगा, जिससे पुनः आय प्रभावित होगी। *सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के* शून्य से अधिक होने पर उपभोग पर प्रेरित प्रभाव के अनुपात से *विदेशी* वस्तुओं की माँग का सूचक होगा, न कि घरेलू वस्तुओं की। अतः घरेलू वस्तुओं की माँग तथा घरेलू आय पर प्रेरित प्रभाव कम होगा। आय के प्रति इकाई आयात में वृद्धि से गुणक प्रक्रिया के प्रत्येक चक्र में घरेलू आय के वर्तुल प्रवाह से एक अतिरिक्त लीकेज होता है तथा स्वायत्त व्यय गुणक के मूल्य में कमी होती है।

समीकरण 6.10 में दूसरा पद दर्शाता है कि बंद अर्थव्यवस्था के लिए अवयवों के अतिरिक्त खुली अर्थव्यवस्था के लिए स्वायत्त व्यय में निर्यात का स्तर और आयात का स्वायत्त घटक शामिल होता है।

इस प्रकार, उनके स्तरों में परिवर्तन अतिरिक्त आघात होते हैं, जिससे संतुलित आय में परिवर्तन होते हैं। समीकरण 6.10 से हम $\bar{X}$ और $\bar{M}$ में परिवर्तन के गुणक प्रभाव का आकलन कर सकते हैं।

$$\frac{\Delta Y^*}{\Delta \bar{X}} = \frac{1}{1-c+m} \qquad (6.14)$$

$$\frac{\Delta Y^*}{\Delta \bar{M}} = \frac{-1}{1-c+m} \qquad (6.15)$$

हमारे निर्यात की माँग में वृद्धि से निर्गत के घरेलू उत्पादन की समस्त माँग में वृद्धि होती है और उससे माँग में वृद्धि होगी, साथ ही सरकारी खर्च अथवा निवेश में स्वायत्त वृद्धि होगी। इसके

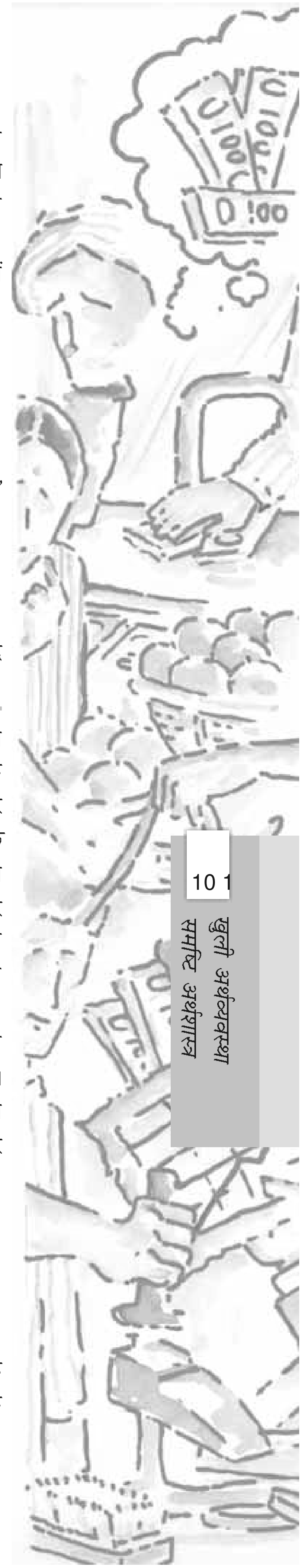

विपरीत, आयात माँग स्वायत्त रूप से बढ़ने के कारण घरेलू निर्गत की माँग गिरेगी और इससे संतुलन आय में भी गिरावट होगी।

6.3.2 संतुलन निर्गत और व्यापार संतुलन

हम उपर्युक्त युक्तियों और व्यापार संतुलन पर पड़ने वाले अतिरिक्त प्रभाव की चित्रीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। जैसाकि हमने पहले देखा कि निवल निर्यात ($NX = X - M$) निर्भर करता है– Y, Y_f और R पर। Y के बढ़ने से आयात खर्च बढ़ता है और उससे व्यापार में घाटा (यदि हमारा आरंभिक व्यापार संतुलन $NX = 0$ हो) होता है। यदि अन्य बातें समान रहें तो Y_f में वृद्धि से हमारा निर्यात बढ़ता है, व्यापार आधिक्य होता है और समस्त आय में वृद्धि होती है। वास्तविक रूप से मूल्यह्रास निर्यातों को बढ़ायेगा, आयातों को घटाएगा और इस प्रकार निवल निर्यात में वृद्धि होगी।

रेखाचित्र 6.4 के ऊपरी पैनल में रेखा AD घरेलू माँग को बताती है, $C + I + G$ आय फलन को (अध्याय 5 के अंतरंग बंद अर्थव्यवस्था के संबंध)। हमारे मानक मान्यताओं के अंतर्गत इसकी प्रवणता धनात्मक है, किंतु एक से कम है। घरेलू वस्तुओं की माँग की प्राप्ति के लिए पहले हम रेखा AA प्राप्त कर आयात को घटाते हैं। AD और AA के बीच की दूरी आयात के मूल्य M के बराबर है। चूँकि आयात की मात्रा आय के साथ बढ़ती है, इसीलिए दोनों रेखाओं की दूरी भी आय के साथ बढ़ती जाती है। AD से AA अधिक सपाट है क्योंकि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, कुछ अतिरिक्त घरेलू माँग विदेशी वस्तुओं के लिए होती है। इस प्रकार, आय में वृद्धि से घरेलू वस्तुओं की घरेलू माँग कुल घरेलू माँग से कम बढ़ती है। दूसरा, हम निर्यात को जोड़कर DD रेखा प्राप्त करते हैं, जो AA के ऊपर है। DD और AA के बीच की दूरी निर्यात के बराबर है। यह स्थिर रहती है, क्योंकि निर्यात घरेलू आय (दोनों रेखाएँ समांतर है) पर निर्भर नहीं करता है। अब खुली अर्थव्यवस्था समस्त माँग वक्र DD बंद अर्थव्यवस्था माँग वक्र से अधिक सपाट है (क्योंकि AD से AA अधिक सपाट है)।

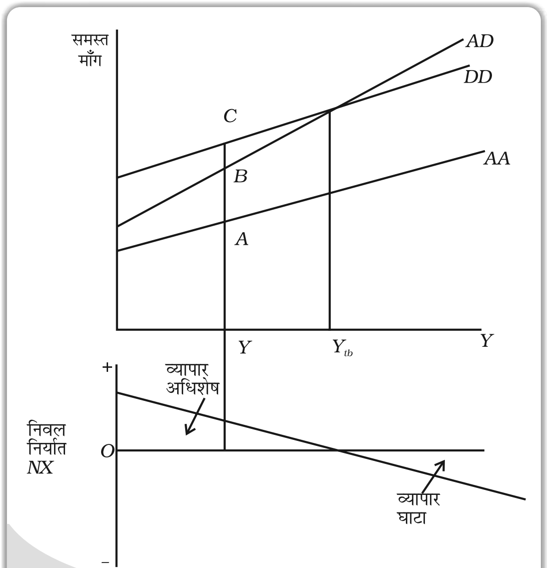

रेखाचित्र 6.4

एक खुली अर्थव्यवस्था में समस्त माँग तथा निर्यात

रेखाचित्र 6.4 के निचले पैनल में हम निवल निर्यात NX के व्यवहार की परीक्षा आय फलन के रूप में करते हैं। उदाहरणार्थ, आय स्तर Y पर निर्यात को दूरी AC और आयात को दूरी AB से दर्शाया गया है, इसीलिए निवल निर्यात की दूरी BC से दर्शाया जाता है।

निवल निर्यात घरेलू आय का घटता हुआ फलन है। जब आय में वृद्धि होती है, आयात बढ़ता है और निर्यात अप्रभावित रहता है, जिससे कम निवल निर्यात होता है। आय के Y_{tb} ('tb' व्यापार संतुलन है) स्तर पर जहाँ आयात का मूल्य निर्यात के मूल्य के ठीक बराबर है, निवल निर्यात शून्य के बराबर है। Y_{tb} से ऊपर के आय स्तरों पर उच्च आयात होगा और इस प्रकार व्यापार घाटा होगा। Y_{tb} के नीचे के आय स्तरों पर निम्न आयात होगा और इस प्रकार व्यापार आधिक्य में रहेगा।

जब घरेलू निर्गत की पूर्ति घरेलू निर्गत की माँग के बराबर हो, तो वस्तु बाज़ार संतुलन में होता है। इसे रेखाचित्र 6.5 में बिंदु E पर DD रेखा के 45 अंश पर प्रतिच्छेदन से दर्शाया गया है।

निर्गत Y के संतुलन स्तर का निर्गत के उसी स्तर पर, जिस पर व्यापार संतुलित है, Y_{tb} में ही होने का कोई कारण नहीं है। रेखाचित्र 6.5 में संतुलन निर्गत दूरी BC के बराबर व्यापार घाटा से जुड़ा है।

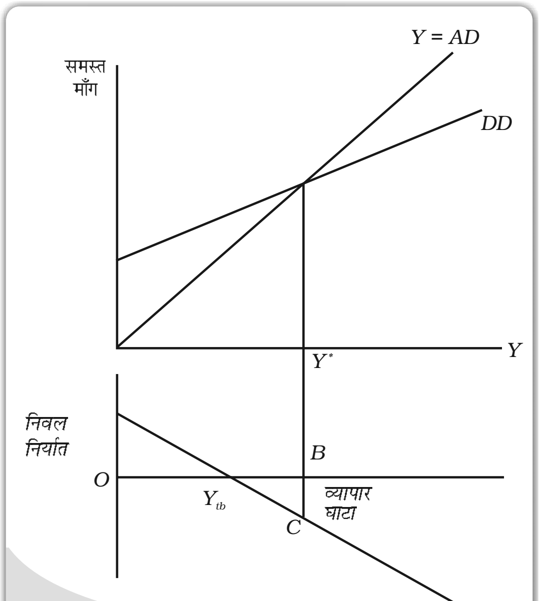

रेखाचित्र 6.5

संतुलित आय एवं निवल निर्यात

स्वायत्त व्यय में वृद्धि (मान लें, G) के प्रभावों की परीक्षा के लिए, हम एक ऐसी स्थिति की कल्पना करते हैं, जब आय Y के संतुलन स्तर पर व्यापार संतुलन की स्थिति में है, जिससे Y और Y_{tb} एक समान है। यदि सरकार अपने खर्च में वृद्धि करती है, तो समस्त माँग रेखा में DD से DD' तक संचलन होगा और संतुलन में E से E' तक संचलन होगा तथा आय में Y से Y' की वृद्धि होगी। निवल निर्यात अनुसूची में निर्गत के फलन में अधिक वृद्धि होती है, फलन के रूप में शिफ्ट नहीं होता है क्योंकि X अथवा M के संबंध में G प्रत्यक्षतः प्रवेश नहीं करता है। G में वृद्धि की तुलना में निर्गत में अधिक वृद्धि होती है। ऐसा गुणक प्रभाव के कारण होता है। यह बंद अर्थव्यवस्था की स्थिति जैसी है, केवल गुणक छोटा है। DD वक्र बंद अर्थव्यवस्था के AD वक्र से अधिक सपाट है।

किंतु Y से Y' तक निर्गत में वृद्धि से व्यापार घाटा BC के बराबर हो जाता है। व्यापार घाटा और छोटा गुणक दोनों एक ही कारण से उत्पन्न होते हैं। अब माँग में वृद्धि का फलन केवल घरेलू वस्तुओं पर पड़ता है, बल्कि विदेशी वस्तुओं पर भी। जैसाकि पहले इसकी व्याख्या की जा चुकी है, इससे छोटा गुणक होता है। चूँकि कुछ वृद्धि आयात पर पड़ती है और निर्यात अपरिवर्तित रहता है, फलस्वरूप व्यापार घाटा होता है।

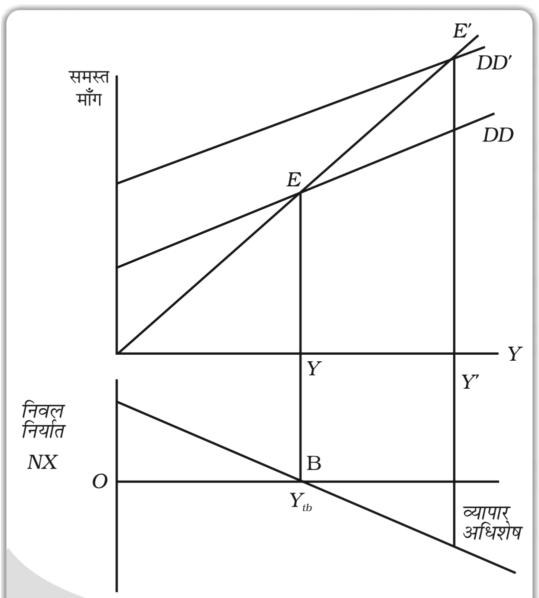

रेखाचित्र 6.6

उच्चतर सरकारी व्यय का प्रभाव

ये दोनों ही निहितार्थ महत्त्वपूर्ण हैं। अर्थव्यवस्था जितनी खुली होगी, आय पर उतना ही कम प्रभाव होगा और व्यापार शेष पर अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उदाहरणार्थ,

मान लीजिए कि किसी देश का आयात उसके सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 70 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि जब माँग में वृद्धि होती है तो इस 70 प्रतिशत की माँग वृद्धि से उच्च आयात होता है और केवल 30 प्रतिशत से ही घरेलू वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। अतः G में वृद्धि से देश के व्यापार घाटे में अधिक वृद्धि होती है और निर्गत एवं आय में कम वृद्धि होती है। इस तरह घरेलू माँग में विस्तार देश के लिए एक अनाकर्षक नीति बन जाती है।

परस्पर निर्भर आय-विदेशी माँग में वृद्धि: हमने अब तक यह कल्पना की थी कि विदेशी आय, कीमतें और विनिमय दर अपरिवर्तित रहते हैं। पहले हम कीमत और विनिमय दर को स्थिर रखकर विदेशी आय Y_f में वृद्धि पर विचार करें। चित्र 6.7 में घरेलू वस्तुओं की प्रारंभिक माँग को DD से दर्शाया गया है। संतुलन निर्गत स्तर Y के साथ बिंदु E पर है। हम कल्पना करते हैं कि प्रारंभ में व्यापार संतुलित होता है तथा Y से जुड़ा निवल निर्यात शून्य के बराबर होता है।

जैसाकि रेखाचित्र 6.4 में उल्लिखित है कि रेखा AD, DD से अधिक प्रवण है और अंतर निवल निर्यात के बराबर है ताकि यदि E पर व्यापार संतुलित हो जाता है, तब E पर DD, AD को प्रतिच्छेद करे। Y_f में वृद्धि का सीधा प्रभाव निर्यात में वृद्धि है। देशी आय के दिए हुए स्तर के लिए, इससे घरेलू वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है, जिससे DD में DD' तक शिफ्ट होता है। आय के एक दिए हुए स्तर पर जब निर्यात में वृद्धि होती है, तब निवल निर्यात रेखा में भी NX' तक वृद्धि होती है। नया संतुलन बिंदु E' पर होता है और निवल निर्गत Y' स्तर का होता है। Y_f में वृद्धि से गुणक के माध्यम से घरेलू आय में वृद्धि होती है।

व्यापार शेष का क्या होता है? यदि Y में वृद्धि से आयात में अधिक वृद्धि होगी, तो व्यापार शेष घटेगा। किंतु ऐसा नहीं होता है। आय के नये स्तर पर घरेलू माँग को DE' से दर्शाया गया है। अतः निवल निर्यात को CE' से दर्शाया गया है, क्योंकि यह आवश्यक है कि AD, DD' के नीचे हो तथा धनात्मक हो। इस प्रकार, जब आयात बढ़ता है तो उससे निर्यात में वृद्धि पर कोई परिवर्तन नहीं होता है और व्यापार आधिक्य होता है। इसके विपरीत, विदेशों में मंदी घरेलू निर्यात को घटायेगी तथा इससे व्यापार घाटा होगा। अतः किसी देश में तेजी और मंदी की स्थिति होने से उसका संचरण वस्तुओं और सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से दूसरे देश को होता है।

कीमतों में परिवर्तन: अब हम विनिमय दर को स्थिर मान कर, कीमतों में परिवर्तन के प्रभावों पर विचार करें। यदि घरेलू उत्पादों की कीमतें गिरती हैं जबकि विदेशी कीमतें स्थिर रहती हैं, तो घरेलू निर्यात बढ़ेगा और समस्त माँग में वृद्धि होगी तथा इससे हमारे निर्गत और आय में भी वृद्धि होगी। इसके सादृश्य देश के निर्यात की कीमत में वृद्धि से देश का निवल निर्यात, निर्गत और आय में ह्रास होगा। इसी प्रकार, विदेशी कीमत में वृद्धि से विदेशी उत्पाद अधिक महँगे होंगे और इससे निवल निर्यात, घरेलू निर्गत और आय में पुनः वृद्धि होगी। विदेशों में कीमतों में कमी का विपरीत प्रभाव पड़ता है।

विनिमय दर परिवर्तन: मौद्रिक विनिमय दर में परिवर्तन से वास्तविक विनिमय दर में परिवर्तन होगा और इससे अंतर्राष्ट्रीय सापेक्ष कीमत में भी परिवर्तन होगा। रुपया का मूल्यह्रास होने से विदेशी वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाएँगी और घरेलू वस्तुएँ सस्ती हो जाएँगी। इससे निवल निर्यात बढ़ जाएगा, अतः समस्त माँग बढ़ जाएगी। इसके प्रतिकूल मुद्रा में मूल्यवृद्धि से निवल निर्यात में कटौती होगी, जिससे समस्त माँग में कमी होगी। किंतु, हमें यह याद रहे कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ढाँचे में विनिमय दरों में परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया करने में समय लगता है। निवल निर्यात की स्थिति में कोई सुधार देखने में आए, इसमें बहुत समय लग जाता है।

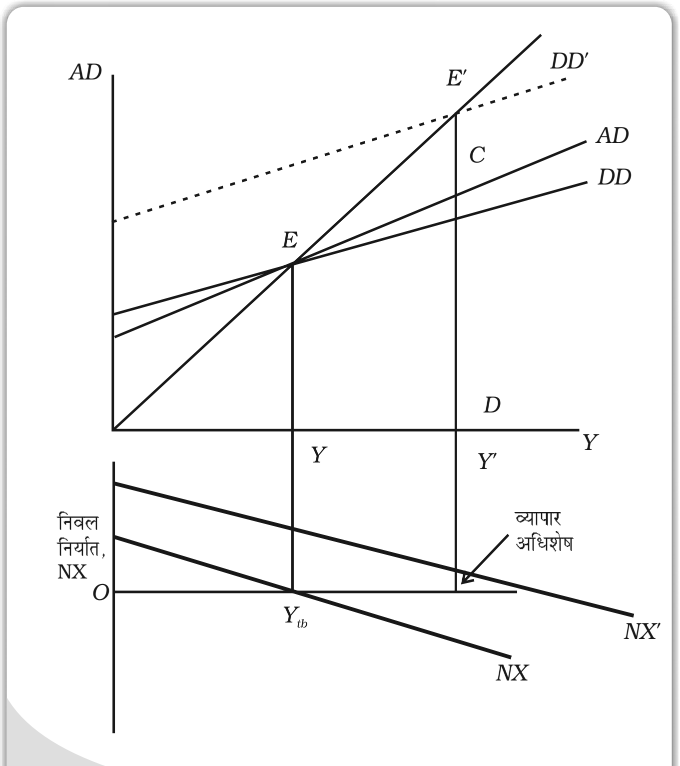

रेखाचित्र 6.7

उच्चतर विदेशी माँग का प्रभाव

6.4 व्यापार घाटा, बचत और निवेश

प्रश्न उठता है कि व्यापार घाटे से क्या खतरे का संकेत होता है? स्मरणीय है कि बंद अर्थव्यवस्था और खुली अर्थव्यवस्था के बीच जो महत्त्वपूर्ण अंतर है, वह यह है कि बंद अर्थव्यवस्था में बचत और निवेश हमेशा एक समान रहते हैं, जबकि खुली अर्थव्यवस्था में इनमें अंतर पाया जाता है।

समीकरण 6.5 से हम पाते हैं–

$$Y - C - G = I + NX \quad (6.16)$$

अथवा

$$S = I + NX \quad (6.17)$$

हम निजी बचत, S^p (प्रयोज्य आय का वह हिस्सा जो उपभोग के बजाए बचत की जाती है– $Y - T - C$) तथा सरकारी बचत; S^g (सरकार की आय, उसकी निवल कर आय–उसका उपभोग; सरकारी क्रय $T - G$) में भेद करते हैं। दोनों को राष्ट्रीय बचत में जोड़ा जाता है।

$$S = Y - C - G = (Y - T - C) + (T - G) = S^p + S^g \quad (6.18)$$

समीकरण (6.16) और (6.17) से हम पाते हैं:

$$S = S^p + S^g = I + NX$$

अथवा

$$NX = (S^p - I) + S^g = (S^p - I) + (T - G) \quad (6.19)$$

जब किसी देश में व्यापार घाटा[5] होता है, तो समीकरण (6.18) में दाहिनी तरफ देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि बचत में कमी हो रही है, निवेश में बढ़ोतरी हो रही है अथवा बजट घाटे में वृद्धि हो रही है। देश के दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य के बारे में चिंता का कारण तब होता है, जब व्यापार घाटे से बचत कम होती है और बजटीय घाटा अधिक होता है (जब अर्थव्यवस्था में व्यापार घाटा और बजटीय घाटा दोनों ही हों, तब उसे *दोहरा घाटा* कहा जाता है)। घाटे से उच्च निजी उपभोग अथवा सरकारी उपभोग प्रतिबिंबित होता है। इन स्थितियों में देश के पूँजी स्टॉक में तेजी से वृद्धि नहीं होगी, जिससे पर्याप्त संवृद्धि हो सके (जिसे 'संवृद्धि लाभांश' कहा जाता है) और ऋण की अदायगी की जा सके। परंतु यदि व्यापार घाटे से निवेश में वृद्धि प्रतिबिंबित हो, तो चिंता का कोई कारण नहीं होता क्योंकि इससे पूँजी स्टॉक का अधिक तीव्र गति से निर्माण होगा और भविष्य में निर्गत में वृद्धि होगी। किंतु यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि चूँकि निजी बचत, निवेश और व्यापार घाटा संयुक्त रूप से निर्धारित होते हैं, इसलिए अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

सारांश

1. उत्पाद और वित्तीय बाज़ारों में खुलापन से घरेलू और विदेशी वस्तुओं के बीच तथा घरेलू और विदेशी परिसंपत्तियों के बीच चयन की छूट होती है।
2. अदायगी-संतुलन में किसी देश का शेष विश्व के साथ लेन-देन का उल्लेख होता है।
3. चालू लेखा शेष सौदा व्यापार, सेवाओं और शेष विश्व से प्राप्त निवल अंतरण का योग होता है। पूँजीगत लेखा शेष, विश्व में होने वाले पूँजीगत प्रवाह, शेष विश्व को होने वाले प्रवाह के घटाव के बराबर होता है।
4. चालू लेखा के घाटे को विदेशों से प्राप्त निवल पूँजी प्रवाह से वित्त पोषित किया जाता है, जिस प्रकार पूँजी खाता आधिक्य से।
5. मौद्रिक विनिमय दर घरेलू मुद्रा के रूप में विदेशी मुद्रा की एक इकाई की कीमत है।
6. वास्तविक विनिमय दर घरेलू वस्तु के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत है। यह मौद्रिक विनिमय दर के बराबर होती है, जो कि विदेशी कीमत स्तर में घरेलू कीमत स्तर से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का मूल्यांकन होता है। जब वास्तविक विनिमय दर एक के बराबर हो, तो दोनों देशों में क्रय-शक्ति समता होती है।

[5] यहाँ विश्लेषण को सरलीकृत करने के लिए हम अदृश्य तथा स्थानांतरित अदायगियों को नज़रअंदाज़ करते हुए चालू खाता संतुलन के साथ पर्याय व्यापार संतुलन को लेते हैं। जैसाकि तालिका 6.1 दर्शाता है, अदृश्य महत्त्वपूर्ण रूप से व्यापार घाटे को पाटने में मदद कर सकते हैं।

7. स्थिर विनिमय दर व्यवस्था का सार स्वर्णमान था, जिसमें प्रत्येक सहभागी देश एक निश्चित कीमत पर अपने देश की मुद्रा को स्वतंत्र रूप से स्वर्ण में परिवर्तित करने के लिए प्रतिबद्ध रहता था। अधिकीलित विनिमय दर एक प्रकार की परिवर्तनीय नीति है, जिसमें आधिकारिक कार्यवाही (अवमूल्यन) द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है।
8. स्वच्छ तिरती निधि के अंतर्गत विनिमय दर का निर्धारण बाज़ार द्वारा बिना किसी केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के होता है। प्रबंधित तिरती की स्थिति में केंद्रीय बैंक विनिमय दर में उतार-चढ़ाव को कम करने के लिए हस्तक्षेप करता है।
9. खुली अर्थव्यवस्था में घरेलू वस्तु की माँग, वस्तु की घरेलू माँग (उपभोग, निवेश, सरकारी खर्च) और निर्यात घटा आयात के योग के बराबर होता है।
10. खुली अर्थव्यवस्था गुणक बंद अर्थव्यवस्था गुणक से छोटा होता है, क्योंकि घरेलू माँग का एक हिस्सा विदेशी वस्तुओं के लिए होता है। अत: स्वायत्त माँग में वृद्धि से बंद अर्थव्यवस्था की तुलना में निर्गत में कम वृद्धि होती है। इससे: व्यापार शेष में भी गिरावट होती है।
11. विदेशी आय में वृद्धि से निर्यात में वृद्धि और घरेलू निर्गत में वृद्धि होती है तथा व्यापार शेष में सुधार होता है।
12. यदि किसी देश में ऋण की गई निधि से ब्याज दर की अपेक्षा विकास दर अधिक होता है, तो व्यापार घाटे से किसी प्रकार के खतरे का संकेत नहीं होता।

मूल संकल्पनाएँ

खुली अर्थव्यवस्था	अदायगी-संतुलन
चालू खातागत घाटा	आधिकारिक आरक्षित
लेन-देन	स्वायत्त और समंजन लेन-देन
मौद्रिक और वास्तविक विनिमय दर	क्रय-शक्ति समता
नम्य विनिमय दर	मूल्यह्रास
ब्याज दर विभेदक	स्थिर विनिमय दर
अवमूल्यन	प्रबंधित तिरती
घरेलू वस्तु की माँग	आयात की सीमांत प्रवृति
निवल निर्यात	खुली अर्थव्यवस्था गुणक

बॉक्स 6.1 विनिमय दर प्रबंध : भारतीय अनुभव

भारत की विनिमय दर नीति अंतर्राष्ट्रीय और देशीय विकास के साथ विकसित हुई है। स्वतंत्रता के बाद ब्रेटन वुड्स व्यवस्था की दृष्टि से भारतीय रुपया ब्रिटेन के साथ ऐतिहासिक संबंध के कारण पौंड स्टर्लिंग में अधिकीलित हुआ। जून, 1966 में रुपये का 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के विखंडन और भारत के व्यापार में यूनाइटेड किंगडम के अंश के घटने से सितंबर, 1975 में पौंड स्टर्लिंग से रुपये का संबंध-विच्छेद कर दिया गया। 1975 से लेकर 1992 तक की अवधि के दौरान रुपये की विनिमय दर भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा निर्धारित होती थी, जो

भारत के प्रधान व्यापारिक हिस्सेदार की मुद्रा के भारित बंडल के +/- 5% नाममात्र के व्यापारिक सहभागियों के अंतर्गत होता था। रिज़र्व बैंक दैनिक आधार पर हस्तक्षेप करता था। जिससे आरक्षित निधि के आकार में व्यापक परिवर्तन होता था। इस अवधि की विनिमय दर व्यवस्था का वर्णन एक पट्टी के साथ नाममात्र अधिकीलित के समायोजन के रूप में किया जा सकता है।

1990 के आरंभ में तेल की कीमत में अत्यधिक वृद्धि हुई और खाड़ी संकट के कारण खाड़ी के क्षेत्र से धन का आना रुक गया। इससे और अन्य देशी और अंतर्राष्ट्रीय विकास से भारत में अदायगी-संतुलन की समस्या गंभीर हो गई। व्यवसायिक बैंकों से उधार लेने की और अल्पकालिक साख की गुंजाइश कम हो जाने के फलस्वरुप चालू लेखागत घाटा के लिए वित्त प्रबंध कठिन हो गया। भारत की विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधि अगस्त, 1990 के 3.1 बिलयन यू एस डॉलर से तेजी से घटकर 12 जुलाई, 1991 में 975 मिलियन यू एस डॉलर रह गई (हमारी वर्तमान विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि 27 जनवरी, 2006 के अनुसार 139.2 बिलयन यू. एस. डॉलर थी)। विदेशों को सोना भेजने, गैर-जरूरी आयात को कम करने, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा बहु-पक्षीय (और) द्वि-पक्षीय स्रोतों से संपर्क करने, स्थिरीकरण और ढाँचागत सुधार लाने के अतिरिक्त 1 जुलाई और 3 जुलाई, 1991 को रुपये में दो चरणों में 18-19 प्रतिशत का अवमूल्यन किया गया। मार्च, 1992 में दुहरे विनिमय दरों वाला उदारवादी विनिमय दर प्रबंधन व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था के तहत विनिमय आय का 40 प्रतिशत रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित दर से सुपुर्द करना पड़ता था और 60 प्रतिशत का परिवर्तन बाज़ार द्वारा निर्धारित दर पर होता था। दुहरे दरों को 1 मार्च, 1993 को बदल दिया गया और चालू खाते की परिवर्तनीयता की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए। अंतिम रूप से इसकी उपलब्धि 1994 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष समझौता के अनुच्छेद VIII को स्वीकार कर लेने के बाद मिली। इस प्रकार, रुपये की विनिमय दर बाज़ार के द्वारा निर्धारित होती है और अपने क्रय और विक्रय द्वारा रिज़र्व बैंक विदेशी मुद्रा बाज़ार में स्थिति को विनियमित रखता है।

अभ्यास

1. संतुलित व्यापार शेष और चालू खाता संतुलन में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. आधिकारिक आरक्षित निधि का लेन-देन क्या है? अदायगी-संतुलन में इनके महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. मौद्रिक विनिमय दर और वास्तविक विनिमय दर में भेद कीजिए। यदि आपको घरेलू वस्तु अथवा विदेशी वस्तुओं के बीच किसी को खरीदने का निर्णय करना हो, तो कौन-सी दर अधिक प्रासंगिक होगी?
4. यदि 1 रुपया की कीमत 1.25 येन है और जापान में कीमत स्तर 3 हो तथा भारत में 1.2 हो, तो भारत और जापान के बीच वास्तविक विनिमय दर की गणना कीजिए (जापानी वस्तु की कीमत भारतीय वस्तु के संदर्भ में)। संकेत : रुपये में येन की कीमत के रूप में मौद्रिक विनिमय दर को पहले ज्ञात कीजिए।
5. स्वचालित युक्ति की व्याख्या कीजिए जिसके द्वारा स्वर्णमान के अंतर्गत अदायगी-संतुलन प्राप्त किया जाता था।
6. नम्य विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण कैसे होता है?
7. अवमूल्यन और मूल्यह्रास में अंतर स्पष्ट कीजिए।
8. क्या केंद्रीय बैंक प्रबंधित तिरती व्यवस्था में हस्तक्षेप करेगा? व्याख्या कीजिए।
9. क्या देशी वस्तुओं की माँग और वस्तुओं की देशीय माँग की संकल्पनाएँ एक समान है?
10. जब $M = 60 + 0.06Y$ हो, तो आयात की सीमांत प्रवृति क्या होगी? आयात की सीमांत प्रवृति और समस्त माँग फलन में क्या संबंध है?
11. खुली अर्थव्यवस्था स्वायत्त व्यय खर्च गुणक बंद अर्थव्यवस्था के गुणक की तुलना में छोटा क्यों होता है?

12. पाठ में इकमुश्त कर की कल्पना के स्थान पर आनुपातिक कर $T = tY$ के साथ खुली अर्थव्यवस्था गुणक की गणना कीजिए।

13. मान लीजिए $C = 40 + 0.8YD$, $T = 50$, $I = 60$, $G = 40$, $X = 90$, $M = 50 + 0.05Y$ (a) संतुलन आय ज्ञात कीजिए (b) संतुलन आय पर निवल निर्यात संतुलन ज्ञात कीजिए (c) संतुलन आय और निवल निर्यात संतुलन क्या होता है, जब सरकार के क्रय में 40 से 50 की वृद्धि होती है।

14. उपर्युक्त उदाहरण में यदि निर्यात में $X = 100$ का परिवर्तन हो, तो संतुलन आय और निवल निर्यात संतुलन में परिवर्तन ज्ञात कीजिए।

15. व्याख्या कीजिए कि $G - T = (S^g - I) - (X - M)$।

16. यदि देश B से देश A में मुद्रास्फीति ऊँची हो और दोनों देशों में विनिमय दर स्थिर हो, तो दोनों देशों के व्यापार शेष का क्या होगा?

17. क्या चालू पूँजीगत घाटा खतरे का संकेत होगा? व्याख्या कीजिए।

18. मान लीजिए $C = 100 + 0.75YD$, $I = 500$, $G = 750$, कर आय का 20 प्रतिशत है, $X = 150$, $M = 100 + 0.2Y$, तो संतुलन आय, बजट घाटा अथवा आधिक्य और व्यापार घाटा अथवा आधिक्य की गणना कीजिए।

19. उन विनिमय दर व्यवस्थाओं की चर्चा कीजिए, जिन्हें कुछ देशों ने अपने बाह्य खाते में स्थायित्व लाने के लिए किया है।

सुझावात्मक पठन

डोर्नवुश, आर, और एस फिशर 1994, *माइक्रोइकोनॉमिक्स,* छठा संस्करण, मैक्ग्राहिल, पेरिस।

आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2006–07।

क्रुगमैन, पी. आर. और ओत्सफेल्ड, एम. 2000, *इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स थ्योरी एंड पॉलिसी,* पाँचवा संस्करण, पियर्सन एजुकेशन।

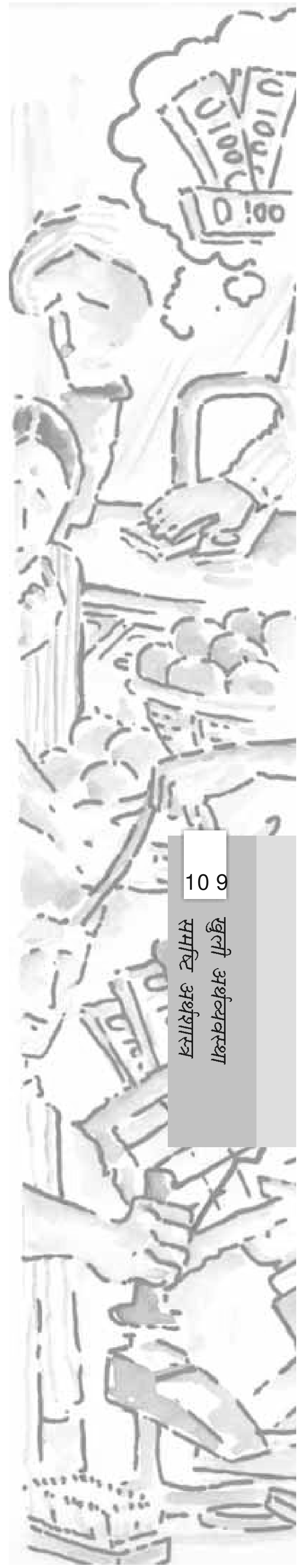

तालिका 6.1: भारत का, अदायगी-संतुलन 2006-07 (अमेरिकी डॉलर मिलियन में)

	(अमेरिकी डॉलर मिलियन में)
1. निर्यात	128.1
2. आयात	-191.3
3. व्यापार संतुलन (2 – 1)	**-63.2**
4. अदृश्य (निवल)	53.4
(क) गैर-कारक आय	31.2
(ख) आय	-6.6
(ग) निजी अंतरण	27.9
5. चालू खाता संतुलन (3 + 4)	**-9.8**
6. विदेशी सहायता (निवल)	1.8
7. वाणिज्यिक ऋणग्रहण (निवल)	16.1
8. अनिवासी जमा (निवल)	4.3
9. विदेशीय निवेश (निवल)[1]	15.5
जिसका :	
(i) ब्याज (निवल)	8.5
(ii) निवेश सूची [2]	7.0
10. अन्य प्रवाह (निवल)	9.0
11. कुल पूँजी लेखा (निवल)	**46.4**
12. अदायगी संतुलन [5 + 11]	**36.6**
13. आरक्षित उपयोग (वृद्धि)	– 36.6

 # वास्तविक स्रोत: *आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08*

[1] विदेशीय निवेश प्रत्यक्ष निवेश (या विदेशीय प्रत्यक्ष निवेश) और निवेश सूची में विभाजित है। विदेशी प्रत्यक्ष पूंजी में विदेशीय निवेशक होते हैं जिनका नियंत्रण अंतिम स्थूणी उद्यम उत्पादन में होता है।

[2] निवेश सूची छोटी इक्विटी को दर्शाती है (इसमें व्यवस्थापक का नियंत्रण नहीं होता है) या ऋण विदेशी निवेशकों से स्टॉक बाजार के द्वारा लिया जाता है जिसका उद्देश्य निवेश पर प्रतिलाभ प्राप्त करना है।

शब्दावली

एडम स्मिथ (1723-1790): आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक। 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' के लेखक।

समस्त मुद्रा संसाधन: डाकघर बचत संगठन की अवधि जमा रहित व्यापक मुद्रा (M3)।

आभ्यंतरिक स्थिरक: निश्चित व्यय और कर नियमों के अंतर्गत जब आर्थिक दशाएँ बदतर स्थिति को प्राप्त होती है, तो खर्च में स्वत: बढ़ोतरी हो जाती है अथवा करों में स्वत: कमी आ जाती है। अत: अर्थव्यवस्था स्वत: स्थिर दशा को प्राप्त होती है।

स्वायत्त परिवर्तन: समष्टि अर्थशास्त्र के मॉडल में परिवर्तों के मानों में अंतर, जो कि मॉडल के बहिर्जात कारकों के कारण होता है।

स्वायत्त व्यय गुणक: स्वायत्त खर्च में वृद्धि (अथवा कमी) से समस्त निर्गत अथवा आय में वृद्धि (अथवा कमी) का अनुपात।

अदायगी-संतुलन: किसी भी देश का शेष विश्व के साथ लेन-देन की लेखाओं का संक्षिप्त विवरण।

संतुलित बजट: ऐसा बजट जिसमें करों से प्राप्त राजस्व सरकार के व्यय के बराबर हो।

संतुलित बजट गुणक: करों और सरकार के व्यय दोनों में इकाई वृद्धि या कमी के फलस्वरूप संतुलन निर्गत में परिवर्तन।

बैंक दर: आरक्षित निधि के अभाव की स्थिति में यदि व्यावसायिक बैंक रिज़र्व बैंक से ऋण लेता है, तो व्यावसायिक बैंकों द्वारा भुगतान योग्य ब्याज दर।

वस्तु विनिमय: मुद्रा की मध्यस्थता के बिना वस्तुओं का विनिमय।

आधार वर्ष: वह वर्ष जिसकी कीमत का प्रयोग करके वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना की जाती है।

बंधपत्र: कागज़ का ऐसा टुकड़ा, जिस पर एक निर्धारित अवधि के पूरे होने पर भविष्य में मौद्रिक प्रतिफल का वादा लिखित होता है। बंधपत्र फर्म अथवा सरकार के द्वारा लोगों से पैसा उधार लेने के लिए जारी किया जाता है।

व्यापक मुद्रा: संकुचित मुद्रा + व्यावसायिक बैंकों और डाकघर बचत संगठन द्वारा रखी गई आवधिक जमा।

पूँजी: उत्पादन का एक ऐसा कारक, जो स्वयं उत्पादित होता है और आमतौर पर उत्पादन प्रक्रम में इसका पूर्णरूपेण उपभोग नहीं होता।

पूँजी लाभ/हानि: किसी बंधपत्रधारी के धन के मूल्य में वृद्धि अथवा कमी जो कि बाज़ार में उसके बंधपत्रों की कीमतों में वृद्धि अथवा कमी के कारण होता है।

पूँजीगत वस्तुएँ: ऐसी वस्तुएँ जिनका क्रय उपभोक्ता की तत्काल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि दूसरी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए किया जाता है।

पूँजीवादी देश अथवा अर्थव्यवस्था: वह देश जहाँ अधिकांश उत्पादन पूँजीवादी फर्मों द्वारा किया जाता है।

पूँजीवादी फर्म: वे फर्म जिनमें निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं (a) उत्पादन के कारकों का निजी स्वामित्व (b) बाज़ार के लिए उत्पादन (c) एक दी गई कीमत जिसे मज़दूरी की दर कहते हैं, पर श्रम का क्रय और विक्रय (d) पूँजी का निरंतर संचय।

नकद आरक्षित अनुपात: व्यावसायिक बैंकों के द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक के पास रखी गई जमा राशि का अंश।

आय का वर्तुल प्रवाह: वह संकल्पना, जिसके अनुसार किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं का कुल मूल्य एक वर्तुल पथ पर गमन करता है। यह प्रवाह या तो कारक अदायगी है या वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय अथवा समस्त उत्पादन के मूल्य के रूप में होता है।

टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ: ऐसी उपभोक्ता वस्तुएँ जो अतिशीघ्र नष्ट नहीं होती हैं बल्कि एक कालावधि तक टिकती हैं, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ कहलाती हैं।

उपभोक्ता कीमत सूचकांक: भारित औसत कीमत स्तर में प्रतिशत परिवर्तन। हम एक दी हुई उपभोक्ता वस्तुओं की टोकरी की कीमतों को लेते हैं।

उपभोग वस्तुएँ: अंतिम उपभोक्ताओं के द्वारा उपभोग की गई वस्तुएँ अथवा उपभोक्ता की तत्काल आवश्यकता को पूरा करने वाली वस्तुएँ, उपभोग वस्तुएँ कहलाती हैं। इसमें सेवाओं को भी शामिल किया जा सकता है।

निगम कर: निगमों के द्वारा अर्जित आय पर लागए गए कर (या निजी क्षेत्रक के फर्म)।

करेंसी जमा अनुपात: लोगों के द्वारा करेंसी के रूप में अपने पास रखी गई मुद्रा और व्यावसायिक बैंकों में जमा की गई मुद्रा के अनुपात को करेंसी जमा अनुपात कहते हैं।

केंद्रीय बैंक से ऋण लेने के माध्यम से घाटे की वित्त व्यवस्था: बजटीय घाटे के लिए सरकार केंद्रीय बैंक से ऋण-ग्रहण के माध्यम से वित्त व्यवस्था करती है। इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है और फलस्वरूप स्फीति उत्पन्न होती है।

मूल्यह्रास: पूँजी स्टॉक में एक कालावधि के अंतर्गत टूट-फूट अथवा अवक्षय है।

मूल्यह्रास: तिरती विनिमय दरों के अंतर्गत विदेशी मुद्रा के रूप में देश की करेंसी की कीमत में कमी। यह विनिमय दरों में वृद्धि के अनुरूप होती है।

अवमूल्यन: आधिकारिक कार्रवाई के माध्यम से अधिकीलित विनिमय दरों के अंतर्गत देशीय करेंसी की कीमत में कमी।

आवश्यकताओं का दुहरा संयोग: एक ऐसी स्थिति, जहाँ दो आर्थिक एजेंटों के पास एक-दूसरे के आधिक्य उत्पादन के लिए पूरक माँग हो।

आर्थिक एजेंट अथवा इकाइयाँ: आर्थिक एजेंट अथवा आर्थिक इकाइयाँ ऐसे व्यक्ति अथवा संस्थाएँ होती हैं, जो आर्थिक निर्णय लेती हैं।

प्रभावी माँग का सिद्धांत: यदि अंतिम वस्तुओं की पूर्ति को अल्पकाल में स्थिर कीमत पर अनंत लोचदार मान लिया जाए, तो समस्त निर्गत का निर्धारण केवल समस्त माँग के मूल्यों द्वारा होता है। इसे प्रभावी माँग का सिद्धांत कहते हैं।

उद्यमवृत्ति: उत्पादन के दौरान संगठन, समन्वयन और जोखिम वहन का कार्य।

प्रत्याशित उपभोग: योजनागत उपभोग का मूल्य।

प्रत्याशित निवेश: योजनागत निवेश का मूल्य।

प्रत्याशित: किसी परिवर्त का उसके वास्तविक मूल्य के विपरीत योजनागत मूल्य।

यथार्थ: किसी परिवर्त का उसके योजनागत मूल्य के विपरीत वास्तविक अथवा उपलब्ध मूल्य।

राष्ट्रीय आय गणना की व्यय विधि: एक कालावधि में किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के लिए अंतिम व्यय के समस्त मूल्य की माप करके राष्ट्रीय आय की गणना की विधि।

निर्यात: किसी देश की घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की बिक्री शेष विश्व को करना।

बाह्य क्षेत्रक: इससे किसी देश और शेष विश्व के बीच आर्थिक लेन-देन सूचित होता है।

बाह्य: वैसे लाभ अथवा हानि जो किसी दूसरे व्यक्ति, फर्म या किसी अन्य सत्ता को केवल कुछ व्यक्तियों के कारण प्राप्त हो रहा है। फर्म अथवा कोई अन्य सत्ता किसी भी अन्य आर्थिक क्रियाकलाप में भाग ले सकते हैं। अगर कोई दूसरे को लाभ अथवा अच्छा बाह्य कारण उपलब्ध करा रहा है, तो प्रथम के द्वारा इसके लिए दूसरे को कोई भुगतान नहीं किया जाता। अगर किसी को दूसरे के द्वारा हानि अथवा खराब बाह्य कारण उपलब्ध कराया जाता है, तो प्रथम को इसके लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती।

आदेश मुद्रा: वह मुद्रा जिसका कोई आंतरिक मूल्य नहीं होता।

अंतिम वस्तुएँ: वे वस्तुएँ जिनमें उत्पादन प्रक्रम में पुन: कोई शिफ्ट नहीं होता।

फर्म: आर्थिक इकाइयाँ जो वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करती हैं तथा उत्पादन के कारकों को नियोजित करती हैं।

राजकोषीय नीति: सरकार के खर्च के स्तर तथा अंतरण और कर ढाँचे के स्तर के संबंध में सरकार की नीति।

स्थिर विनिमय दर: दो या दो से अधिक देशों की करेंसियों के बीच की विनिमय दर, जिसका निर्धारण कुछ स्तर पर नियत कर दिया जाता है और जिनके बीच समंजन कभी-कभी ही होता है।

नम्य/तिरती विनिमय दर: केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के बिना विदेशी बाज़ार में माँग और पूर्ति की शक्तियों के द्वारा निर्धारित विनिमय दर।

प्रवाह: परिवर्त जिसे एक कालावधि में परिभाषित किया जाता है।

विदेशी विनिमय: विदेशी करेंसी परिवर्त दिए हुए देश की देशीय करेंसी को छोड़कर अन्य सारी करेंसियाँ।

विदेशी विनिमय आरक्षित: किसी देश के केंद्रीय बैंक द्वारा धारित विदेशी परिसंपत्तियाँ।

उत्पादन के चार कारक: भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यमवृत्ति। ये सब एक साथ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में मदद करते हैं।

सकल घेरलू उत्पाद अवस्फितीक: नाममात्र के वास्तविक सकल घरेलू उत्पादों का अनुपात।

सरकारी खर्च गुणक: सरकारी खर्च में प्रत्येक इकाई वृद्धि के फलस्वरूप निर्गत में वृद्धि के आकार को प्रदर्शित करने वाले सांख्यिक गुणांक।

सरकार: राज्य, जो देश में कानून व्यवस्था कायम करता है, कर एवं शुल्क लगाता है, कानून बनाता है और नागरिकों के आर्थिक कल्याण को प्रोत्साहित करता है।

महामंदी: 1930 के दशक की कालावधि में (जो न्यूयार्क में 1929 में स्टॉक बाज़ार तेजी से गिरावट के साथ शुरू हुई) निर्गत में गिरावट और बेरोज़गारी में बड़ी मात्रा में वृद्धि देखी गयी।

सकल घरेलू उत्पाद: किसी देश की सीमा के अंतर्गत उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का समस्त मूल्य। इसमें पूँजी स्टॉक के मूल्यह्रास के प्रतिस्थापन निवेश भी शामिल होते हैं।

सकल राजकोषीय घाटा: राजस्व प्राप्तियों और पूँजीगत प्राप्तियों की अपेक्षा कुल सरकारी व्यय का आधिक्य, जिससे ऋण का सृजन नहीं होता।

सकल निवेश: पूँजीगत स्टॉक में अभिवृद्धि, जिसमें पूँजी स्टॉक में होने वाले टूट-फूट के लिए प्रतिस्थापन भी शामिल होता है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद: सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय। दूसरे शब्दों में, सकल राष्ट्रीय उत्पाद में देश के सभी नागरिकों की समस्त आय शामिल है, जबकि सकल घरेलू उत्पाद में देशीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत विदेशियों के द्वारा प्राप्त आय शामिल किये जाते हैं और अपने देश के नागरिकों द्वारा विदेशी अर्थव्यवस्था से प्राप्त आय को निकाल दिया जाता है।

सकल प्राथमिक घाटा: राजकोषीय घाटा – ब्याजों की अदायगी।

उच्च शक्तिशाली मुद्रा: देश के मौद्रिक प्राधिकरण द्वारा अपनाई गई मुद्रा। इसमें मुख्यत: करेंसी आती हैं।

परिवार: परिवार अथवा व्यक्ति, जो फर्मों को उत्पादन के कारकों की आपूर्ति करते हैं और जो फर्मों से वस्तुओं और सेवाओं का क्रय करते हैं।

आयात: शेष विश्व से किसी देश द्वारा खरीदी गई वस्तुएँ और सेवाएँ।

राष्ट्रीय आय की गणना की आय विधि: एक समयावधि में किसी अर्थव्यवस्था में अंतिम कारक अदायगी (आय) के समस्त मूल्य की माप करके राष्ट्रीय आय की गणना की विधि।

ब्याज: पूँजी के द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए भुगतान।

मध्यवर्ती वस्तुएँ: ऐसी वस्तुएँ जिनका प्रयोग अन्य वस्तुओं के उत्पादन के दौरान उत्पादन प्रक्रम में होता है।

माल-सूची: अबिक्रित वस्तुएँ, अप्रयुक्त कच्चे माल अथवा अर्ध-निर्मित वस्तुएँ जिन्हें कि कोई फर्म एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक रखती है।

जॉन मेनार्ड कीन्ज़ (1883-1946): समष्टि अर्थशास्त्र को एक पृथक अध्ययन की शाखा के रूप में स्थापित करने का श्रेय इनको ही जाता है।

श्रम: उत्पादन में प्रयुक्त मानवीय शारीरिक श्रम।

भूमि: उत्पादन में प्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन-नियत अथवा प्रयुक्त।

वैध मुद्रा: मौद्रिक प्राधिकरण अथवा सरकार द्वारा जारी मुद्रा, जिसे लेने से कोई इनकार नहीं कर सकता।

अंतिम ऋण-दाता: किसी देश में मौद्रिक प्राधिकरण का कार्य, जिसमें वह तरलता संकट और बैंक रन की स्थिति में व्यावसायिक बैंकों की शोधन-क्षमता की गारंटी प्रदान करता है।

तरलता फंदा: अर्थव्यवस्था में ब्याज की अति निम्न दर की स्थिति, जहाँ प्रत्येक आर्थिक एजेंट भविष्य में ब्याज दर की वृद्धि की आशा करता है। परिणामस्वरूप बंधपत्रों की कीमत गिरने लगती और पूँजी का नुकसान होता है। हर व्यक्ति अपने धन को मुद्रा के रूप में रखने लगता है और मुद्रा की सट्टेबाजी की माँग असीमित हो जाती है।

समष्टि अर्थशास्त्रीय मॉडल: विश्लेषणात्मक तर्क अथवा गणितीय, रेखाचित्रीय प्रतिचित्रण के माध्यम से समष्टि अर्थव्यवस्था के कार्य का संक्षिप्त रूप में प्रस्तुतीकरण।

प्रबंधित तिरती: एक ऐसी व्यवस्था जिसमें केंद्रीय बैंक बाज़ार की शक्तियों के द्वारा विनिमय दर के निर्धारण की अनुमति प्रदान करता है, किंतु समय-समय पर दर को प्रभावित करने के लिए हस्तक्षेप करता है।

सीमांत उपभोग प्रवृत्ति: अतिरिक्त उपभोग और अतिरिक्त आय का अनुपात।

विनिमय माध्यम: वस्तु विनिमय को प्रोत्साहित करने के लिए मुद्रा का प्रधान कार्य।

मुद्रा गुणक: किसी अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा पूर्ति और उच्च शक्तिशाली मुद्रा के स्टॉक का अनुपात।

संकुचित मुद्रा: करेंसी नोट, सिक्के, माँग जमा, जो जनता के द्वारा व्यावसायिक बैंकों में रखे जाते हैं।

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय: बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद + शेष विश्व से अन्य चालू अंतरण।

निवल घरेलू उत्पाद: किसी देश की सीमा के अंतर्गत उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का समस्त मूल्य, जिसमें पूँजी स्टॉक के मूल्यह्रास शामिल नहीं होते।

परिवारों द्वारा किये गए निवल ब्याज अदायगी: परिवार द्वारा फर्मों को किये गए ब्याज भुगतान – परिवारों द्वारा प्राप्त ब्याज भुगतान।

निवल निवेश: पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त वृद्धि। सकल निवेश के विपरीत, इसमें पूँजी स्टॉक के अवक्षय के लिए प्रतिस्थापन शामिल नहीं होता।

निवल राष्ट्रीय उत्पाद (बाज़ार कीमत पर): सकल राष्ट्रीय उत्पाद – मूल्य ह्रास।

निवल राष्ट्रीय उत्पाद (कारक लागत पर) अथवा राष्ट्रीय आय: बाज़ार मूल्य पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद–अप्रत्यक्ष कर–उपदान।

नाममात्र विनिमय दर: देशी मुद्रा की इकाइयों की वह संख्या, जो कि कोई एक इकाई विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिए देता है। यह विदेशी मुद्रा की देशी मुद्रा के रूप में कीमत है।

नाममात्र सकल घरेलू उत्पाद: सकल घरेलू उत्पाद का चालू बाज़ार कीमतों पर मूल्यांकन किया जाता है।

गैर-कर अदायगियाँ: परिवारों के द्वारा फर्मों या सरकार को किए गए गैर-कर भुगतान, जैसे कि अर्थदंड।

खुली बाज़ार क्रिया: केंद्रीय बैंक के द्वारा आम जनता से बंधपत्र बाज़ार में सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद या बिक्री, जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि अथवा कमी न हो।

मितव्ययिता का विरोधाभास: जब लोग अत्यधिक मितव्ययी हो जाते हैं, तो वे समस्त रूप में बचत कम करते हैं अथवा पूर्ववत् बचत करते हैं।

प्राचल शिफ्ट: प्राचल के मूल्य में परिवर्तन के कारण आलेख में शिफ्ट।

वैयक्तिक प्रयोज्य आय: *व्यक्तिगत आय – व्यक्तिगत कर भुगतान – गैर कर भुगतान।*

वैयक्तिक आय: राष्ट्रीय आय – अवितरित लाभ – परिवार द्वारा निवल ब्याज भुगतान – निगम कर + सरकार और फर्मों से परिवारों को अंतरण भुगतान।

वैयक्तिक कर अदायगी: व्यक्ति पर लगाए गए कर, जैसे–आयकर।

माल-सूची में योजनागत परिवर्तन: योजनाबद्ध तरीके से माल–सूची के स्टॉक में किये गए परिवर्तन।

वर्तमान मूल्य (बंधपत्र का): मुद्रा की वह मात्रा, जिसे आज ब्याज अर्जन परियोजन में रखने से उतनी ही आय का सृजन होता है, जितनी कि किसी बंधपत्र के द्वारा उसकी कालावधि के उपरांत होता है।

वैयक्तिक आय: निजी क्षेत्रक को होने वाले निवल घरेलू उत्पाद से प्राप्त कारक आय + राष्ट्रीय ऋण ब्याज + विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय + सरकार से चालू अंतरण + शेष विश्व से प्राप्त अन्य निवल अंतरण।

राष्ट्रीय आय की गणना की उत्पाद विधि: किसी कालावधि में अर्थव्यवस्था में होने वाले उत्पादन के समस्त मूल्य की माप करके राष्ट्रीय आय की गणना की विधि।

लाभ: उद्यमवृत्ति से प्राप्त सेवा के लिए भुगतान।

सार्वजनिक वस्तु: सामूहिक रूप से उपभोग की जानेवाली वस्तुएँ अथवा सेवाएँ। किसी को इससे लाभ उठाने से वंचित करना संभव नहीं है और एक व्यक्ति के उपभोग से अन्य के उपभोग में कमी नहीं होती।

क्रय-शक्ति समता: अंतर्राष्ट्रीय विनिमय का एक सिद्धांत, जिसके अनुसार एक समान वस्तुओं की कीमत विभिन्न देशों में समान रहती है।

वास्तविक विनिमय दर: घरेलू वस्तुओं के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत।

वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद: स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पादों का मूल्यांकन।

लगान: भूमि (प्राकृतिक संसाधनों) की सेवाओं के लिए भुगतान।

आरक्षित जमा अनुपात: व्यावसायिक बैंकों द्वारा धारित कुल जमाओं का अनुपात।

पुनर्मूल्यांकनः अधिकीलित विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर में कमी, जिससे विदेशी करेंसी देशी करेंसी के रूप में सस्ती हो जाती है।

राजस्व घाटाः राजस्व प्राप्तियों की अपेक्षा राजस्व खर्च का आधिक्य।

रिकार्डो समतुल्यताः वह सिद्धांत जिसमें उपभोक्ता अग्रदर्शी होते हैं और आशा करते हैं कि सरकार आज जो ऋण-ग्रहण करती है, भविष्य में उसके पुनर्भुगतान के लिए करों में वृद्धि होगी और तद्नुसार वे उपभोग का समंजन करेंगे, जिससे इसका अर्थव्यवस्था पर वैसा ही प्रभाव होगा, जैसाकि कर में वृद्धि से आज होता।

सट्टेबाजी के लिए माँगः धन के भंडार के रूप में मुद्रा की माँग

सांविधिक तरलता अनुपातः व्यावसायिक बैंकों को भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा विशिष्ट तरलता परिसंपत्तियों में निवेश करने के लिए कुल माँग और आवधिक जमा का अंश।

स्थिरीकरणः किसी देश के मौद्रिक प्राधिकरण के द्वारा मुद्रा बाज़ार में बहिर्जात अथवा कभी-कभी बाह्य आघातों, जैसे विदेशी विनिमय अंतःप्रवाह में वृद्धि के विरुद्ध मुद्रा की पूर्ति को स्थायी रखने के लिए किया गया हस्तक्षेप।

स्टॉकः जिन परिवर्तों की परिभाषा एक निश्चित काल बिंदु पर की जाती है।

मूल्य का संचयः भविष्य में उपयोग के लिए मुद्रा के रूप में धन का संचय किया जा सकता है। मुद्रा के इस कार्य को मूल्य का संचय कहा जाता है।

लेन-देन माँगः लेन-देन कार्यों के लिए मुद्रा की माँग।

सरकार और फर्मों से परिवारों को अतंरण भुगतानः अंतरण भुगतान ऐसा भुगतान है, जो कि उसके बदले में कोई सेवा प्राप्त किये ही भुगतानकर्ता भुगतान करता है। उदाहरणार्थ – उपहार, छात्रवृत्ति, पेंशन।

अवितरित लाभः निजी या सरकारी स्वामित्व के फर्मों द्वारा अर्जित लाभ, जिसका वितरण उत्पादन के कारकों के बीच नहीं होता।

बेरोज़गारी दरः रोज़गार प्राप्त करने में असमर्थ लोगों की संख्या (जो कि रोज़गार की तलाश में हैं) और रोज़गार की तलाश में लोगों की कुल संख्या का अनुपात।

लेखांकन इकाईः विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों की माप और तुलना के लिए मुद्रा की भूमिका एक पैमाने के रूप में है।

माल-सूची में अनियोजित परिवर्तनः माल-सूची का स्टॉक परिवर्तन, जो अप्रत्याशित तरीके से होता है।

मूल्यवर्द्धनः उत्पादन की प्रक्रिया में फर्म का निवल योगदान। इसकी परिभाषा इस तरह से की जाती है- उत्पादन का मूल्य- उपयोग में लाई गई मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य।

मज़दूरीः श्रमिकों की सेवा के लिए भुगतान।

थोक कीमत सूचकांकः भारित औसत कीमत स्तर में प्रतिशत परिवर्तन। हम उन वस्तुओं के समूह की कीमतों को लेते हैं, जिनकी खरीद-बिक्री थोक में की जाती है।